वैदिक साहित्य में रुद्र

Rudra in Vaidic Literature

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
की
डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध



प्रस्तुतकर्त्री
श्रीमती उमारानी त्रिवेदी

निर्देशक
डॉ० चन्द्रभूषण मिश्र
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद



संस्कृत पालि प्राकृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

१९९३

पुरोवाक्

भारतीय संस्कृति ने अपना सर्वस्व वेदों से प्राप्त किया था । वैदिक ऋषियों ने लोककल्याणार्थ जिस धर्म की व्याख्या की थी उसका मूल लक्ष्य था तत्वमीमांसा की ओर जनसाधारण को प्रवृत्त करना । उनके आध्यात्मिक विचारों एवं कल्पनाओं में जो सत्य छिपा हुआ था उसका स्वरूप सहिष्णु एवं कल्याण-कारी था । सम्भवत: यही कारण था कि वैदिक धर्मदर्शन के प्रति मेरी जिज्ञासा प्रारम्भ से ही थी, किन्तु मात्र केवल जिज्ञासा होने से ही किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती, अपितु उसके लिए सुयोग्य गुरु कृपा आवश्यक है । इस शोध प्रबन्ध में इस रूप में प्रस्तुत करने का सम्पूर्ण श्रेय श्रद्धेय गुरुवर्य और मार्गदर्शक डा० श्री चन्द्रभूषण मिश्र जी को है । जिनके सुयोग्य मार्गदर्शन और सहृदयतापूर्ण व्यव-हार के कारण यह दुरूह कार्य सम्पादित हो सका ।

" क्षुद्रोऽपि तनुते तात् तेजस् तेजस्विसङ्गत: ।
अर्क: सम्प्रते पश्च - दर्शमिदुहनद्युतिम् । ।

इस शोध प्रबन्ध के विषय में समय- समय पर महत्त्वपूर्ण सत्परामर्श के लिये पं० तारिणीश झा महोदय एवं डा० श्री कृष्णानन्द पाण्डेय जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । अन्त में इस शोध प्रबन्ध के टंकणकर्ता श्री विनोद कुमार द्विवेदी एवं उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके सहयोग के कारण शोध प्रबन्ध पूर्ण करने में मुझे सहायता मिली ।

(श्रीमती उमा रानी त्रिवेदी)
शोधच्छात्रा

अनुक्रमणिका

*****

भूमिका

वेद विश्ववाङ्मय की अमूल्य निधि है । हमारा धर्म दर्शन आचार-विचार नीति- रीति सभी वेदानुसिक्त है । समस्त वेद धर्म का मूल है, धर्म-ज्ञान वेद से ही हो सकता है, मन्वादि धर्मशास्त्र वेदोक्त धर्म का ही विधान करते हैं । वेद के ज्ञान के बिना आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता तथा इसके अभाव में सर्वदुःखात्यन्तनिवृत्तिरूप मोक्ष भी नहीं मिल सकता । इसी लिये कहा भी गया है -

" तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति
नान्य: पन्था: विद्यतेऽयनाय ।। "

वैदिक धर्म दर्शन के अनुसार- इस समस्त जगत् को अग्निसोमात्मक माना जाता है- " अग्निसोमात्मकं जगत् " इस सृष्टि का निर्माण इन्हीं दो तत्वों के संयोग से हुआ और इन्हीं के प्रभाव से वह स्थिर भी है । यद्यपि कहीं कहीं उपनिषदों में रयि और प्राण से चराचर जगत् की उत्पत्ति स्वीकार की गयी है, परन्तु वस्तुत: वह रयि ही सोम है । और प्राण ही अग्नि है । ऋगादि पदार्थ भी प्राण स्वरूप ही है । ये प्राण कई प्रकार के होते हैं । इन सभी प्राणों को "देवता" शब्द से विभूषित किया जाता है । इन सभी देवताओं में रुद्र का अपना एक विशिष्ट स्थान है क्यों कि " अग्निर्वै सर्वा देवता: " के अनुसार " प्राणरूप देवों के लिये सामान्य शब्द अग्नि है और अग्नि को भी रुद्र ही कहा गया है । "

वैदिक धर्म-दर्शन में रुद्र अथवा शिव के वास्तविक स्वरूप का जो वर्णन

मिलता है उस पर सूक्ष्म दृष्टिकोण से विचार करने पर हम इस निर्णय पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि रुद्र ही महादेव हैं और अग्नि ही रुद्र है ।

सौम्य एवं उग्र स्वरूपों से युक्त ये रुद्रदेव अतिशय कृपालु एवं संहारक क्षमता से युक्त हैं । भयङ्कर आयुधों से सुसज्जित होते हुये भी इन्होंने नाभा-नेदिष्ठ के यज्ञ में उपस्थित होकर उन्हें परम ऐश्वर्य प्रदान किया ।

ऋग्वेद के मत में रुद्र मित्र तथा वरुण के साथ मिलकर संसार को गतिमान व चेतनाशील करते हैं । रुद्र सेनापति हैं, पशुपति हैं, जलाशयों के पति हैं अथवा जलाव नामक औषधि के पति हैं । उज्ज्वल वर्ण रुद्र सूर्य स्वर्ण के सदृश दीप्तिमान हैं । देवों को धनवान बनाने वाला वसु भी रुद्र ही है ।

यद्यपि संस्कृत साहित्य में रुद्र के स्वरूप एवं उसकी महत्ता के सन्दर्भ में पर्याप्त कार्य हुआ है फिर भी वेदोक्त रुद्र तत्त्व का परवर्ती भारतीय धर्म-दर्शनों पर प्रभाव एवं उसकी तात्त्विक मीमांसा का अभाव सा परिलक्षित होता है । इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध वैदिक रुद्रतत्त्व के उपेक्षित किन्तु महत्त्वपूर्ण अन्तराल की पूर्ति करेगा ऐसी मेरी आशा है ।

वेदोक्त रुद्रतत्त्व के मीमांसा की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अष्टाध्यायों में विभाजित है । प्रथम अध्याय में वेद तथा परवर्ती भारतीय वाङ्मय में निहित रुद्र के सामान्य स्वरूप का विवेचन किया गया है और यह बताया गया है कि सृष्टि के आदि में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को वेदरूपी शब्द का उपदेश करने वाले और उसके प्रभाव का दिग्दर्शन कराने वाले रुद्र ही हैं ।

उस सर्वात्मस्वरूप पुरुष के मानसिक यज्ञ से ही वेद उत्पन्न हुये । ये रुद्रदेव त्रिविध तापों के निवारक है। संसार – सागर के परम पार जीवन्मुक्ति स्वरूप में वर्तमान और अभिमन्त्र जपादि के द्वारा पाप से तारने वाले अथवा उत्कृष्ट तत्त्वज्ञान के द्वारा संसार सागर से मानव को पार लगाने वाले रुद्र ही हैं ।

" श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमः " (यजुर्वेद)

द्वितीय अध्याय में रुद्र तथा शिव की अभिन्नता का दिग्दर्शन कराते हुये रुद्र के प्रणव स्वरूप की तात्त्विक मीमांसा की गयी है । इस अध्याय में यह बताया गया है कि रुद्र तथा शिव नाम दो हैं लेकिन कार्य एक ही है । रुद्र तथा शिव अपनी संहारक शक्ति के कारण ही संसार में सबसे प्रसिद्ध देवता हैं ये दोनों ही जीवनकाल में प्राणी के सम्पूर्ण अशुभों को दूर करते हैं और शरीर त्याग करने पर उसे मुक्ति प्रदान करते हैं । इसीलिये भगवान् शिव का अपर नाम " रुद्र " है ।

" अशुभं द्रावयन् रुद्रो यज्जहार पुराभयम् ।
ततः स्मृताभिधो रुद्रशब्देनात्राभिधीयते ।। "

तृतीय अध्याय में रुद्रदेव की सर्वव्यापकता एवं उनकी उपासना का सुन्दर निदर्शन है । रुद्र की महत्ता का वर्णन करते हुये इस अध्याय में यह बताया गया है कि " रुद्र ही अखिल भुवनपति हैं, वही महेश्वर हैं जो निखिल विश्व का सर्जक, पालक और संहारक है । वही अव्यक्त रूप से इस निखिल भुवन में व्याप्त हैं ।

चतुर्थ अध्याय में वैदिक वाङ्मय में निहित सृष्टिप्रक्रिया तथा ब्रह्मा विष्णु और रुद्र की एकात्मता का निरूपण किया गया है और यह बतलाया गया है कि जिस प्रकार एक ही निराकार अव्यक्त रूप परब्रह्म प्रणव अकार उकार और मकाररूपहोकर साकारभाव को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार एक ही वे ब्रह्मा विष्णु और रुद्र ये तीन रूप हो जाते हैं ।

" प्रजापतिश्चरति गर्भे तस्युर्भुवनानि विश्वा ।। "

§ यजुर्वेद §

पन्चम अध्याय में वेदोक्त शिव अथवा रुद्र के कल्याणकारी स्वरूप तथा उनकी शक्तियों का वर्णन है । इस अध्याय में इस तथ्य कासुन्दर निदर्शन है कि जिस प्रकार घर का गृहपति परिवार के सदस्यों को अच्छे आचरण के लिये प्रोत्साहित और दुराचरण के लिये दण्डित करता है उसी प्रकार ये रुद्रदेव भी सम्पूर्ण जगत् को समान दृष्टि से देखते हुये सदाचारी को पुरस्कृत और दुराचारी को दण्डित करते हैं । इसी लिये आत्मसमर्पण की भावना से रुद्र की अर्चना करने वाला कभी भी दुःख का भागी नहीं बनता है ।

" अनाप्ता ये वः - - - तद् वः एतद् पुरोदधे " ।

§ अथर्ववेद §

षष्ठ अध्याय में वेदों में वर्णित एक और अनेक रुद्र की परिकल्पना का तात्त्विक विमर्श किया गया है और यह प्रतिपादित किया गया है कि वह परात्पर अक्षर पुरुष महेश्वर कार्य और कारण दोनों से परे है। वह न जगत् है और न जगत्कर्त्ता, हाँ, जगत् और जगत्कर्त्ता दोनों का आलम्बन अवश्य है । वस्तुतः वह एक ही है लेकिन अनेक रूपों में प्रकट होता है ।

सप्तम अध्याय में वेदोक्त रुद्र अथवा शिव तत्त्व का पौराणिक वाङ्मय पर प्रभाव का वर्णन किया गया है और यह बताया गया है कि मोक्ष के अभिलाषी जनों के एक मात्र उपास्य देव श्री शिव ही है ।

" तीर्थे- तीर्थे निर्मलं ब्रह्मवृन्दं---- बोधे बोधे भासते चन्द्रचूडः ।।

(भागवत्)

अष्टम अध्याय में वेदोक्त रुद्र तत्त्व की परवर्ती भारतीय संस्कृति एवं धर्म दर्शन पर प्रभाव का निदर्शन किया गया है । इस अध्याय के अनुसार भगवान् शिव विराट अस्तित्त्व के प्रतीक है । ब्रह्माण्ड के कण- कण में शिव का अप्रत्यक्ष नर्तन चल रहा है सभी जीव उनके इस नर्तन से सम्मोहित है, उसके पाश में बद्ध है । इस बन्धन से मुक्ति शिव तत्त्व के ज्ञान से ही सम्भव है, क्योंकि शिव तत्त्व की प्राप्ति न तो रूप से होती है न भोग से अपितु इनकी प्राप्ति तप से होती है । शिव की इस महत्ता को ध्यान में रखकर ही माँ पार्वती ने उनकी प्राप्ति के लिये तप के द्वारा आत्म समाधि लगाना निश्चित किया क्योंकि समाधि की पूर्णता ही शिव तत्त्व की प्राप्ति है ।

इयेष सा - - - - - -प्रेमपतिश्च तादृशः ।

(कुमारसम्भवम् 3/58)

***

प्रथमोऽध्याय:

वेद तथा परवर्ती वाङ्मय में निहित रुद्र का सामान्य स्वरूप

वेद विश्वाङ्मय की अमूल्य निधि है । हमारा धर्म दर्शन आचार-विचार नीति- रीति सभी कुछ वेदानुस्यूत है । वेदों में धर्म और ब्रह्म का ही निरूपण है । " वेदोऽखिलो धर्ममूलम् " और गीता में लिखा है-" वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः " दोनों का ही तात्पर्य है कि समस्त वेद धर्म का मूल है । धर्म ज्ञान वेद से ही हो सकता है । मन्वादि धर्मशास्त्र वेदोक्त धर्म का ही विधान करते हैं । समस्त वेदों के द्वारा आत्मा अथवा ब्रह्म ही वेद्य है । बिना वेदज्ञान के आत्म-ज्ञान अथवा ब्रह्म ज्ञान नहीं हो सकता तथा इसके अभाव में सर्वदुःखात्यन्त निवृत्तिरूप मोक्ष भी नहीं मिल सकता है इसीलिये कहा भी गया है-

" तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति ।
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।। "

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार इस समस्त ब्रह्माण्ड को अग्निसोमात्मक माना जाता है, । " अग्निसोमात्मकं जगत् " इस सृष्टि की उत्पत्ति इन्हीं दो तत्वों से हुई है एवं इन्हीं के प्रभाव से वह स्थिर भी है । कहीं कहीं उपनिषदों में रयि और प्राण से चराचर जगत् की उत्पत्ति कही है, वस्तुतः रयि ही सोम है और प्राण ही अग्नि है । ऋगादि पदार्थ भी प्राण स्वरूप ही है, तभी तो त्रयीमय सूर्य को उदित होता हुआ देखकर ऋषि कहता है- " प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः " अर्थात् प्रजाओं का प्राण रूप यह सूर्य उदित हो रहा है । ये प्राण भी कई प्रकार के होते हैं जैसे-

ऋषि प्राण, पितृप्राण, देव प्राण, असुर प्राण आदि । ऋषिप्राणों से ही पितृप्राण उद्भूत होता है और पितृप्राण से देव प्राण तथा देव प्राण से निखिल जगत् की उत्पत्ति होती है । मनु ने भी इसी क्रम की पुष्टि की है-

" ऋषिभ्य: पितरो जाता: पितृभ्यो देवदानवा: ।
देवेभ्यश्च जगत्सर्व चरं स्थाण्वनुपूर्वश: ।। "

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार इन समस्त प्राणों को " देवता " शब्द से विभूषित किया जाता है ।

" जायमानो हि सर्व आभ्यो देवताभ्यो जायते "

इत्यादि श्रुति में जगदुत्पादक ऋष्यादि प्राणों को देवता कहा गया है । इन देवताओं में रुद्र का अपना एक विशिष्ट स्थान है । क्यो कि " अग्निर्वै सर्वा देवता:" के अनुसार प्राण रूप देवों के लिये सामान्य शब्द अग्नि है और अग्नि को भी रुद्र ही कहा गया है ।

ऋग्वेद[1] में रुद्र की निरुक्ति इस प्रकार की गयी है -

1· ऋ0 2·1·7 तथा 1·27·10

" रुद्रो रौतीति सतो रोरूयमाणो ।

द्रवतीति वा रोदयतेर्वा ।"

अर्थात् जो रुदन करे रूलाये, रोख शब्द करे या मेघों को पिघलाकर उनसे जल की वृष्टि करवाये वह रुद्र है । सायणाचार्य जी ने रुद्र शब्द का अर्थ परमेश्वर किया है ।

" रुद्रस्य परमेश्वरः[1] " {ऋ0}

" रुद्र संहर्त्ता देवः[2] " { अथर्व0}

"जगत्स्रष्टा सर्व जगदनुप्रविष्टः रुद्रः"[3] { अथर्व0 }

" रुद्रः परमेश्वरः"[4] { अथर्व0}

वस्तुतः वेदों में रुद्र अथवा शिव के वास्तविक स्वरूप का जो वर्णन मिलता है उस पर सूक्ष्म दृष्टिकोण से विचार करने पर हम इस निर्णय पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि रुद्र ही महादेव हैं और अग्नि ही रुद्र है ।

1· ऋ0 7·28·7

2· अथर्व0 1·19·3

3· अथर्व0 9·92·1

4· अथर्व0 11·2·3

" त्वमग्ने रुद्रो असुरो महादिवस्त्वं
शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयस्त्वं
पूषा विधत: पासि नुत्मना ।। "ऋ०

ऋग्वेद में रुद्र के स्वरूप और इनके दैहिक गुणों का वर्णन करते हुये कहा गया है कि ये रुद्रदेव सुदृढ़ शरीर वाले और दृढ़ भुजाओं से युक्त है[1]। इनके अधरोष्ठ अतिशय सुन्दर है[2]। इनके केश- पूषन की तरह वेणीयुक्त है[3]। ये प्रखर सूर्य की भाँति अतितेजस्वी और स्वर्ण की भाँति प्रदीप्त हैं[4]। सुवर्णालङ्कारों से सज्जित ये रुद्र विविध रङ्गो वाले कण्ठहार को धारण करते है[5]। इनके अन्य गुणों का वर्णन मिलता है। जिसके अनुसार सहस्त्र नेत्र हैं[6]। ये चर्मविष्टित और पर्वतों में रहने वाले हैं[7]।

---

1. ऋ0 2·33·6
2. ऋ0 2·33·5
3. ऋ0 1·114·1-5
4. ऋ0 1·43·5
5. ऋ0 2·33·4
6. अथर्व0 11·2·2-7
7. वा0सं0 16·2·4

ये मरूतों के जनक है[1]। इन्होने ही मरूतों को पृश्नि के उज्जवल पयोधर से उत्पन्न किया था। यहाँ यह तथ्य द्रष्टव्य है कि जहाँ रूद्र को मरूतों का पिता कहकर उनके साथ इनके अभिन्नता का वर्णन किया गया है, वहीं मरूतों के कृत्यों के साथ रूद्र की किसी भी प्रकार सम्बद्धता से इन्कार किया गया है।

ऋग्वेद में रूद्र के युद्ध के आयुधों का भी वर्णन मिलता है। एक बार इन्हें अपने हाथ में वज्र धारण करते हुये कहा गया है[2]। आकाश में प्रक्षिप्त इनका विद्युत् शर- पृथ्वी को पार करता है[3]। साधारणतया इन्हें एक धनुष और ऐसे वाणों से सुसज्जित बताया गया है जो शक्तिशाली और शीघ्रगामी है[4]। इन्हें कृशानु तथा धनुर्धरों के साथ आवाहन किया गया है[5]। ऋग्वेद में वर्णित रूद्र के धनुर्धर होने की कल्पना तथा इन्द्र की एक रथारूढ धनुर्धर होने की कल्पना में साम्य प्रतीत होता है। सूक्ष्म रूप से देखने पर इन्द्र का यह वर्णन रूद्रपरक ही प्रतीत होता है[6]।

---

1. ऋ0 1·114·6-9 तथा 2·34·2
2. ऋ0 2·33·3
3. ऋ0 7·46·3
4. ऋ0 2·33·10-11, ऋ0 5·42·11, ऋ0 10·125·9 और 7·46·1
5. ऋ0 10·64·8
6. ऋ0 6·20·9 तथा 2·33·11

अथर्ववेद मे भी इन्हें धनुर्धर कहा गया है[1]। इसी वेद तथा बाद के ग्रन्थों में रुद्र के धनुष बाण तथा शस्त्र गदा आदि का अवसर वर्णन मिलता है[2]। अथर्ववेद[3] तैत्तिरीय संहिता[4] एवं शतपथ ब्राह्मण[5] में रुद्रदेव को अग्नि कहा गया है । यजुर्वेद का तो सम्पूर्ण रुद्राध्याय ही अग्निपरक प्रतीत होता है । महाभारत[6] के वनपर्व में कहा गया है कि-

" रुद्रमग्निं द्विजा प्राहु रुद्रसूनुस्ततस्तु स:"

शतपथ ब्राह्मण[7] में रुद्र को सर्वाग्नि कहा गया है और प्रखर अग्नि को गिरिश गिरिशन्त, गिरिष्ठ, गिरित्र कहा गया है । निरुक्त में यास्काचार्य कहते हैं- " अग्निरपि रुद्र उच्यते" अर्थात् अग्नि को भी रुद्र कहा जाता है । ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल का तैंतीसवाँ सूक्त जो कि गृत्समद सूक्त के नाम से जाना जाता है रुद्र परक प्रतीत होता है । उसके प्रथम मंत्र में यह प्रार्थना की गयी है कि " हे मरुद् पिता हमें सूर्यदर्शन से वंचित न करो तथा तेरहवें मन्त्र में रुद्र को कपिशवर्ण एवं बभ्रु कहा गया है[8]।

1. अथर्व 1·28·1 तथा 6·93·1
2. शतपथ ब्रा० 1·1·1,6 तथा अथर्व 1·28·5
3. अथर्व 7·87·1
4. तै०सं० 5·1·34 तथा 5·7·3
5. श०ब्रा० 6·1·3 ,10 तथा 1· 7·2-8
6. महाभारत 227
7. श०ब्रा० 9·1·1
8. ऋ० 2·33·3

" बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः "
{ऋ0 2.33.3}

वस्तुतः वैदिक वाङ्•मय में रुद्र काजो वर्णन मिलता है वह बहु आयामी है । ऋग्वेद में रुद्र को भयंकर तथा हिंसक पशु की भाँति विनाशक कहा गया है[1] । ये आकाश के अरुष अर्थात् वाराह है[2] ये रुद्र देव महान शक्तिशाली, बलवानों में बलवानतम, अधृष्य तथा शक्ति में अद्वितीय है[3] । ये द्रुतगामी, क्षिप्र और युवा हैं[4] । ये आकाश के महान असुर तथा आत्मवैभव सम्पन्न हैं[5] । ये योद्धाओं पर शासन करते हैं[6] । ये रुद्र देव अपने नियमों तथा सार्वभौमिक आधिपत्य द्वारा देवों और मनुष्यों के कर्मों से अवगत हैं[7] । ये जल धाराओं को पृथ्वी पर प्रवाहित

---

1. ऋ0 2.33.तथा 10.126.5
2. ऋ0 1.114.5
3. ऋ033.6.8-15 तथा 6.10.4. 2.33.10
4. ऋ0 2.33.1 तथा 5.60.5 और 6.49.10
5. ऋ0 4.42.11
6. 1.129.2 तथा 10.92.9
7. ऋ0 7.46.2

कराते हैं तथा अपने गर्जन द्वारा सभी वस्तुओं को आर्द्र करते हैं[1]। ये रुद्रदेव भयङ्कर होने के साथ साथ मेधावी और अतिशय दयालु भी हैं[2]। इन्हें सरलता से इनके उपासक आहूत कर प्रसन्न कर लेते हैं[3]। ये कल्याण करने वाले " शिव " है । रुद्र की यह " शिव " उपाधि अथर्ववेद के समयतक भी किसी अन्य देवता की विशिष्टता नहीं बन सकी है ।

इस महादेव रुद्र के दो स्वरूप हैं-

1. सौम्य
2. उग्र

" स्थिरेभिरङ्गैः पुरूरूप उग्रः । "

यजुर्वेद के मत में रुद्र शब्द का अर्थ है महान और प्रशस्य । इसका दूसरा अर्थ है भयङ्कर यथा-

" नमः उग्राय च भीमाय च[4] "

वस्तुतः रुद्र के लिये प्रयुक्त रुद्र शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ क्यों कि रुद्र भाष्य में लिखा है-

---

1. ऋ0 12.92.5
2. ऋ0 2.33.7 तथा 6.49.10
3. ऋ0 2.33.9
4. यजुर्वेद रुद्राध्याय मन्त्र सं0 40

" उग्र: श्रेष्ठ:, उत्पूर्वाद् गमेरुद्गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे " ऋज्रेन्द्राग्र:" इति उणादि सूत्रेण" रन् प्रत्यय:" अतएव उग्रोऽस्युग्रोऽहं सजातेषु भूयासम् इति मन्त्रे ज्ञातिश्रेष्ठ्यप्रशंसा विषये स्वस्मिन्" उग्र" शब्द: प्रयुक्त: । सर्व श्रेष्ठ-स्मत्वरूपं विश्वाधिकत्वं सिद्धयति । भीमो भयङ्कर: भीषाऽस्माद्वात: पवते इति श्रुते: । तथा च महानुभावानिन्द्राग्न्यादीन् प्रत्यापि भय-ङ्करत्वेन तन्नियन्तुर्भगवत: सर्वोत्तमत्वमिति भाव: इत्यादि: ।

ऋग्वेद के रुद्र अभिमानी देव होते हुये भी दैत्यों की भाँति सर्वथा मात्सर्यपूर्ण नहीं है । ये देवताओं के क्रोध अथवा उनके द्वारा उत्पन्न किये गये संकटों से अपने उपासकों की रक्षा भी करते हैं[1] । ये रुद्रदेव मात्र विपत्ति रक्षक ही नहीं प्रत्युत् प्रसन्न होने पर अपने भक्तों को ऐश्वर्य भी प्रदान करते हैं[2] । सम्भवत: इसीलिये तत्वज्ञ वैदिक ऋषियों ने मनुष्यों तथा पशुओं के कल्याण के लिये इनका आवाहन किया है[3] । रुद्रदेव की उपशामक शक्ति का ऋग्वेद में अनेक बार वर्णन आया है । ये उपचार प्रदान करते हैं तथा सभी उपचारों के नायक भी हैं[4] । इनके पास सहस्त्रों

1· ऋग्वेद 1·114·4 तथा 2·33· 7

2· ऋग्वेद 1·114·1-2 तथा 2·33·9

3· ऋग्वेद 1·43·9

4· ऋग्वेद 2·33·12 तथा 5·42·11

उपचार[1] हैं। ये चुने हुये उपचार स्वयं अपने हाथ में लेकर चलते हैं[2]। इनका हाथ विपत्तियों का शामक तथा इनके स्तोताओं के समृद्धि को बढानेवाला है[3]। ये रुद्रदेव अपने उपचारों द्वारा अपने स्तोताओं को स्वस्थ, प्रसन्न और निरोग रखते हैं, क्यों कि ये तो चिकित्सकों में भी श्रेष्ठतम चिकित्सक हैं[4]। इन रुद्रदेव के श्रेष्ठ और शुभ उपचारों से इनके स्तोता शतशीत ऋतुओं तक जीने की अभिलाषा रखते हैं[5]। ये रुद्रदेव अपने स्तोताओं की सन्तानों के सम्पूर्ण व्याधियों को दूर कर देते हैं[6]।

ऋग्वेद[7] के अनुसार रुद्र भयङ्कर हैं। परन्तु अतिशय कृपालु एवं भोले हैं। इसीलिये इनके लिये "मीढवस" अर्थात् उपकारी शब्द का प्रयोग किया गया है। नाभानेदिष्ठ के यज्ञ में रुद्र कृष्ण वसन परिधान करके आये। उनके हस्त में खड्ग था और यज्ञ वेदी पर आकर उन्होंने घोर गर्जन

---

1. ऋग्वेद 7.46.3
2. ऋ01.114.5
3. ऋ02.33.7
4. ऋ0 2.33.4
5. ऋ0 2.33.2
6. ऋ0 7.46.2
7. 1.114.3

किया । परन्तु रुद्र का वह रूप संहारक नहीं था । उन्होंने प्रसन्नता-पूर्वक नाभानेदिष्ठ को अखिल ऐश्वर्य प्रदान कर दिया । यह रुद्र की परम कृपालुता एवं सज्जनता का ही प्रतीक था कि उग्र आयुधों एवं भयङ्कर वर्णों से युक्त होते हुये भी उन्होंने अपनी महानता का प्रत्यक्ष सङ्केत नाभानेदिष्ठ के यज्ञ में दिया ।

पाश्चात्य विद्वान मैक्डानल रुद्र को विद्युत का देवता मानते हैं ।

" नमो विद्युताय "[1] (रुद्राध्याय)

"नमस्ते अस्तु विद्युते "[2] (यजु०)

श्रोडर (Shraeder) " रुद्र " का अर्थ प्रेतगण का नेता मानते हैं, परन्तु यह अर्थ समीचीन नहीं जानपड़ता क्यों कि यजुर्वेद[3] स्वयं ही कहता है-

" प्रेत प्रकर्षेण गच्छत । सेनानायक इन्द्ररूप रुद्रः । " (यजु०)

---

1. रुद्राध्याय मं9 सं0 39
2. यजु0 36-121
3. यजु0 17·46

प्र उपसर्गपूर्वक गत्यर्थ " इण् " धातु के भूतकृदन्तरूप " इत " शब्द से प्रेत शब्द निष्पन्न होता है । इसप्रकार इस लोक से गया हुआ प्राणी "प्रेत" कहलाता है । इस प्राणी का नियमकर्त्ता यम है और यमदेव का अधिपति रुद्र है[1] ।

" नमो याम्याय पापिनां नरकार्तिदाता रुद्रः । " {यजु०}

रुद्र शब्द "द्रापि" अर्थ में भी आता है[2] ।

आचार्य शङ्कराचार्य जी के अनुसार पापियों की दुर्गति करने वाले और नरक देने वाले रुद्र हैं ।

" द्रा " शब्दः कुत्सितवाची, कुत्सितां, गतिमापयतीति द्रापिः, पापकारिणः, कुत्सितां गतिं नयतीत्यर्थः । {श०भा०}

गीता में श्री हरि स्वयं श्री मुख से कहते हैं -

यजु० 16/33

2. यजु० 16/47

तानहं द्विषत: क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।

क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।

हिलेब्राण्ट (Hillebrandt) (16:19) महोदय[1] " रुद्र " शब्द का अभिप्राय उष्ण कटिबन्ध की गर्मी बतलाते हैं । यथा-

" आतप्याय च नम: " । (यजु०)

" आतप " धूपस्वरूप रुद्र को नमस्कार है ।

सुर्व्याय नम:[2] (यजु०)

महाप्रलय की अग्नि में विराजमान रुद्र को नमस्कार है ।

" नमस्ताम्राय नम:[3] । " (यजु०)

विण्टर निट्स (Winternitz) के मत में रुद्र डाकिनी शास्त्र के देवता है । लेकिन भूत प्रेत पिशाच आदि के मलिन मंत्रों के देवता रुद्र नहीं है । परन्तु आस्तिक भारतीय परम्परा के मत में मूलाधार चक्र में

---

1. यजु० 16/38
2. यजु० 16/45
3. यजु० 16/35

" कुण्डलिनी " " सुषुम्ना " को वेष्टित किये हुये हैं और मूलाधार की अधिष्ठात्री शक्ति का नाम भी " डाकिनी " शक्ति है । इस शक्ति का स्वामी महेश्वर है । इस चक्र मे ध्यान करने से योगीजन संसार से मुक्ति पा जाते हैं । अतः रुद्र योगशास्त्र के अधिष्ठातृ देवता हैं । योगी-जन उन्हीं की आराधना कर अपने अभीप्सित वस्तु की प्राप्ति करते हैं ।

" पिशल " और " ग्रासमैन " ने रुद्र शब्द का अर्थ प्रकाश किया है। "असावादित्यो ब्रह्म" अर्थात् यह आदित्य, सूर्य ब्रह्म है । सूर्य रूप रुद्र की उपासना से उपासक परम कल्याण का भागी बनता है तथा पुरुषार्थ की सिद्धि होती है । आचार्य शङ्कर ने अपने भाष्य में रुद्र के इस स्वरूप का अत्यन्त तात्त्विक विश्लेषण किया है उनके अनुसार-

" उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान-सकलं भद्रमश्नुते । अतोऽनायासेनैवाखिलपुरुषार्थप्रदः परमेश्वर एव उपास्यः । " {शा०भा०}

अथर्वशिखोपनिषद्[1] भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है ।

---

1. अथर्वशिखोपनिषद् 2.3.5

" सर्वेभ्योन्त: स्थानेभ्यो: ध्येय: प्रदीपवत्प्रकाशयतीति प्रकाश: "।

अर्थात् सभी के हृदय में ध्यान करने योग्य होने से रुद्र प्रकाश (ज्योति:) स्वरूप हैं । गीता भी इसी तथ्य की पुष्टि करती प्रतीत होती है -

" ज्योतिषां रविरंशुमान् "[1]

निरुक्तकार यास्क " रुद्र " शब्द से वर्षा और पवन का देवता यह अर्थ लेते हैं ।

" नमो वर्षाय "[2] (यजु०)

वर्षारूप रुद्र को नमस्कार है । गीता में भी कृष्ण ने अर्जुन से यही कहा है कि " मैं ही वृष्टि को रोकता हूँ और मैं ही मेघरूप से वृष्टि करता हूँ ।

" अहं वर्ष निगृह्णाम्युत्सृजामि च " (गीता)

अथर्ववेद में रुद्र की स्तुति करते हुये ऋषि कहता है कि "हे जल से चिकित्सा करने वाले , नीलशिखावाले पुरूषार्थी रुद्र तुम प्रत्येक प्रश्न के

---

1. श्रीमद्भगवतगीता 10-21

2. यजु० 13/39

प्रति, प्रतिवादीको जीत लो तथा प्रतिपक्षी को शुष्क कर दो । यहाँ ओषधिक रूप में रुद्र की अर्चना की गयी है[1]।

" रुद्रजलाषभेषज नीलशिखण्डकर्मकृत् ।
प्राशं प्रतिप्राशो- जत्यरसान्कृण्वोषधे ।। "

ये रुद्रदेव ही अग्नि में जलों में ओषधी और वनस्पतियों में प्रविष्ट होकर इस निखिल जगत कीरचना करते हैं[2]।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य
ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वाभुवनानि चाक्लृपे ।
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ।। "

ये रुद्रदेव अपने विभिन्न नामों के द्वारा उपासकों का अर्चन कर स्वीकार करते हैं । सुन्दर धनुष से युक्त ये रुद्र पूर्व दिशा में" वज्र " नाम वाले हैं तथा अग्नि ही इनका बाण है[3] । इनकी स्तुति करते हुये स्तोता कहता

---

1. अथर्व0 2·27·6
2. वही 7·87·1
3. अथर्व0 3.26.1

है कि " हे रुद्र तुम दक्षिण दिशा मेंरक्षा करने वाले हो, काम ही तुम्हारा बाण है । तुम हमें सुखी करो और हमें आदेश दो, हम अपना सर्वस्व तुम्हे अर्पण करते हैं[1] । ये रुद्रदेव पश्चिम दिशा में" विराज" नामक देव हैं तथा जल ही इनका बाण है[2]।

उत्तर दिशा मे ये" वेध" करने वाले देव है तथा वायु ही इनका बाण है[3] । ध्रुव दिशा में ये " निलिम्प" नामक देव हैं और औषधी ही इनका बाण है[4]। उर्ध्व दिशा में "रक्षक है" तथा ज्ञान ही इनका बाण है[5]। प्राची दिशा के ये रुद्रदेव तेजस्वी स्वामी, बन्धन रहित रक्षक और प्रकाश रूप शस्त्र है[6]।

" प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो- रक्षितादित्या इषव: । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो-नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु यो स्मान्द्वेष्टि य वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म: ।। "

पश्चिम दिशा के ये रुद्रदेव श्रेष्ठ अधिपति, स्पर्धा में उत्साह धारण करने वाले संरक्षक और अन्न है[7] । उत्तर दिशा के ये शान्त अधिपति स्वयं सिद्ध रक्षक और विद्युतमय इषु हैं[8]।

1• अथर्व० 3•27•2   2• अथर्व० 3•26•3

3• अथर्व 3•26•4   4• वही 3•26•5

5• वही 3•26•6   6• वही 3•27•1-5

7• वही 3•27•1-3   8• वही 3•27•1-4

प्रलय काल के पवन औरवर्षा के देवता रुद्र ही है । क्यों कि भारतीयपरम्परा के अनुसार शिव अथवा रुद्र के तीन क्षेत्र क्रमशः सूर्य, अग्नि और सोम के स्वरूप है । अतः वृष्टि के नियमन में रुद्र का अपना एक विशिष्टयोगदान है । वेद भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं ।[1]

" नमो वात्याय रेष्म्याय च "§ यजु0§

गीता[2] भी इसी मत की पुष्टि करती प्रतीत होती है ।

" पवनः पवतामास्मि, परी चिर्मरूतामास्मि "§ गीता§

आचार्य सायण के मत में " रुद्र " शङ्कर का नाम है और इसका अर्थ है- रूलाने वाला । यथा-

" रुद्राणां शङ्करश्चास्मि ।"[3]

रुद्र का स्वरूप क्या है और उसे रुद्र क्यों कहते हैं । इस सम्बन्ध में एक बडा रोचक आख्यान वृहदारण्यकोपनिषद् में मिलता है जब विदग्ध शाकल्य महर्षि याज्ञवल्क्य से रुद्र के स्वरूप के विषय में प्रश्न करते हैं तो

1· यजु0 13·45

2· गीता 10·21,31

3· गीता 10·23

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि पुरुषों में रहने वाले दस प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा है मृत्यु के समय इसशरीर का त्याग करते हुये वे दूसरों को रुलाते हैं, इसी से उन्हें रुद्र कहते हैं।

" कतमेरुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदस्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ।[1] "

§ पृ० उ०§

वैयाकरणिकों ने व्याकरण शास्त्र के आधार पर " रुद्र " की निष्पत्ति बता उसके स्वरूप की एक विलक्षण आख्या प्रस्तुत की है। उनके अनुसार-

"रुदिर अश्रुविमोचने "धातु से " णिच् " प्रत्यय करके " रोदेर्णिलुक् च " इस उणादि सूत्र के अनुसाररक् प्रत्यय का आगम और णिच् का लोप हो जाने से " रुद्र " शब्द सिद्ध होता है। " यः रोदयति अन्यायकारिणो जनान् सरुद्रः " । अर्थात् अन्याय करने वालों को रुलाने वाला रुद्र है। यजुर्वेद[2] भी रुद्र के इसी स्वरूप का समर्थन करता प्रतीत होता है यथा-

---

1· वृहदारण्यकोपनिषद 3·9·4

2· यजुर्वेद 16·46

" आखिदते प्रखिदते च नमः" ॥ यजु० ॥

सायणाचार्यने इस मंत्र की व्याख्या इस प्रकार की है-

" आ समन्तात् खिद्यते दैन्यं करोति अभक्तानाम् । प्रकर्षेण खेदयति पापिनः ।" अर्थात् निन्दकों तथा नास्तिकों को सदा दुःख देने वाला रुद्र है । अथर्ववेद[1] एवं गीता[2] में भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है यथा-

1. योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।" ॥ अथर्व० ॥
2. दण्डो दमयतामस्मि" ॥ गीता ॥

ऋग्वेद[3] के अनुसार रुद्र मित्र तथा वरुण के साथ मिल कर संसार को गतिमान व चेतनशील करते हैं । रुद्र सेनापति है, यज्ञपति हैं, जलाशयों के पति हैं तथा भेषजों के पति हैं अथवा जलाष नामक औषधि के पति हैं । उज्ज्वल वर्ण रुद्र सूर्य स्वर्ण के सदृश दीप्तिमान हैं । देवों को धनवान बनाने वाला वसु भी रुद्र ही है ।

रुद्र के केश जटिल है । उनके ओष्ठ सुन्दर है । उनका रंग रोहित है । वे दीप्तिमान दिव है । वे अतिशक्तिशाली तथा वराह के

---

1. अथर्ववेद 11-2.93
2. गीता 10.38
3. ऋ० सं० 1.43.3-5

सदृश विशाल आकृति वाले हैं । वे मरूतों के पिता है तथा पशुओं के रक्षक। रुद्र गो, अश्वों तथा सैनिकों को नष्ट करने वाले हैं[1] ।

रुद्र स्थिरधन्वा है । उनके बाण शीघ्रगामी है वे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष के सभी शत्रुओं को बाणों से बिद्ध करते हैं । वे अभिभूत एषा-व्यूह को बाणों से विद्ध करते हैं । विद्युन्मय रुद्र आकाश से पृथ्वी पर जल की वृष्टि कर औषधियों की सृष्टि करते हैं[2] ।

ये रुद्र आकाश अन्तरिक्ष एवं पृथ्वीरूपिणी तीन माताओं के पुत्र त्र्यम्बक हैं[3] ।

ऋग्वेद में रुद्र को मरूतों को बढाने वाला कहा गया है तथा मरूतों को रुद्र पुत्र कहा गया है । मरुद्गण वेगवान वायु थे इसमें संदेह नहीं परन्तु इनका जो वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त होता है उससे परवर्ती महाकाव्य एव पुराणों की अनेक कथाओं का अर्थ स्पष्ट हो जाता है । यथा- रुद्र पुत्र मरूतों द्वारा रुद्र की प्रेरणा से इन्द्र को वृत्र वध में सहायता

1· ऋ० सं० 1·114·1

2· ऋ०सं० +7·46

3· ऋ०सं० 7·49·12

देना आदि[1]।

रुद्र के दो नेत्र सूर्य तथा चन्द्रमा है तथा तीसरा नेत्र अग्नि है जो संसार को भस्म कर देता है। अग्नि कोअनेक मंत्रों में देवता का तीसरा नेत्र कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में मृगव्याध- मण्डल व उस मण्डल में स्थित अत्युज्ज्वल लुब्धक तारा को पशुपति रुद्र बताया गया है, जिसकीरचना अपनीपुत्री रोहिणी को कुत्सित भावना से पीछा करने वाले कालपुरुषमण्डल रूपीप्रजापति को दण्ड देने हेतु हुई थी। प्रजापति या कालपुरुषमण्डल के हृदय में तीन तारे हैं जो त्रिकाण्ड केनाम से प्रसिद्ध है। रुद्र के द्वारा फेंके गये त्रिशूल के ये तीन छेद हैं[2]।

सायणाचार्य रुद्र के दो स्वरूपों का वर्णन करते हैं एक शान्त और दूसरा घोर। यथा-

द्वे हि रुद्रस्य तनू तथा चोपरिष्टादाम्नायते। रुद्रो वा एष यदग्निस्तस्यैते तनुवौ घोराऽन्या शिवान्येति।

रुद्र के व्यक्तित्व काजो उग्र रूप है वह अग्नि है तथा शान्त रूप शिव है।

---

1. ऋ० सं० 1•23•9
2. ऐत०ब्रा० 9•13

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्य: सर्वेभ्य: सर्वशर्वेभ्यो नम-स्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्य: ।।

सत्त्वगुण युक्त होने से अघोर अर्थात् शान्त, राजस होने से घोर और तामस होने से घोरतर स्वरूप धारण करने वाले तथा प्रलय में जगत का संहार करने वाले रुद्रदेव को नमस्कार है ।

वस्तुत: भारतीयसंस्कृति में रुद्र अर्थात् शिव को योग विद्या का परमगुरु, परमयोगीश्वर या आदि प्रवर्तक माना गया है । शिव औरयोग एक ही तत्त्व की ख्याति है । योग समाधि का फल ही आत्म दर्शन है । परवर्ती भारतीय वाङ्मय में रुद्र या शिव के शान्त रूप में हमें इसी तत्त्व का दिग्दर्शन होता है । संस्कृत साहित्य के प्रस्थान कवि कालिदास ने शिव के इस तात्विक स्वरूप का वर्णन करते हुये लिखा है कि " जिस समय देवकार्य की सिद्धि हेतु शिव की समाधि नष्ट करने हेतु कामदेव कैलाश पर पहुँचा उस समय शिव समाधि के द्वारा उस आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर रहे थे, जिसे योगीजन अपने शरीर के अन्दर ढूंढा करते हैं[1] ।

" मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति- हृदि व्यवस्थाप्य समाधि वश्यम् ।
यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्त- मात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् ।। "

1• कुमारसम्भवम्- 3/50

अर्थात् इनवद्दइन्द्रियों द्वारों से संचार करने वाली मानसी वृत्तियों को समाधि द्वारा वशीभूत करके शिव उस अक्षर आत्मतत्व को अपने क्षेत्र या शरीर में ही देख रहे थे जिसका क्षेत्रज्ञ योगीजन ज्ञान करते हैं ।

आचार्य भट्टभास्कर ने सायणाचार्य द्वारा वर्णित रुद्र के शान्त स्वरूप को दो भागों में विभक्त किया है । उनके अनुसार रुद्र का यह शान्त स्वरूप भी दो प्रकार का है- सायुध और निरायुध । रुद्राध्याय में इन दोनों प्रकार के रूपों की स्तुति की गयी है । इन्हें निर्गुण और सगुण नाम से भी पुकारते हैं । यह स्वरूप त्र्यम्बक रूप है ।

"शान्ता तनुर्द्विविधा- सायुधा निरायुधा च । तत्र प्रथमानन्तरेण मन्त्रेण प्रतिपादिता इतरा तनुरनेन प्रतिपाद्यते"।

" आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीन प्रकार के सांसारिक दु:खों का जो नाश करता है वह रुद्र है । "

" तापत्रयात्मकं संसार दु:खं रुत् दु:खहेतुर्वा रुत् । रुतं द्रावयतीति रुद्र: ।"

इन तीनों दु:खों की निवृत्ति हेतु ही भगवान शङ्कर ने त्रिशूल धारण किया है ।

" त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिम्"

" दु:ख अथवा दु:ख के कारण को " रुद्र " कहते है । उस " रुद्र "

को भगवान शिव दूर करते हैं इसीलिये इस निखिल विश्व के आदिकारण भगवान् शङ्कर को " रुद्र " कहते हैं । "

" रुद्र दुःखं दुःखहेतुर्वाद्रावयत्येष नः प्रभुः ।
रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम् ।।"

भगवान् शिव के इस स्वरूप को देखकर ही ऋषि कहता है- उग्राय च प्रथमाय च नमः" । ﴾ यजु० 16/30﴿

सदा शिव को जानने से पाप का नाश होता है तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

" तेन पापापहानिः स्याज्ज्ञात्वा देवं सदाशिवम् ।"
﴾ जाबाल्युपनिषद् ﴿

वस्तुतः ये रुद्रदेव जीवन काल में प्राणी के सम्पूर्ण अशुभों को दूर करते हैं तथा शरीर परित्याग करने में उसे मुक्ति प्रदान करते हैं इसी कारण इन्हें रुद्र कहा जाता है । कहा भी गया है-

" अशुभं द्रावयन् रुद्रो यज्जहार पुनर्भवम् ।
ततः स्मृताभिधो रुद्रशब्देनात्राभिधीयते ।।"

शिव अर्थात् रुद्र के इस तात्त्विक स्वरूप को जानने वाले अत्यन्त शान्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करते हैं ।

" ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति " § श्वेता० 4/14§

गीता भी इसी मत की पुष्टि करती है-

" ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं

यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयः । § 15/4§

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।। § 18/66§

वैदिक मान्यता के अनुसार[1] " रुद्र " कल्याण स्वरूप, संसार के लिये सुखस्वरूप, लौकिक सुख देने वाले मोक्षप्रदान करने वाले, परम कल्याण रूप और भक्तों के परम कल्याण कारक है । भक्तों को निष्पाप बनाने वाले रुद्र को नमस्कार हो नमस्कार हो ।

" नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च ।

मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।। "

ये रुद्र ही प्रणव अर्थात् ओंकार के कीर्तन के द्वारा जीव को अपने समीप लाते हैं ।

" रुत्या प्रणवरूपाय स्वात्मानं प्रापयतीति वा रुद्रः ।

तैत्तिरीय आरण्यक[2] भी इसी मत की पुष्टि करती है ।

---

1. यजु० 16/41
2. तैत्ति० आ० 9/8

" ओमिति ब्रह्म"[1]
गीता भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है ।

" ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरमामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।।

परम कल्याण रूप परमात्मा का वाचक ओंकार है ।

यह ओंकार " शिव " "रुद्र " इत्यादि सारे नामों से श्रेष्ठ है । शिवलिङ्ग ओंकार स्वरूप हैं और ओङ्कार सदृश आकार में ही लिङ्गार्चन होता है[2] ।

" नमस्ताराय " ﴾ यजु0﴿

आचार्यशङ्कर अपने भाष्य में इसकी व्याख्या करते हुये कहते हैं[3] ।

---

1. गीता 8/13
2. यजु0 16/40
3. शा0भा0 6-8

"तारयति संसारमिति तार: । तार: प्रणव: तद्रूपाय नम: । संसार सागरादुत्तारकं ब्रह्म ।"6 {शा०भा०}

महर्षि पतन्जलि[1] अपने योगभाष्य में कहते हैं-

"तस्य वाचक प्रणव:" {योगदर्शन}

शिव पुराण[2] भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है । कि यह ओङ्कार शिव" "रुद्र" इत्यादि सारे नामों से श्रेष्ठ है ।

प्रणवोवाचक स्तस्य शिवस्य परमात्मन: ।
शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवो हि पर: स्मृत: ।।

योगदर्शन[3] रुद्र के स्वरूप के सम्बन्ध में एक अत्यन्त रोचक व्याख्या प्रस्तुत करता है उसके अनुसार "रोधिका" और बन्धिका दो प्रकार की शक्तियाँ हैं । रोधिका मोक्ष मार्ग में आवरण डालती है । जिसके फलस्वरूप मोक्ष मार्ग नहीं दीख पड़ता है । दूसरी - बन्धिका शक्ति मोक्ष में विक्षेप डालती है जिसके कारण मोक्ष प्राप्ति दुष्कर हो जाती है । इन दोनों प्रकार की शक्तियों से भक्तों को जो दूर हटाते हैं वही "रुद्र" अथवा शङ्कर हैं ।

---

1. योगदर्शन 1/27
2. शिव पुराण वा० सं० अ० 3/7
3. योगदर्शन 1/23

" रोधिका च बन्धिका शक्ति रुद्र ।
तस्य द्रावयिता भक्तेभ्य इति वा विग्रह: ।। "

योग दर्शन के मत में इन दोनों शक्तियों के निरोध करने के लिये " ईश्वर प्राणि धानाद्वा " {योगदर्शन 1-23} इसका मनन एवं ईश्वर की शरण ग्रहण करनी चाहिये । " क्लेशोऽधिकतर: " यह गीता {12/5} का वाक्य है और अविद्यादिक क्लेश मोक्ष प्राप्ति में बाधक है । इन अविद्या आदि क्लेशों का नाश ईश्वर ही करते हैं, क्यों कि वे ही क्लेश कर्मादि से रहित जीवों का उद्धार करने में समर्थ हैं[1] ।

सृष्टि के आदि में सृष्टि कर्ता ब्रह्मा को वेद रूपी शब्द का उपदेश देने वाले और उसके प्रभाव का दिग्दर्शन कराने वाले रुद्र ही है । यजुर्वेद के रुद्राध्याय में इस तथ्य का स्पष्ट संकेत मिलता है[2] ।

" श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम: "

रु{शब्दं वेदात्मानं} कल्पादौ ब्रह्मणे ददातीति रुद्र: ।

उपनिषदकार[3] भी रुद्र के इसी स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुये उनकी वन्दना

---

1. योगदर्शन 1/24
2. रुद्राध्याय मं० सं० 34
3. श्वे० उप० 6/18

करते हैं जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को उत्पन्न कर उन्हें वेदों को प्रदान करते हैं, उन रुद्र भगवान की मैं मोक्ष प्राप्ति के लिये शरण ग्रहण करता हूँ ।

" यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहं प्रपद्ये ।। "

§ श्वे0 उप0 §

यजुर्वेद[1] के अनुसार उस सर्वात्तम स्वरूप पुरुष के मानसिक यज्ञ से ही वेद उत्पन्न हुये ।

लिङ्ग पुराण[2] के अनुसार वाक् § वाणी " के द्वारा ओंकार जप से प्राप्त होने वाला जो फल है वही " रुद्र " है ।

"रुत्या वाग्रूपया वाच्यं प्रापयतीति रुद्रः ।

योग दर्शन के आचार्य पतन्जलि भी इस तथ्य की पुष्टि करते है ।

" तज्जपस्तदर्थ भावनम् " § योग दर्शन 1/28 §

यह रुद्र प्रणव के यथावत उच्चारण और ध्यान से प्राप्त होता है । इसी-

---

1· यजु0 31/7

2· लिङ्ग पुराण 2236

लिये प्रणव जप से पुरुष तत्त्व का साक्षात्कार होता है और अन्तरायों का नाश होता है।[1]

ये " रुद्र " घोर शब्द करते हुये मनुष्यों में प्रविष्ट होते हैं" रुद्रो रौतीति रोरूयमाणोद्रवति प्रविशति मर्त्यानिति रुद्रः । " यजुर्वेद[2] भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है कि " सर्वात्म रूप प्रजापति अन्तर्हृदय में स्थित हुआ प्रत्येक गर्भ में प्रविष्ट होता है । प्रश्नोपनिषद्कार[3] भी इसी मत की पुष्टि करते हैं । अन्यत्रापि[4] -

" अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः । " (गीता)

यजुर्वेद के रुद्राध्याय[5] में प्रत्यक्ष सूर्य रूप में रुद्र के स्वरूप का वर्णन मिलता है । सूर्य सदृश ज्योति स्वरूप होने के कारण ही द्वादश आदित्य के समान द्वादश ज्योतिलिङ्ग की अर्चना प्रसिद्ध है ।

" असौ यस्ताम्रो अरूण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।

ये रुद्र कोटि सूर्य के समान तेजस्वी है-

---

1. योग दर्शन 1/29
2. यजु0 31/19
3. प्रश्नोपनिषद 2-7
4. गीता 15=14
5. रुद्राध्याय मं0 सं0 - 6

" मार्तण्डकोटिप्रभमीश्वरं हरम् ।"[1]

श्वेता० उपनिषद के अनुसार वह परमात्मा अतिशय निर्मल, आनन्द का नियामक और ज्योति स्वरूप अविनाशी है ।

" सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः" ।

ये रुद्र त्रिविध तापों के निवारक हैं । संसार सागर के परम पार जीवन्मुक्ति में वर्तमान और अतिमंत्र जपादि के द्वारा पाप से तारने वाले अथवा उत्कृष्ट तत्वज्ञान के द्वारा संसार सागर से मनुष्य को पार कराने वाले हैं[2] । इनके स्वरूप का ज्ञान होते ही मानव सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है[3] ।

ये रुद्र सम्पूर्ण जगत् के प्राण दाता हैं क्यों कि रुद्र रूप प्राण ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं । इस तत्त्व को जो जानता है वह सभी प्राणियों में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हो जाता है[4] ।

" रुतिं शब्दं राति ददातीति प्राणो रुद्रः" ।

" यो ह वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ।" (छा०उ०)

---

1. श्वेता० उप० 3/12
2. यजु० रुद्राध्याय० मं०सं० 42
3. श्वेता० 4/16
4. छा०उ० 5·1·1

वैदिक साहित्य के मत में रुद्र ही इस निखिल विश्व पर ब्रह्मा रूप से शासन करता है । वह उत्पन्न होने वाले प्रत्येक प्राणी के मध्य में चेतन रूप से स्थित रहता है, तथा प्रलय के समय सभी कुछ विनष्ट हो जाने पर वह अद्वितीय रुद्र अपनी अनन्त शक्ति उमा के साथ स्थित रहता है । अतः उससे पृथक कुछ है ही नहीं ।[1]

" एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु
र्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ।। "

जब प्रलय काल में समाधि में दिन रात्रि नहीं थी, कार्य कारण नहीं था तब सभी प्रकार के आवरणों से रहित तुरीय स्वरूप एक रुद्र ही था । " जब सभी प्रपन्च अव्यक्त में लय हो जाता है और प्राण शक्ति निर्विशेष रूप से उमा में ओत प्रोत होती है कार्य- कारण से रहित शव की तरह अनन्त शक्तिमय श्मशान में शयन करती है, तब

---

1. श्वेता 3-2

अनन्ताकाशात्मक श्माशान व्यापी एक रुद्र ही अवशिष्ट रहता है, अत: स्पष्ट है कि उसके सदृश न कोई दूसरा हुआ है न होगा[1]।

यदा तस्मिन्न दिवा न रात्रि-
र्न सन्न चासच्छिव एव केवल: ।।"

ऋग्वेद[2] भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हुये कहता है कि" अपनी शक्ति के सहित एक रुद्र ही है।"

" स्वधया शुम्भु:" ऋ0

उपायुक्त परमेश्वर समर्थ[3] है अग्नि, विद्युत और सूर्यरूप तीन नेत्रों वाला नीलकण्ठ और तुरीयस्वरूप है। "

" उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।।" कैवल्य उप0

विश्व रचना के पूर्व बीजशक्ति चेतन के जितने स्वरूप में स्फुरित होती है, उसका चेतन का उतना भाग नीलकण्ठ होता है, क्यो कि अधिष्ठित माया जाल को मायिक ने अधिष्ठान रूप से पान किया था[4]।

---

1. श्वेता 4-18
2. ऋग्वेद 3·17·4
3. कै0उ0 7
4. ऋक्संहिता 10·87·18

जल का नाम विष और माया, अव्यक्त शक्ति का नाम सलिल है ।

" विषम् जलम् " § ऋक् संहिता§

यजुर्वेद में रुद्र को " नीलकण्ठ और श्वेतकण्ठ वाला कहा गया है । आध्यात्मिक दृष्टि कोण से इसका एक दूसरा ही स्वरूप प्रतीत होता है । सृष्टि के समय चेतन के एक भाग रूप कण्ठ में बीज शक्ति माया के रूप में भासती है और प्रलय के समय यह माया बीजशक्ति के रूप में रहती है । संभवत: इसी अभिप्राय से वैदिक ऋषियों ने " रुद्र "को नीलकण्ठ और " श्वेतकण्ठ " कहा है ।[1]

" नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ।"

तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार " उत्तमस्वरूप " ऋतम् § रुद्र§ही सत्यम्§ ब्रह्मा § है । इस रुद्र ने कण्ठ में माया रूप तम को धारण किया है । और वाम भाग में उमा को धारण किया है । इस परिणाम रहित त्रिपाद स्वरूप, कूटस्थ निराकार समस्त जगत् के आकार में विवर्तरूप से व्यापक रुद्र को नमस्कार है ।[2]

---

1. यजु0 16/28

2. तै0 आर0 10.12

" ऋतं सत्यं परं ब्रह्म
पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
उध्र्वरेतं विरूपाक्षं
विश्वरूपाय वै नमः ।। " [तै० आ०]

ये रुद्र अग्नि सोमात्मक है तथा सुन्दर धनुष बाण को धारण करते हैं । यहाँ पर अग्नि भोक्ता और प्रकाशरूप अमृत है और " सोम " भोग्य और अप्रकाशरूप मृत्यु है । प्राण शक्ति की ही वाह्यावस्था का नाम मृत्यु शक्ति और क्षर है । अतः इस कार्यात्मक सुंदर बाण को अक्षर-रूप सुंदर धनुष में धारण करने वाला वह तीस पुरुष रुद्र ही है । वह समस्त ब्रह्माण्ड के परम सुख का आधार है । इस रुद्र के अतिरिक्त सभी प्रपन्च दुख स्वरूप हैं । इसीलिये वैदिक ऋषि यह प्रार्थना करते हैं । कि- " हे चन्चल मन । यदि इह लोक और स्वर्ग के फल की भोग की इच्छा है तो यज्ञों के द्वारा उसकी पुजा कर तथा गायत्री आदि मंत्रों से उसकी प्रार्थना कर अथवा परममुक्ति रूप उत्तम शान्ति के लिये अभेदभाव से उसका ध्यान करे । वही प्राणादि व्यापार से रहित तथा प्राण शक्ति का प्रेरक स्वयं प्रकाश और शुद्ध ज्ञान स्वरूप है ।

" तमुष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो ।

---

1. ऋ० सं० 5.42.11

विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं
नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ।। " ऋ० सं०

श्वेताश्वतर उपनिषद्[1] के अनुसार आवरणात्मक आधार मृत्यु-शक्ति क्षर और प्रकाशात्मक आधेय- आभ्यन्तर प्राण ही अक्षर हैं । घोर और अघोरमय शरीरों को धारण करके ब्रह्मा और जीव रूप से ब्रह्माण्ड और पिण्ड का शासन करने वाला रुद्र ही है । उस रुद्र का अभेद चिन्तन करने से स्व स्वरूप साक्षात्कार के साथ समष्टि व्यष्टि माया रूप उपाधि विलीन हो जाती है । जिस प्रकार स्वप्न के पदार्थ जाग्रत अवस्था में विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार अपरोक्ष ज्ञान में माया अदृश्य हो जाती है।

" क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः ।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्व भावा-
द्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ।। श्वेता०

रुद्र तारने वाले ब्रह्म हैं, ज्ञानी को देहत्याग करते समय रुद्र

---

1. श्वेता० 1/10

भगवान ओंकार मंत्र का उपदेश करते हैं।[1]

" रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्यवष्टे " (जाबालोपनिषद्)

" प्रातः सोममुत रुद्र हुवेम " (ऋ० सं०)[2]

अथर्वशिरोपनिषद्[3] के अनुसार जो ओंकार है वह प्रणव है, जो प्रणव है वह सर्वव्यापी है, जो सर्वव्यापी है वह अनन्तशक्तिस्वरूप उमा है जो उमा है वही तारक मंत्र ब्रह्म विद्या है, जो तारक है वही सूक्ष्म ज्ञान शक्ति है, जो सूक्ष्म है वही शुद्ध है, जो शुद्ध है वही विद्युताभिमानी उमा है, जो उमा है वही परब्रह्म है जो ब्रह्म है वही रुद्र है, ईशान है भगवान है, महेश्वर है और महादेव है।

" यः ओंकारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म स एको रुद्रः, स ईशानः, स भगवान महेश्वरः स महादेवः।"

---

1. जाबालोप 3/8
2. ऋ० सं० 7/41
3. अथर्वशिरो० 2/4

श्वेताश्वतरोपनिषद्[1] के अनुसार " ये रुद्र भगवान समस्त प्राणियों के सिर, ग्रीवा आदि अङ्गवाले है और सबके हृदय में क्षेत्रज्ञ रूप से शयन करने वाले हैं वह सर्वव्यापी, सब ब्रह्माण्ड में स्थित है- इसी कारण वह सुखस्वरूप शिव है ।

" सर्वाननशिरोग्रीव: सर्वभूतगुहाशय: ।

सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगत: शिव: ।। "

तैत्तिरीयआरण्यक[2] के अनुसार जो रुद्र उमापति है । वही सब शरीरो में जीवरूप से प्रविष्ट हैं उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो ।प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष है, वह ब्रह्म लोक में ब्रह्मा भाव से प्रजापति लोक में प्रजापति रूप से सूर्य मण्डल में वैराट रूप से तथा देह में जीव रूप से स्थित है । उस महान सच्चिदानन्द स्वरूप रुद्र को बारम्बार प्रणाम हो । यह समस्त चराचरत्मक जगत् जो विद्यमान है हो गया है तथा होगा वह सब प्रपन्च रुद्र की सत्ता से भिन्न नहीं है । वह सब कुछ रुद्र ही है, इस रुद्र के प्रतिप्रणाम हो ।

1· श्वेता० 3·11

2· तै० आ० 10·16

" सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु । पुरुषो वै रुद्र: सन्महो नमो नम: । विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यद् । सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै नमो अस्तु । "

सामवेदीय कौथुमीय संहिता[1] के अनुसार " अपने पत्नी रूप अव्याकृत के मध्य में पूज्य ब्रह्मा को प्रकट करने वाले यज्ञ के प्रतिपालक ज्योति स्वरूप, (अग्नि) व्यापक स्वामी रुद्र को , वज्र के समान भयङ्कर मृत्यु के पूर्व अपनी रक्षा के लिये सभी मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान के द्वारा अर्चना करें ।

" आ वो राजानमध्वरस्य रुद्र होतारं सत्यायजं रोदस्यो:। अग्निं पुरातनयित्नोरचिताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ।। " (सामवेद कौथुमीय संहिता)

अग्नि, वायु, विद्युत् सूर्य आदि प्रकाश वाले समूह में ये रुद्र पुरुष-रूप में प्रविष्ट हुये तथा जल, चन्द्रमा, नक्षत्रादिकों में व्यापक है । यहीं प्राणियों के हृदय कण्ठ औरचक्षु में तथा वनस्पतियों के अन्तर्गत अन्न, घास इत्यादि में स्थित है । इन नामरूपात्मक समस्त चराचर के सर्जक, पालक और संहारक अद्वितीय रुद्र को नमस्कार है[2] ।

---

1. सामवेदीय कौथुमीय सं० 1·7·7
2. अथर्व 7·92·1

" यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व-

न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।

य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे

तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ।। " (अथर्ववेद)

ज्योतिस्वरूप हर है । जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहार करने वाले रुद्र है[1] ।"

" सविता हर:" (ऋ0)

ऋग्वेद[2] के अनुसार " रुद्र" पीछे है हर आगे है, सविता दक्षिण ओर है, ईन्शान उत्तर ओर है । सविता हमारे लिये सम्पूर्ण सुखों की प्रेरणा करे रुद्र देव हमारे लिये दीर्घ आयुष्कारक सिद्ध हो ।

" सविता पश्चात्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् सवित: न: सुवतु सर्वतातिं सवितानोरासतां दीर्घमायु: ।"

(ऋ0)

रुद्र का स्वरूप अत्यन्त विलक्षण है क्यों कि जो एक रुद्र है उसे ही द्रष्टा ऋषि विविध प्रकार से वर्णन करते हुये इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, वायु यम औरउत्तम प्रकाशयुक्त उदय अस्त रूप से गमन करने वाले, सूर्य रूप पक्षी इत्यादि नामों से पुकारते हैं[3] ।

1. ऋ0 10.158.2
2. ऋ0 1.36.14
3. ऋ0 1.164.46

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-
रथो दिव्य: स सुपर्णोगरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वद-
न्त्यग्नि यमं मातरिश्वान माहु: ।।§ ऋ0§

सम्भवत: इसीलिये वेद बार- बार कहते हैं कि " सब देवताओं से पूर्व अग्नि की पूजा अर्थात् अग्निहोत्र करनी चाहिये[1] ।

" अग्निर्वै देवानां प्रथम: " § ऐ0ब्रा0§

" अग्निर्मुखं प्रथमोदेवतानाम् "[2] ।§ ऐ0ब्रा0§

अग्निप्रथम एवम् सम्पूर्ण देवों का मुख है । अग्नि में हवन किये गये हवि को अग्निमुख से ग्रहण कर देवगण तृप्त होते हैं । जिस प्रकार हमारे मुख द्वारा खाया हुआ अन्न सब शरीर को पुष्ट करता है उसी तरह अग्नि से हवन किया हुआ हवि भी सब ब्रह्माण्डवर्ती देवताओं को तृप्त करता है ।

1· ऐ0ब्रा0 20·1·1

2· वही 1·9·2

तैत्तिरीय आरण्यक में भी ऋषि प्रार्थना करता है कि " हे हुत द्रव्य। मैं तुझे पाँच प्राणों में आहुतिरूप से हवन करता हूँ । तू शिव रूप से मेरी क्षुधा पिपासा का शमन करो ।[1]

" प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि ।

शिवोमाविशाप्रदाहाय । { तै० आ० }

वैदिक धर्म दर्शन के मत में आनन्दाभिलाषी मानव को संसार सागर से पार उतारने के लिये शिव तत्वागमन की सुदृढ पोत है । उपनिषदें विशद रूप से इस तत्त्व का विवेचन करती है । भगवान शिव ही अन्तः करण के प्रतिविम्बित जीव रूप से प्रकट है । वही तदंश जीव शरीर धारण कर जाग्रदवस्था में कलत्रअन्न पान आदि नाना भोग विलास पदार्थों से तृप्त होता है, स्वप्न के कल्पित सुख दुःखों को भोगता एवं सुषुप्तिकाल में तमोगुण से अभिभूत हो आनन्द का अनुभव करता है । जन्मान्तर के कर्मयोग से बार- बार जन्मादि ग्रहण कर तीनों अवस्थाओं में सुख दुःख भोगरूप क्रीडा करता है । शिवतत्ववेत्ता जीव जब यह अनुभव कर लेता है कि जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि प्रपन्चों को जो भगवान प्रकाशित कर रहे हैं । वह सदाशिव मैं ही हूँ, तब वह संसार के सभी बन्धनों से मुक्ति पा जाता है[2]।

1· तै० आ० 10·34

2· श्वे० उ० 1·6·9

" स एव सर्वं यदभूतं यच्च भव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येतिनान्य: पन्था विमुक्तये ।।"

§कै०उ०§

भगवान रुद्र के अनेक नाम है यथा महादेव, भव, दित्य, शंकर शम्भु, उमाकान्त, हर, मृड नीलकण्ठ, ईश, ईशान, महेश, महेश्वर, परमेश्वर, भर्ग, शर्व, रुद्र, महारुद्र, कालरुद्र, त्रिलोचन, विरूपाक्ष, विश्वरूप, वामदेव, काल, महाकाल, कलविकरण, पशुपति आदि । नारायणोपनिषद् में इसका स्पष्ट वर्णन मिलता है ।

" शिवाय नम: शिव लिङ्गाय नम:, भवाय नम:, भवलिङ्गाय नम:, सर्वाय नम:, शर्व लिङ्गाय नम:, कलाय नम:, बल प्रमथनाय नम:, आदि ।"

" नमो हिरण्यवाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय
हिरण्यपतयेऽम्बिकापतये उमापतये नमो नम: ।"6

रुद्र इस सृष्टि के नियामक भी है । गर्भोपनिषद् में- गर्भस्थ जीव की दु:ख निवृत्यर्थ भगवान महेश्वर से प्रार्थना का अत्यन्त सुन्दर वर्णन

1· नारायणोप० 2·3·6

मिलता है । इस उपनिषद् के अनुसार " जब जीव माता के गर्भ में आता है और नवम मास में इसके अङ्ग प्रत्यङ्ग पूर्ण हो जाते हैं, और ज्ञान सामग्री इन्द्रियाँ बुद्धि आदि के उदय होने से जब उसे पूर्व जन्म कृत शुभा-शुभ कर्मों का स्मरण आता है, तब वह जीव पश्चात्ताप करता है कि - मैंने हजारों बार जन्म लिया, विविध प्रकार के भोगों का भोग किया, अनेक माताओं के स्तनों का पान किया, अनेक बार जन्मा और मरा । जिन परिजनों के पालन पोषण में मैंने अगणित पुण्य- पाप किये वे प्रिय परिजन तो सुख भोगकर चल दिये किन्तु पापों का फल दुःख मैं स्वयमेव भोग रहा हूँ । इस दुःख से निवृत्ति का कोई उपाय मुझे नहीं दीख पड रहा है क्या करूँ । कहाँ जाऊँ ? हे महेश्वर । इस घोर संकट से आप मेरी रक्षा करें । यदि इस योनि से मैं छूट जाऊँ तो हे पापों के नाशक दीनबन्धु मुक्तिके दाता । मैं आपका अर्चन करूँगा , आपका ध्यान करूँगा ।

1. पूर्व योनि सहस्त्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया ।
   आहारा: विविधा भुक्ता: पीता नानाविधा: स्तना: ।।

2. जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुन: पुन: ।
   यन्मया परिजनस्वार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम् ।।

3. एकाकी तेन दह्येऽहं गतास्ते फलभोगिन: ।

अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ।

4. यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम् ।

अशुभक्षयकर्त्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ।।§ गर्भोपनिषद् 2.4.6§

रुद्रदेव विश्वाधिपति है । क्योंकि उन्होंने सभी देवों को उत्पन्न किया है ।[1] प्रथमतः उन्होंने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया ।

" हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे

भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । § यजु0 पुरुषसूक्त

समस्त देवों के उद्भव स्थान वही एक है ।[2]

" समग्रदेवानामसुरत्वमेकम् " § ऋ0§

ये रुद्रदेव सबके कारण तथा कारण के भी कारण है, रुद्रदेव का उत्पादक या पालक दूसरा कोई नहीं है ।[3]

" न तस्य कार्यं करणं च विद्यते " § श्वेता0§

---

1. यजु0 13.4
2. ऋ0 मंत्र सं0 3
3. श्वेता0 6.8

" न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिप: "[1] ।

श्रुति स्पष्ट रूप से घोषित करती है कि सब नियन्ताओं के महान नियन्ता सब देवताओं के परम देवत, प्रजापति ब्रह्मा आदि के स्वामी, स्वयं प्रकाश सम्पूर्ण लोकों के नियन्ता एवं पूज्य सबसे महान महेश्वर महारुद्र भगवान शङ्कर को मैं जानता हूँ[2] ।

" तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमञ्च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।। "

रुद्र धर्मोपदेश करने वाले श्रेष्ठ वक्ता और आदि चिकित्सक, समस्त रोगों के शामक तथा नीच गति प्राप्त कराने वाले राक्षसों अर्थात् अधार्मिक वासनाओं को नष्ट करने वाले हैं ।

" अध्यावोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् । अहींश्च ।
सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातु धान्योऽधराची: परासुव ।। "

1· श्वेता० 6·9

2· श्वेता० 6-7

ऋग्वेद में वर्णित रुद्र का स्वरूप तथा उसकी उपकारी औरउपशामक शक्तियाँ अंशत: तो झंझावत के उर्वरीकरण और शुद्धीकरण की क्रिया पर तथा ऐसे लोगों कोछोड़ देने के अप्रत्यक्ष व्यवहार परआधारित है जिनका ये वध कर सकते है । इस प्रकार रुद्रदेव के प्रति ऋषियों की क्रोधनिवारिणी स्तुतियों ने ही इनके लिये" कल्याणकारी " शिव" पाधि को जन्म दिया जो कि वैदिकोत्तरपुराकथा शास्त्र में रुद्र के ऐतिहासिक उत्तराधिकारी का नियमित नाम बन गया । यही तथ्य ऋग्वेद में अग्नि के साथ रुद के घनिष्ठ सम्बन्ध में हेतु का भी समाधान कर देती है ।[1]

ऋग्वेद कास्पष्ट कथन है कि " जो द्विज रुद्र स्वरूप सविताको[2] और पाप के हरने वाले अतिथि को हवन के सहित प्राणाहुति से और भोजन से तृप्त नहीं करता है वह केवल पापी है और पाप रूप भोजन को ग्रहण करने वाला है ।

" अर्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ।{ऋ0}

निष्कर्षत: वेद तथा परवर्ती भारतीय संस्कृति में रुद्र अथवा शिवको अच्युत औरज्ञान स्वरूप माना गया है । उन्हीं को " महावीर" कहते हैं । वही ज्योतियों की ज्योति है । वही परमेश्वर औरपरब्रह्म है ।

1• ऋ0 1•23•12

2• ऋ0 10•117•-6

वही ब्रह्म मैं हूँ इसमें कोई सन्देह नहीं । कारण जीव शिव है, शिव जीव है । वह जीव केवल शिव है । जिस प्रकार छिलके से युक्त "धान", कहा जाता है और छिलका उतर जाने पर "चावल" कहा जाता है ठीक उसी प्रकार कर्म में बँधा हुआ जीव है और कर्मवासना का नाश हो जाने पर वही "सदाशिव" कहलाता है । श्रुति भी इसी की पुष्टि करती है-

सूक्ष्मतिसूक्ष्मं कलिलस्यमध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ।।"

---

1. श्वेता 5.14

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x
x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

द्वितीयोऽध्याय:

रुद्र और शिव की अभिन्नता

शिव का प्रणव रूप

शिव अथवा रुद्र की सर्वोत्तमता

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x
x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

§1§ रुद्र और शिव की अभिन्नता-

वैदिक वाङ्मय के अनुसार रुद्र और शिव में कोई भिन्नता नहीं अपितु अभिन्नता ही है, क्यों कि दोनों ही जीवन काल में प्राणी के सम्पूर्ण अशुभों को दूर करते हैं औरशरीर त्याग करने पर उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। इसीलिये शिव का अपर नाम रुद्र है।

" अशुभं द्रावयन् रुद्रो यज्जहार पुनर्भवम् ।
ततः स्मृताभिधो रुद्रशब्देनात्राभिधीयते ।।"[1]

श्रुति इस सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत देती है कि रुद्र और शिव दोनों एक ही परमतत्व के दोनाम हैं।[2]

ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति " §श्वेता0§

रुद्र तथा शिव नाम दो है, लेकिन कार्य एक ही है। रुद्र तथा शिव अपनी संहारक शक्ति के कारण ही संसार में सबसे अधिक प्रसिद्ध देवता है। तन पर वस्त्र नहीं लगोटी के लिये कपड़ा नहीं। जब कोई मिलने आता है तब साँप को लपेटने लगते हैं शरीर पर विभूति, गले में अस्थि पञ्जर अथवा कंगाल, निवास के लिये श्मशान, ऐसा तो " रुद्र" रूप है। किन्तु इन्हें " शिव"

1• श्वेता0 4-14

2• ऋ0 2•33•7

इस नाम से भी पुकारते हैं । ये रुद्र इसलिये कहे जाते हैं क्योंकि ये दुष्टों को रुलाने वाले हैं।श्रुति कहती है-

" रुद् दुःखं दुःखहेतुर्वा द्रावयत्येष नः प्रभुः । रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम् ।। "

यजुर्वेद[1] भी इसी मत की पुष्टि करता है ।

वैदिक वाङ्मय में रुद्र की समस्त संहारक शक्तियों का वर्णन है । इसकी संहारक शक्ति में ही संसार का कल्याण है यदि रुद्र में संहारक शक्ति न हो तो असंख्य जीवात्माओं के अदृष्टअर्थात् धर्माधर्म के अनुरूप समय पर और तत्वों के क्रमपूर्वक सृष्टि का संहार कौन करे ? यदि सृष्टि का संहार न हो तो फिर अदृष्ट चक्र के अनुसार प्रजापति भी बैठा बैठा क्याकरें? विष्णु भी क्या करे ? अतः स्पष्ट है कि संहारक शक्ति के कारण ही शिव जी को अन्य देवों की अपेक्षा अधिक अर्चना होती है । पौराणिक गाथा भी चाहे किसी रूप में प्रथित हो इसी तत्त्व का बोध कराती है । शिव के संहार में ही संसार का कल्याण निहित है ।

वेदों[2] में शिव अथवा रुद्र के इसी स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुये

---

1. यजु० रुद्राध्याय मं० सं०-6

2.

उनकी अर्चना की गयी है ।

" या ते रुद्र शिवा तनूः "

अर्थात् हे रुद्र । तेरे जो शिव- कल्याणकारी शरीर है, रूप हैं उनसे हमारा शिवशंकर कल्याण कर ।

भारतीय संस्कृति में शिव योग विद्या के आद्यप्रवर्तक माने गये हैं । वे योग विद्या के प्रवर्तक, नृत्य विद्या के उत्पादक, व्याकरण-शास्त्र के सञ्चालक हैं । उनका बाह्य रूप भयङ्कर होते हुये भी उनकी सभी कृतियाँ शिव कारक ही हैं । इसी लिये परिणामवाद को लेकर रुद्र शिव ही है चाहे पौराणिक शिव हो चाहे वैदिकशिव हों, चाहे परमपद को प्राप्त योगाचार्य-शिव, नर्तकाचार्य- शिव अथवा व्याकरण शास्त्र के प्रवर्तक शिव हो ।

सांसारिक दृष्टि से एकादश रुद्र है- प्राण, अपान, व्यान, समान उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त धनञ्जय- ये दश और मुख्य प्राण ग्यारहवाँ जिसके कि ये उपर्युक्त दश भेद है । शरीर यन्त्र को यही चलाते रहते हैं । ये सम्यक् चले तो मानव का सभी शिव अर्थात् कल्याण है नहीं तो रुद्र रुलाने वाले बन जाते हैं जो मानव इन एकादश प्राणों को वश में रखता है, वही सुख का भागी बनता है ।

" शिव " शब्द " शीङ् " धातु से निष्पन्न होता है जिसका

1• कल्याण: शिवाङ्ग: पृ0 264

अर्थ है शयन करना । जिसमें सब श शयन करते हैं वह शिव हैं । अनन्त-कोटि जीवों से पूर्ण यह अनन्तकोटि विश्व कहा शयन करता है ? निःसीम चैतन्य सागर के वक्षस्थल पर अनन्त कोटि विश्व तरङ्ग अनवरत लहरा रहे हैं, प्रवाहित हो रहे हैं । जो कुछ देखा जाता है, सुना जाता है, स्मरण किया जाता है सब उसी शिव चैतन्य में शयन किये हुये हैं तब वह शिव कौन है ? इसका उत्तर अथर्वशिरोपनिषद्[1] में मिलता है ।

" यत्परं स एकः स एकः स रुद्रः यो रुद्रः स ईशानः ,
यः ईशानः स भगवान् महेश्वरः ।"

जो परब्रह्म है वह एक है, जो एक है वह रुद्र है, जो रुद्र है वहीं ईशान है, जो ईशान है वहीं भगवान महेश्वर हैं ।

स्कन्दपुराण[2] भी इसी तथ्य को परिपुष्टि करता है-

" एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं
सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किञ्चित् ।
एको रुद्र न द्वितीयोऽवतस्थे
तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ।। (स्क0 पु0)

1• अथर्वशिरो0 पं0 6-4

2• स्क0 पु0 2-6

शिव अथवा रुद्र ही परमात्मा हैं । वह एक अद्वितीय परम पुरुष है वही एक मात्र सत्य वस्तु है । नाना रूप में देखा जता है वह कल्पित है, वह मिथ्या है- वह है ही नहीं । आचार्य गौडपाद भी अपनी माण्डूक्यकारिका में देह के सम्बन्ध में कहते हैं-

" आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा "

अर्थात् जो वस्तु न आदि में है न अन्त मे, वह वर्तमान में भी नहीं हो सकती । गीता भी इसी मत की पुष्टि करती है-

" नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत: " ।

शिव ही सत्य है एवं यह नाम रूप विशिष्ट चैतन्य जगत् शिव चैतन्य में प्रवाहित होता हुआ वैसे ही सत्य सा प्रतीत हो रहा है, जैसे रज्जु में कल्पित सर्प । पूर्ण सत्य की अनुभूति मनुष्य को ही नहीं सकती, इसलिये मिथ्या की किञ्चित सहायता से वह सत्यवस्तु की धारणा कर सकता है । आश्वलायन ऋषि ने भी नाम रूप के किञ्चित अवलम्बन के द्वारा सरस्वती की उपासना कर ज्ञान प्राप्त किया था, अद्वय ज्ञान ही एक मात्र तत्व है । वही सत्य है और सब मिथ्या है जिस प्रकार सूर्य की किरणे जब आकाश में प्रसरित रहती है तब उन्हें कोई देखता नहीं किन्तु दीवाल पर प्रतिबिम्बित होने पर वे देखी जाती है, इसी प्रकार

सत्य वस्तु का प्रतिबिम्ब मिथ्या दृष्टि से प्रतिबिम्बित होने पर विश्व के रूप में प्राप्त होता है । सृष्टि के न रहने पर सृष्टि कर्त्ता के प्रकाश के लिये कोई स्थान भी नहीं रह जाता इसलिये मिथ्या सृष्टि की आवश्यकता पड़ती है । अतः स्पष्ट है कि अद्वैत भाव ही सिद्धि है, तथा द्वैत उपासना उसी अद्वैत स्थिति की प्राप्ति का साधन है । श्रीमद्भागवत् भी इसी मत की पुष्टि करता है-

वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानीति शब्द्यते ।।

तत्त्ववेत्ता लोग इस अद्वय ज्ञान को ही तत्वकहते है । वही ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् इत्यादि शब्दों के द्वारा लक्षित होता है ।

वेदों में एक और अनेक रुद्रो का भी वर्णन मिलता है यथा-

" रुद्र रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ।[1]

§1§ " शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः। "[2] § ऋ0§

---

1. ऋ0 10.64-8

2. ऋ0 7.35.6

§2§ रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृलयाति नः ।।"[1] §ऋ0§

§3§ रुद्रं रुद्रेभिरा वहा वृहन्तम् ।"[2] §ऋ0§

इन वचनों में कहा गया है कि एक रुद्र अनेक रुद्रों के साथ रहता है किन्तु तत्वतः रुद्र एक ही है दूसरा कोई नहीं । असंख्य सहस्त्रो रुद्र इस भूमि पर है । निरुक्तकार[3] यास्क कहते हैं -

"एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः ।

असंख्याताः सहस्त्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ।। "

एक अन्य श्रुति[4] भी यही कहती है कि रुद्र एक ही है-

"एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः ।" §श्वेता0 §

"एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु"[5] । §तै0 सं0 §

---

1. ऋ0 10.66.3

2. ऋ0 7.10.4

3 निरु0 1.15.7

4. श्वेता 3-2

5. तै0 सं0 1.8.6

एको रुद्रो न द्वितीयायतस्मै"[1]

(अथर्वशिरसो)

वैदिक ऋषियों के अनुसार यह एक रुद्र ही परमात्मा है अग्नि तथा अन्यान्य देवों का जनक है निखिल विश्व का अधिपति है । वह महाज्ञानी, हिरण्यगर्भ का जनक तथा अतीन्द्रियार्थ दर्शी है । इसीलिये ऋग्वेद[2] स्पष्ट रूप से घोषणा करता है कि-

"इस निखिल जगत के स्वामी महान रुद्र देव से अर्थात् परमात्मा से उसकी महाशक्ति कोई छीन नहीं सकता ।"[3] ऋग्वेद के मत में इसी परमात्मा को तत्ववेतागण रुद्र,इन्द्र आदि नामों से पुकारते हैं-

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋ0)

वेदों के इन मन्त्रों का मनन करने से निश्चित हो जाता है कि एक रुद्र परमात्मा ही है तथा अनेक रुद्र अनेक जीवात्मा[4] है ।

---

1. अथर्वशिरसो- 5

2. ऋ0 1.164.43

3. ऋ0 6.66.3

4. ऋ0 5.60.5

" रुद्र ये मीलहुष: सन्ति पुत्रा: "

§ ऋ0§

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी ने इस तथ्य का दिग्दर्शन एक कोष्ठक के माध्यम से किया है-

एक रुद्र:-	अनन्ता: रुद्रा:
अद्वितीय: रुद्र:	सहस्त्राणि सहस्त्रशो रुद्रा:
जनक:, पिता रुद्र:	पुत्रा: रुद्रा:
व्यापक: रुद्र:	अव्यापका: रुद्रा:
ईशः रुद्र:	अनीशा: रुद्रा:
उपास्य: रुद्र:	उपासका: रुद्रा:
एक: परमात्मा	अनन्ता: जीवात्मान:

वैदिक मान्यताओं के अनुसार -" दाता रुद्र के ये अनन्त पुत्र हैं ।" जैसे- परम आत्मा के पुत्र अणु आत्मा जीवात्मा है, वैसे ही व्यापक रुद्र के पुत्र अनन्त रुद्र किंवा अव्यापक जीवात्मा है । इन पिता पुत्रों का वर्णन ऋग्वेद में इस प्रकार मिलता है-

" अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधु: सौभगाय युवा पिता स्वपा रुद्र एषाम् ०।।" §ऋ0§

इनका पिता तरुण रुद्र है और ये अनन्त रुद्र आपस में बन्धु हैं ।

इनमें न तो कोई श्रेष्ठ है और न कनिष्ठ ही है, अर्थात् ये सभी आपस में समान अधिकार वाले हैं । सभी जीवात्मा आपस में ऐसे ही भाई है, जिनमें गुरुता, लघुता का कोई स्थान नहीं है । अतः ऋग्वेद में रुद्र का जो उग्ररूप वर्णित है वही जगत के कल्याणार्थ " शिव " में परिवर्तित है जो जो रुद्र है वही शिव हैं । रुद्र और शिव की अभिन्नता की प्रथम सूचना ऋग्वेद में ही हमें सूक्ष्म रूप से प्राप्त है ।

तत्वज्ञ वैदिक ऋषियों के मत में वस्तुतः " जीव और शिव " की कल्पना ही इन रुद्रो द्वारा वेद मंत्रों में बतायी गयी है । जिस तरह रुद्र अर्थात् परमात्मा एक है और जीवात्मा रुद्र अनेक है, उसी प्रकार "जीव" अनेक है और " शिव " एक है । अतः रुद्र और शिव एक ही परमात्माके दो नाम हैं सिद्ध हो जाता है ।

शिव का प्रणव रूप

ये रुद्र अथवा शिव प्रणवस्वरूप हैं स्वयं श्री शिव ब्रह्मा विष्णु से कहते हैं- ओंकार मेरे मुख से उत्पन्न होने के कारण ही मेरे स्वरूप का बोधक

---

1. ऋ0 2.33.147

है यह वाच्य है, मैं वाचक हूँ। यह मंत्र मेरी आत्मा है, इसका स्मरण करने से मेरा ही स्मरण होता है। इस ओंकार के निर्माण का क्रम इस प्रकार है- मेरे उत्तर की ओर के मुख से अकार पश्चिम के मुख से उकार, दक्षिण के मुख से मकार पूर्व के मुख से बिन्दु और मध्य के मुख से नाद उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार पाँच मुखों से निर्गत हुये इन सबसे "ॐ" यह एकाक्षर निर्मित होता है। सम्पूर्ण नाम रूपात्मक जगत्" स्त्री- पुरुषादि भूत समुदाय एवं चारों वेद सभी इसी मंत्र से व्याप्त हैं और यह शिव शक्ति का बोधक है।[1]

"इस प्रणव मंत्र से ही "नमः शिवाय" इस पञ्चाक्षर मंत्र की भी उत्पत्ति होती है।[2]

"अस्मात् पञ्चाक्षरं जज्ञे बोधकं सकलस्यतत्।
अकारादि क्रमेणैव नकारादि यथाक्रमम्।" ﴾विश्वेश्वर संहिता﴿

वैदिक मान्यता के अनुसार" शिव के इस प्रणव स्वरूप में एक निगूढ़

-55--

1. विश्वेश्वर सं० 8.16.20

2. विश्वेश्वर सं० 8.16.21

रहस्य छिपा है । "प्र" अर्थात् प्रकृति सेउत्पन्न हुये संसार सागर के लिये ﴾ नवम्﴿ यह प्रणव नौका रूप है, इसी कारण तत्ववेता ऋषिगण इसे प्रणव कहते हैं[1] ।

"प्रो हि प्रकृति जातस्य संसारस्य महोदधे: ।
नवं नावान्तरमितिप्रणवं वै विदुर्बुधा: ।।

इसका प्रणव नाम इसीलिये भी पड़ा क्यों कि ﴾ प्र﴿ प्रपञ्च﴾ न﴿ नहीं है ﴾व:﴿ तुममेअर्थात् जिसको जपने से संसार नहीं रहता उसका नाम "प्रणव " है ।

"प्र: प्रपञ्चो हि नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदु: ।
प्रकर्षेण नयेदस्मान्मोक्षं व: प्रणवं विदु: ।। "

अथवा जो "प्र" प्रकृष्ट रूप से "न" मोक्ष को ले जाता है﴾व:﴿ जपने वाले तुम लोगों को, इस कारण इसका नाम प्रणव है ।

माया रहित होने से इस "प्रणव" को "नूतन" कहते हैं । यह महात्माओं को अत्यन्त नवीन शुद्ध रूप प्रदान करता है नूतन करने वाला होने के कारण ही इसे "प्रणव" कहा जाता है ।

---

1. विद्ये० सं० अ० 17 श्लोक सं-4

तदेव 17. श्लोक सं० 5

"तमेव माया रहितं नूतनं परिचक्षते ।
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम् ।

स्वयं शिव ही स्वमुख से कहते हैं[1] ।

"ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु ।
प्राणः प्रणव एवायं तस्मात् प्रणव ईरित ।

अर्थात् ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियों का यह प्रणव ही प्राण है, इसीलिये इसे "प्रणव" कहते हैं ।

प्राणि मात्र श्वास- प्रश्वास में हंस मंत्र का उच्चारण करते हैं । इस मंत्र में भी सदा- प्रणव का ही जप होता है, भगवान कार्तिकेय स्वामी वामदेव से कहते हैं- कि हे वामदेव । हंस मंत्र के प्रतिलोम "सोऽहं" मंत्र से प्रणव की प्राप्ति होती है व्यन्जन§ हल्§ "सकार और "ह" कार के वर्णन से" ओंकार" इस प्रकार परमात्मा का वाचक स्थूल स्थूल अक्षर होता है[2] ।

"प्रतिलोमात्के हंसे वक्ष्यामि प्रणवो द्रवम् ।

1· कौ0 सं0 अध्याय 3 श्लोक सं0 14

2· तदैव 16·1,37-38

तव स्नेहाद् वामदेव । सावधानतया श्रृणु ।

व्यञ्जनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्णनात् ।

ओमित्येव भवेत् स्थूलो वाचक: परमात्मन: ।

वेदो में भगवान् शङ्कर का विशेषवर्णन है । यजुर्वेद के तो प्रधान देव रुद्र है ही । स्वयं वेद कहता है-

" नम: शम्भवाय च मयोभवाय च, नम: शङ्कराय च मयस्कराय च, नम: शिवाय च शिवतराय च ।- (यजु0)

अन्यत्रापि -

" नम: प्रणववाच्याय नम: प्रणवलिङ्गने ।

नम: सृष्ट्यादिकर्त्रे च नम: पञ्चमुखाय ते ।।"

वेदो के अतिरिक्त अनेक स्मृतियों तथा इतिहास-पुराणादि में शङ्कर के स्वरूप का अतिस्पष्ट वर्णनपाया जाता है और स्कन्दपुराण, लिङ्ग पुराणादि में तो परमात्मा शिव का महात्म्य तथा स्वरूप अति उत्तम रीति से वर्णित है । इनमें भगवान् शिव के अनेक रूपों तथा महात्म्य का वर्णन है । परन्तु भगवान् शिव के प्रणव- स्वरूप का वर्णन जैसा शिव पुराण में स्पष्ट तथा विस्तृत रूप से मिलता है वैसा अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता ।

1• यजु0 अध्याय- 16•41

एक समय भगवान् शङ्कर कैलाश पर्वत के सुरम्य शिखर पर भगवती पार्वती के साथ विराजमान थे और दीक्षा विधि के क्रम से प्रणवादि महा-मंत्रों की देवी से प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कररहे थे, उस समय भगवती पार्वती पति कोप्रसन्न देखकर कहने लगी - हे देव आपने मुझे प्रणव सहित मंत्र का उपदेश दिया है इस कारण मैं सर्वप्रथम प्रणव स्वरूप को जानना चाहती हूँ। हे शिव। यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो इसका अवश्य वर्णन कीजिये। इस प्रार्थना को सुनकर भगवान् शंकर पार्वती जी से कहते लगे-

"प्रणवार्थ का परिज्ञान ही मेरे स्वरूप का वास्तविक ज्ञान है। प्रणव स्वरूप मंत्र सब विद्याओं का बीज है, वह वटबीज के सदृश अति सूक्ष्म तथा महान अर्थवाला है। वह वेदों का आदि तथा सार है, एवं मेरा स्वरूप है। तीन गुण से अतीत सर्वज्ञ, सर्वस्रष्टा, सर्वगत, शिवस्वरूप मैं ही उस ओंकार में स्थित हूँ, तीन गुणों के न्यून- प्राधान्य योग से जगत में जो कुछ वस्तु है, वह समष्टि और व्यष्टि रूप से प्रणवार्थ ही है। यह प्रणव सर्वअर्थ का साधक और अक्षर ब्रह्म है। इस कारण इसी प्रणव से शिव जी सर्वप्रथम जगत का निर्माण करते हैं। जो शिव है वहीं प्रणव है, जो प्रणव है वही शिव है। क्योंकि वाच्य और वाचक में कोई भेद नहीं होता। इसीलिये ब्रह्मर्षि लोग मुझे एकाक्षर ओंकार रूप ब्रह्म कहते हैं। मोक्षाभिलाषी पुरुष को चाहिये कि वह प्रणव को ही सर्वकारण, निर्विकार निर्गुण शिवस्वरूप समझे।

---

1. महाविष्णुपुराण कै० सं० अध्याय- 3/1-9

तत्वज्ञ वैदिक ऋषियों के मत में " शिवशक्ति " का योग ही परमात्मा है और वह परमात्मा ही आकाशादि के रूप में परिणित होता है । जैसे उपादान कारण मृत्तिका अपने से अभिन्न घटरूप ग्रहण करती है, जैसे दुग्ध दही के आकार में परिवर्तित हो जाता है अथवा जैसे रज्जुरूप उपादान अज्ञान के कारण सर्पादि आकार में परिणत हो जाता है, वैसे ही ओंकार स्वरूप परब्रह्म पञ्चाकार में परिणत होता है परमात्मा की परम शक्ति से चिच्छक्ति उत्पन्न होती है औरचैतन्य शक्ति से आनन्द शक्ति, आनन्दशक्ति से इच्छाशक्ति, इच्छाशक्ति से ज्ञान शक्ति और ज्ञानशक्ति से पञ्चमी क्रियाशक्ति उत्पन्न होती है । इन सभी शक्तियों से क्रमशः जगत् की उत्पत्ति हुई है । चिदानन्द शक्ति से नाद और बिन्दु उत्पन्न हुये हैं, इसी प्रकार इच्छाशक्ति से मकार ज्ञानशक्ति से उकार और क्रियाशक्ति से अकार स्वर- उत्पन्न हुआ है । इस प्रकार प्रणव की सृष्टि हुई और इस प्रणव से पञ्च ब्रह्म की, तत्पश्चात् कलादि क्रम से आकारादि की उत्पत्ति हुई है[1] ।

1• के० सं० अ० 16/53-57

प्रणव का विषय है जीव और ब्रह्म की एकता । अर्थात् मैं ही {शिव} हूँ । स्वयं श्री हर ही पार्वती जी से कहते हैं-[1]

" विषय: स्याग्यहं देवि- जीवब्रह्मैक्य भावनात् ।

स्वामी कार्तिकेय वामदेव से कहते हैं कि " मैं दक्षिण भुजा उठाकर शपथपूर्वक कहता हूँ कि यह सत्य है, सत्य है, सत्य है, प्रणव प्रधानतया साक्षात् शिव का ही वाचक है ।

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार इस "प्रणव " का अधिकारी वही होता है जिसमें दृढ़ वैराग्य हो अर्थात्[2] शम- दमादि में धर्म में निरत , वेदान्तज्ञान के पारगामी, मात्सर्य रहित, यत्नशील उपासक ही उसके जप के अधिकारी हैं ।

" अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्यं जायते दृढ़म् । "

" शमादि धर्मनिरतो- वेदान्त ज्ञानपारग:
अत्राधिकारी स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सर: ।। "

{ कै0 सं0 अ0 3·66

आधार, मणिपुर हृदय, विशुद्ध-चक्र, आज्ञाचक्र, शक्ति और

1· कै0 सं0 अ9 3 श्लोक 36

2· तदैव 3· श्लोक 35

शान्ति ये कलाक्रम से प्रणव के स्थान हैं ।

" आधारो मणिपूरश्च हृदयं तु ततः परम् ।

विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात् ।। "

प्रणव की उपासना विधि का वर्णन करते हुये (के0सं0 अ0-3) में कहा गया है कि " उपासक स्वच्छ, शोक रहित, उज्जवल, अष्टदल कमल के समान मकरन्दयुक्त, कर्णिका से शोभायमान हृदय कमल के मध्य में आधार शक्ति से आरम्भ करके त्रितत्वमय उत्तम पद का धयान करके दहर-व्योम की भावना करे " ओं " इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण कर शक्ति सहित "शिव" का दहराकाश के मध्य में सदा उत्कण्ठा से चिन्तन करें ।

इस प्रणव जप की महिमा का वर्णन करते हुये योग दर्शन के आचार्य पतञ्जलि कहते हैं कि " प्रणव के जप से आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है तथा सम्पूर्ण अशुभों का शमन हो जाता है ।

" ततःप्रत्यक चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च "

भगवान् शङ्कर ब्रह्मा विष्णु से कहते हैं-

" तत्तन्मन्त्रेण तत् सिद्धिः सर्वसिद्धिरितो भवेत् । "

(वि0 सं0 अ0-10 श्लो=23)

---

1. के0 सं0 अ0 3 श्लोक 34-35

यह प्रणव मन्त्र सकल मंत्रों का मूल है-
क्योंकि उस- उस मंत्र से वह- वह सिद्धि होती है, किन्तु प्रणव मंत्र से सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है ।

"अनेन मन्त्रकन्देन भोगो मोक्षश्च सिद्धयति ।
सकला मन्त्रराजान: साक्षात् भोगप्रदा: शुभा: ।।"

निष्कर्षत: प्रणव स्वरूप शिव का सदा जप करने वाला तथा ध्यान करने वाला महायोगी समाधिमें स्थित होकर शिव रूप ही हो जाता है ।

सदा जपन् सदाध्यायञ्छिवं प्रणवरूपिणम् ।
समाधिस्थो महायोगी शिवएव न संशय: ।।"
§ वि० सं० अ० 17 श्लोक सं० 25§

शिव का यह प्रणव मंत्र तारक मंत्र है, क्योंकि इस मंत्र द्वारा प्राणिमात्र भव समुद्र से तर जाते हैं । स्वयं श्री शिव ही कहते हैं कि- हे देवि सर्वमन्त्रों के शिरोमणि इस ओंकार को ही मैं काशी में प्राण त्याग करने वाले जीवों को मुक्ति हेतु प्रदान करता हूँ ।

"इममेवहि देवेशि- सर्वमन्त्र शिरोमणिम् ।
काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्ति हेतवे ।।

1· के० सं० अ० 3· श्लोक- सं० 10

§3§ शिव अथवा रुद्र की सर्वोत्तमता-

ये शिव परमकारुणिक है वृत्रासुर जब शिव की सकाम आराधना में अपना शरीर काट- काट कर हवन करने लगा तब महाकारुणिक शङ्कर जी ने अग्नि कुण्ड सेप्रकट हो उसे अपना अलभ्य दर्शन देकर दोनों भुजाओं से निवारण करते हुये कहा कि- तुमने वृथा ही अपने शरीर को क्यों कष्ट दिया ? मैं तो जल मात्रचढाने से ही प्रसन्न हो जाता हूँ।

तमाह चाङ्गालमलं वृणीष्व मे ।
यथाभिकामं वितरामि ते परम् ।
प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यता-
महो त्वयात्मा भृशमर्दित वृथा ।। §श्रीमद्भा0§

पौराणिक आख्यानों के अनुसार एक समय देवों और असुरगणों से संयुक्त मंथन से क्षीर सागर से सर्वप्रथम महोल्बण हलाहल नामक विष निकला। अति उग्र वेग से दसो दिशाओं में नीचे से उफन कर ऊपर आने वाले, प्रतीकार रहित, विष को देखकर अन्य और कहीं रक्षा का आश्रय

1· श्रीमद्भा0 10·88·20

न पाकर , देवगण अत्यन्त भीत हो रुद्र की ही शरण में आये और प्रार्थना किया -

देवदेव महादेव भूतात्मन भूतभावन: ।

त्राहि नः शरणापन्नस्त्रैलोक्यं दहना द्विषात् ।

त्वमेक: सर्वजगत- ईश्वरो बन्धनमोक्षयो: ।

तं त्वामर्चन्ति कुशला: प्रपन्नार्तिहरं गुरुम ।। ॥ श्रीमद्भा0॥

देवों के इस आर्तवचन को सुनकर श्री शिव जी ने करुणा हेतु उस हलाहल को हथेली पर रखकर पान कर गये । पान करते समय भी करुणामय भगवान ने दया को नहीं भुलाया। विषपान के द्वारा उन्होने देवगणों पर दया की और हृदय स्थित ईश्वर को कहीं वह विष स्पर्श न कर जाय, एतदर्थ उन्होने विष को कण्ठ में ही रोक रखकर मानो ईश्वर पर भी दया की वह हलाहल विषकण्ठ में नीलकण्ठधारण कर श्री शिव जी का भूषण स्वरूप हो गया । संभवत: इसी कारण श्री शिव को नीलकंठ भी कहते हैं । इसी लिये श्रीमद्भागवत्कार कहते हैं=

"तप्यन्ते लोक तापेन साधव: प्रायशो जना: ।

परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मन: ।।

॥ श्रीमद्भाग0॥

1• श्रीमद्भा9 8•7•74

भारतीय संस्कृति में जगन्नियन्ता भगवान् शिव के दो स्वरूपों का वर्णन मिलता है- एक व्यक्त दूसरा अव्यक्त । इसे ही दूसरे शब्दों में मूर्त और अमूर्त भी कहा जाता है । यथा-

"द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चामूर्तञ्च"योगियों के परमाराध्य श्री शिव का व्यक्त साकार रूप शूलपाणि, व्याघ्र चर्मधारी , चन्द्रमौलि गंगाधर तथा पञ्चाननादि विशेषणों से युक्त हैं । यथा-

"शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं ।
शूलं वज्रं च खड्•ग परशुमभयदं दक्षिणाङ्•गे वहन्तम् ।।
नागं पाशञ्च घण्टां डमरूकसंहिता साङ्•कुशां वामभागे ।
नानालङ्कारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ।।

वही उनका अव्यक्त निराकार रूप सजातीय- विजातीय स्वगत भेद शून्य देश- काल- वस्तु- परिच्छेद रहित और अस्ति भाति प्रियरूप है । वे मङ्•गल मूर्ति शिव ही अपने "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय" इस संकल्परूप शाम्भवी माया के द्वारा नानाप्रकार के अण्ड- ब्रह्माण्ड रूप संसार के आकार में परिणत हो रहे हैं । स्वयं श्रुति कहती है" तद् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" या "इन्द्रोमायाभि: पुरूरूपमीयते" आदि । उसी भगवान् शिव का जीव रूप से प्रवेश भी स्मृति सिद्ध है । अत: स्पष्ट है कि केवल शिवाद्वैत तत्व का

1• वै० आ० 2/6

ही अस्तित्व त्रिकाल में सिद्ध होता है । सम्भवत: इसी कारण अद्वैत तत्त्ववेत्ता महात्माओं ने इस समग्र दृश्य तथा अदृश्य प्रपञ्च को शिवस्य ब्रह्म का विवर्त और माया का परिणाम माना है । जिस प्रकार अग्निसे उसकी दाह शक्तिअलग नहीं हो सकती उसी प्रकारसंकल्प शक्ति, संकल्प करने वाले से अलग नहीं हो सकती । "मैं एक से अनेक हो जाऊँ" इस प्रकार की संकल्परूप शाम्भवी माया शम्भु से पृथक् नहीं रह सकती । अत: स्पष्ट है कि इस प्रकार दो ही पदार्थ सृष्टि निर्माण के कारण सिद्ध होते हैं-
एक शिव रूप नारायण और दूसरी शाम्भवी मायारूप वैष्णवी प्रकृति, जिसको शक्ति महत् तत्त्व ,अव्यक्त, अविद्या अजा, अज्ञान, समष्टि, संकल्प आदि अनेक नामों से शास्त्रों में कहा गया है ।

जिस प्रकार एक ही निराकार अव्यक्त रूप परब्रह्म प्रणव अकार उकार और मकार रूप होकर व्यक्त साकारभाव को प्राप्त होता है उसी प्रकार उस एक के ही ब्रह्मा विष्णु और महेश॥ शिव॥ ये तीन रूप हो जाते हैं । श्रुति कहती है-

"एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधाऽस्मै "। वस्तुत: वही निराकार और साकार है तथा अपने उपासकों के कल्याणार्थ भाँति- भाँति के अवतारों को धारण करता है । शुक्ल यजुर्वेद संहिता में इस तथ्य का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है ।

"प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।"

वह परमात्मा चिन्मात्र, दिव्य अभौतिक तेजरूप आवेश के द्वारा गर्भ में प्रवेश करता है और समयानुसार विविध रूप धारण कर स्वेच्छा से प्रकट होता है । उसके अवतार लेने के कारण को धीर पुरूष ही जान पाते हैं।

यद्यपि प्रणव रूप ईश्वर के संसार कोनष्ट करने वाले स्वरूप कानाम "शिव" माना गया है और "शिव" के नामान्तर "रुद्र" शब्द का अर्थ भी यही है कि जो वियोग जन्य पीड़ा से रूदन करा दे । तथापि दण्ड देने की शक्ति उत्पादन तथा पालन- दोनों शक्तियों से बलिष्ठ होती है यदि जगत में राजा अपराधी को उचित दण्ड न दे तो जनसमाज को दु:ख का सामना करना पड़ता है । यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि राजदण्ड भूल या प्रमादवश निरपराधी को भी मिल सकता है किन्तु शिव का दण्ड तो माताके दण्ड के समान प्रेम से परिपूर्ण होता है और मात्र अपराधी के मंगलार्थ ही होता है श्रुति कहती है-

"भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः । भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ।।"

---

1. कठ0 2·6·3

शिव की सर्वोत्तमता का इससे बढकर औरप्रमाण क्या हो सकता है कि उनसे भयभीत होकर सूर्यादि सदृश संसार के अधिष्ठातृ देवों को भी स्व स्व नियत कार्यों से प्रवृत्त होना पडता है । इन्हीं शिव के भय से माया संसार की रचना करती है । अतः यदि शिव ही अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा संसार का संहार करते हैं तो इसके सर्जक और पालक भी तो वही है ।

श्री शिवगीता में श्री राम स्वयं उनकी स्तुति करते हुये कहते हैं कि- हे शम्भो। जिस प्रकार वृक्ष, लता, गुल्मतथा वनस्पति आदि उद्भिज पदार्थ ॥ पृथिवी से उत्पन्न होते हैं, उसी में स्थित रहते हैं और अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण भुवन भी आपसे ही उत्पन्न होता है, स्थित रहता है और आप में ही विलीन हो जाताहै ।

"त्वत्तो हि जातं जगदेतदीश ।
त्वय्येव भूतानि वसन्ति नित्यम् ।
त्वय्येव शम्भो विलयं प्रयान्ति
भूमौ यथा वृक्षलतादयोऽपि ।।"

(शिवगीता)

"शिव स्वरोदय" में स्वयं ही शिव ही पार्वती जी से कहते हैं कि "माया रहित, आकारहीन,एक, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर से आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से वायु की उत्पत्ति हुई ।

" निरन्जनो निराकार एको देवो महेश्वर: ।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्वायु सम्भव : ।। "

वेदसार " शिवस्तव " से आचार्य शङ्कराचार्य जी भी इसी मत की पुष्टि करते हैं[1]-

" त्वत्तो जगद्भवति देव । भव । स्मरारे ।
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड । विश्वनाथ ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश ।
लिङ्गात्मकं हर । चराचरविश्वरूपिन् ।। "

अत: स्पष्ट है कि यद्यपि प्रणव रूप भगवान् शिव संसार के संहर्त्ता है तथापि इसके उत्पादक और भर्ता भी वही हैं । भगवान् शिव ही संसार की उत्पत्ति केसमय " ब्रह्मा " पोषण के समय " विष्णु " नाम धारण करते हैं और तदनुरूप भिन्न- भिन्न आकार के भी हो जाते हैं फिर भी उनके वास्तविक स्वरूप में कोई भेद नहीं आता ।

भारतीय संस्कृति में यद्यपिअनेक मत है यथावैष्णव, शैव , गाणपत्य,

---

1. वेदसार शिवस्तव श्लोक सं0 ।।

शाक्त आदि और सभी अपने- अपने इष्ट को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं किन्तु इससे उस परमेश्वर का महत्त्व बढ़ता ही है, घटता नहीं । श्रुति स्वयं कहती है-

" ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोद्‌र्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।।

{मु0उ0}[1]

पञ्चदशीकार स्वामी विद्यारण्य मुनि[2] भी इसी मत की पुष्टि करते हैं-

" अन्तर्यामिणमारभ्य स्थावरान्तेशवादिन: ।
सन्त्यश्वत्थार्कवंशादे: कुलदेवतदर्शनात् ।।
तत्वनिश्चयकामेन न्यायागमविचारिणाम् ।
एकैव प्रतिपत्ति: स्यात्साप्यत्र स्फुटमुच्यते ।। "

अर्थात् " अन्तर्यामी ईश्वर से लेकर स्थावर पर्यन्त को ईश्वर मानने वाले संसार में पाये जाते हैं, क्यों कि पीपल, आक और बांसआदि भी लोगों के कुल देवता देखने में आते हैं । अत: तत्त्व निश्चय की इच्छा से न्यायागम का विचार करने वाले पुरुषों के लिये एक ही शास्त्र सिद्ध मार्ग है । वहयह है कि माया अर्थात् प्रकृति को जगत् का उपादान कारण और

1• मु0 उ0 2•2•11

2• पञ्चदशी 6•204•205

मायाधिष्ठाता मायोपाधिक अन्तर्यामी शिव को निमित्त- कारण समझना चाहिये । क्योंकि यह निखिल जगत् मायावी महेश्वर के अंशरूप ईश्वरात्मक जीवों से व्याप्त है ।

आचार्य शङ्कर अपने " सर्ववेदान्तसार संग्रह " नामक ग्रन्थ में कहते हैं कि जिस शिव के प्रकाश से यह जगत् प्रकाशित हो रहा है, उस सूर्य के सदृश स्वयं ज्योति आत्मा का प्रकाशक क्या कोई हो सकता है ? क्यो कि प्रज्ञादि तो स्वयं जड़ होने के कारण उसी से प्रकाशित होते है । जैसे इस भूतल पर सूर्य का प्रकाश कोई दूसरा नहीं दिखाई देता वैसे ही सूर्य को भी प्रकाशित करने वाले उस आत्मदेव (शिव) का भी कोई प्रकाशक नहीं है और न उसके अतिरिक्त कोई अनुभव करने वाला है । अव्यक्त शिव की महिमा का निरूपण वेदादि धर्मशास्त्रों में इसी प्रकार का मिलता है । इस अव्यक्त शिव की अवधारणा का मार्ग विरक्त यतियों अर्थात् अहंग्रह-- उपासकों के लिये है जन साधारण के लिये नहीं, क्योंकि यह मार्ग अत्यन्त दुष्कर है ।

गीता में भगवान् स्वयं श्री मुख से कहते हैं -

" अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते " (गीता)

वेदोक्त शिव या रुद्र की महिमा का पौराणिक साहित्य में

विशद् रूप से विवेचन मिलता है शिव पुराण[1] में ब्रह्मा स्वयं महर्षि गौतम से कहते हैं- शिवनामरूपमणि जिसके कण्ठ में विराजमान रहती है वह नलकण्ठ का ही स्वरूप बन जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

महान् से महान् पापी भी अन्तकाल में यदि शिव नाम का उच्चारण कर ले तो वह साक्षात् शिव लोक में जाता है । शिव शब्द का उच्चारण किये बिना ब्राह्मण भी मुक्त नहीं हो सकता और इसका उच्चारण कर एक चाण्डाल भी मुक्ति का भागी बन जाता है । यों तो शिव के सभी नाम मोक्षदायक है, किन्तु उन सब में शिव नाम सर्व श्रेष्ठ है, उसका महात्म्य गायत्री के समान है[2] ।

सौरपुराण[3] के अनुसार जो बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर तीन रात उपोषित रहकर पवित्रतापूर्वक शिवनाम का एक लाख जप करता है वह भ्रूणहत्या के पाप से छूट जाता है ।

शिव की महानता का वर्णन करते हुये सौर पुराण कहता[4] है कि

1· शिव पु० 7/22
2· शिव पुर० 7·23
3· सौर पु० अध्याय- 64
4· सौरपु० अध्याय- 3

जिसने अज्ञान पूर्वक भी महेश्वर नामों का उच्चारण कर लिया, वह मुक्ति को प्राप्त होता है ।

शिव पुराण के मत में जिसने[1] " शिव " अथवा " हर " अथवा "रुद्र" इन द्व्यक्षर नामों में से किसी का एक बार भी उच्चारण कर लिया वह मृत्यु के पश्चात् निश्चित ही रुद्र लोक में जाता है ।

शिवनाम स्मरण से कर्मों की न्यूनता पूर्ण हो जाती है-

यत्पादपद्मस्मरणाद्यच्छीनामजपादपि

न्यूनं कर्म भवेत्पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम् ।। "

§ शिव पु० कै० अ० 9-56§

कलियुग में शिव नाम सभी नामों से बढ़कर है-

" ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः ।

द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः । "

§ कूर्म पुराण अ० 18§

वृक्ष के मूल सेवन से उसकी शाखा आदि की पुष्टि होती है, इसी

---

1. शिव पु० ध० सं० आ- 16

प्रकार शिव पूजा से संसाररूप शरीर की पुष्टि होती है[1]।

" वृक्षमूलस्य सेकेन शाखा पुष्यन्ति वै यथा ।
शिवस्यपूजया तद्वत् पुष्यत्यस्य वपुर्जगत् ।। "

मर्त्यलोक में मानवों का सा तारतम्य स्वर्गलोक के देवताओं का भी है । ऐसा प्रतीत होता है कि पार्थिव ऐश्वर्य की सीमा की जैसे सार्वभौमपद में समाप्ति हो जाती है वैसे ही देवत्व की सीमा देवताओं के सार्वभौम, देवाधिदेव महादेव में पर्यवासित होती है, क्योंकि मुक्ति रूप सर्वोत्कृष्ट पुरूषार्थ को देने वाला ही देवताओं में सार्वभौम हो सकता है । धर्मशास्त्र इसकी स्पष्ट रूप से पुष्टि करते हैं यथा-

1· " शिव: सर्वोत्तमो यत्र सिद्धान्तो वीर शैवक:[2] " ।।

" पारमेश्वरागम 4-6 ॥

॥2॥ सर्वास्मादधिकं ब्रूयाद् भगवन्तमुपापतिम्[3] ।" ॥ आदित्यपुराण॥

ब्रह्मगीता में स्वयं ब्रह्मा जी भी शिव की सर्वोत्तमता का वर्णन करते हुये कहते हैं-

---

1· शिव0 पु0 अ0 - 13

2· पारमेश्वरागम- 4-6

3· आदित्यपु0 5-7

" प्रसादादेव रुद्रस्य शिवायाश्च तथैव च ।
परमाद्वैतविज्ञानं विष्णोः साक्षान्ममापि च ।।
अदाने च तथा दानेन स्वतन्त्रो महाहरिः ।
तथैवाहं सुरश्रेष्ठ सत्यमेव मयोदितम् ।।
स्वतन्त्रः शिव एवायं स हि संसारमोचकः ।
विष्णुभक्त्या च मद्भक्त्या नास्ति नास्ति परागतिः ।
शम्भुभक्त्यैव सर्वेषां सत्यमेव मयोदितम् ।। "

भक्त सत्यसन्ध के प्रति विष्णु का उपदेश भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है-

" नाहं संसार मग्नानां साक्षात्संसारमोचकः ।
ब्रह्मादि देवताः सर्वे न हि संसारमोचकाः ।।
सर्वमुक्तं समासेन मम भक्तस्य तेऽनघ ।
सर्वमन्यं परित्यज्य शिवं साम्बं सदा भज ।।

श्रीमद्भागवत के अनुसार जहाँ श्री शिव का तिरस्कार होता है वहाँ श्रीमन्नारायण भी नहीं जाते । जब दक्ष प्रजापति द्वारा शिव द्वेष के कारण यज्ञ में शिव के लिये हविर्भाग नहीं दिया गया तब उस समय अन्य देवता तो आये लेकिन ब्रह्मा जी और भगवान् विष्णु वहाँ नहीं आये-

" - - - - - - - - - - - - - - - भगवानब्जसम्भव: ।
नारायणश्च विश्वामात्मा न कस्याध्वरमीयतु: ।।"[1]

§ 4·6·3§

दक्ष यज्ञ के नाश हो जाने तथा रुद्र के प्रसन्न होने पर जब दक्ष का पुन: संधान हुआ तभी वहाँ भगवान नारायण आये । वहाँ उन्होंने अति स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मैं, ब्रह्मा और शिव इस जगत के कारण है, उपद्रष्टा हैं, स्वयं प्रकाश है औरभेद रहित हैं ।[2]

" अहं ब्रह्मा च सर्वश्च जगत: कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषण: ।। "

§ श्रीमद्भा० §

त्रिगुणात्मक माया को लेकर मैं जब- जब इस निखिल सृष्टि का सर्जन पालन और संहार करता हूँ तब- तब मैं उसी काम के अनुरूप नाम को धारणकरता हूँ ।[3]

" आत्मनि समावेश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।

1· श्रीमद्भा० 4·6·3

2· तदैव 4·7·50

3· तदैव 4·7·51

"सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञा क्रियोचिताम् ।

ऐसे केवल अद्वितीय परमात्मा में अज्ञानी ही ब्रह्मा, रुद्रादि को भेद दृष्टि से देखते हैं ।

" तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।
ब्रह्मारुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ।। "

अत: स्पष्ट है कि " शिव " की व्यापकता और सर्वोत्तमता अद्वितीय है । ये शिवपरम दरिद्र होकर भी सभी सम्पत्तियों के उद्‌गम स्थान हैं सभी सम्पत्तियाँ वहीं से प्रकट होती है, वे श्मशानवासी होकर भी, तीनों लोकों के नाथ हैं, भयानक रूप में रहने पर भी उनका नाम " शिव है । वास्तविकता तो यह है कि शिवतत्व का यथार्थज्ञान हो ही नहीं सकता यह भगवान शिव की परमशक्ति पार्वती जी का मत है ।

युधिष्ठिर ने भीष्म से जब शिव महिमा के संबंध में प्रश्न किया तो वृद्ध पितामह ने भी उन्हें यही उत्तर दिया था कि- जो सभी में व्याप्त रहते हुये किसी को दृष्टिगोचर नहीं होता , उन महादेव के गुण का वर्णन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ ।[2]

1• श्रीमद्भा० 4•7•52

2• महा० अनु० 14•3

केवल मैं ही नहीं अपितु मानव देहधारी कोई भी प्राणी उन महादेव की महिमा नहीं कह सकता[1]।

1. " अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमत: ।
   यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ।। "

2. "को हि शक्तो गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमत: ।
   गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वित: ।। "

भारतीय आस्तिक परम्परा के मत में सृष्टि में जो परम परात्पर हैं वही शिव है । माण्डुक्योपनिषदकार[2] के अनुसार जिनकी प्रज्ञा बहिर्मुख नहीं है, अन्तर्मुख नहीं है और उभयमुख भी नहीं है, जो प्रज्ञानघन नहीं हैं, प्रज्ञ नहीं है और अप्रज्ञ भी नहीं है, जो वर्णन से अतीत है, दर्शन से अतीत, व्यवहार से अतीत, ग्रहण से अतीत, लक्षण से अतीत, चिन्ता से अतीत, निर्देश से अतीत, आत्म प्रत्यय मात्र सिद्ध, प्रपन्चातीत, शान्त, शिव अद्वैत और तुरीय पद स्थित है वे ही निरूपाधिक जानने योग्य हैं । इनका एक ही नाम " महेश्वर " " स्वयम्भु " और " ईशान " है ।

" नान्त: प्रज्ञ : बहिर्प्रज्ञ: नोभयत: प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपन्चो-

---

1. महा०अनु० 15•5
2. माण्डूक्यो० 3•8

पशम शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विज्ञेयः।"

श्रुति भी इसकी पुष्टि करती हुई कहती है कि वे ईश्वरों के भी परम ईश्वर है, देवताओं केपरम देवता, पतियों के परम पति, परात्पर, परमपूज्य औरभुवनेश है। जिनमें यह विश्व है, जिनसे यह विश्व है, जिनके द्वारा यह विश्व है, जो स्वयं यह विश्व है, जो इस विश्व के पर से भी परे हैं, उन स्वयम्भु भगवान की मैं शरण लेता हूँ। उस सर्वोत्तम देव को जानने से ही जीव आत्यान्तिकी शान्ति का अधिकारी हो जाता है।

"तमीश्वराणां परमं महेश्वरं,
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम् देवं भुवनेशमीऽयम्।।"

"यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम्।।"
तमीशानं वरदं देवमीऽयं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति।

पौराणिक वाङ्मय के मत में भगवान शिव विद्या के प्रधान देवता हैं। इसी कारण उन्हें "विद्यातीर्थः" इस नाम से भी पुकारा गया है

और उसे सर्वज्ञ माना गया है। सर्वज्ञता की महेश्वर के छ: प्रधान गुणों में गणना की गई है। यथा-

" सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोध:

स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्ति: ।

अचिन्त्यशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञा: ।

षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ।। "[1] शारदा तिलक

ये शिव ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया इन तीन शक्तियों के समन्वित रूप होने के कारण समस्त ज्ञान के स्रोत हैं। तन्त्र साहित्य में "शिव" की इस महनीयता का स्पष्ट सङ्केत मिलता है यथा-

" ते ज्ञानेच्छा क्रियात्मानो वह्नीन्द्वर्कस्वरूपिण: ।

(शारदा तिलक)

तत्त्व प्रकाश भी इसी मत की पुष्टि करता है।

ज्ञानक्रिया स्वभावं शिवतत्त्वं जगदुराचार्या: ।

(तत्त्वप्रकाश- 6)

जीवन के महाव्रत की सिद्धि भी उन्हीं देवाधिदेव महादेव के कृपा-कटाक्ष से हुई है। यही नहीं पाणिनीय व्याकरण की उत्पत्ति भी इन्हीं

---

1. कल्याणतन्त्र अंक 1955 पृ0 सं0 205

2. श्वेता0 6.18

विधानिधान भगवान महेशानसे मानी जाती है । जिन्होंनेप्रथम सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को अविर्भूत किया और तदनन्तर सर्ग के आदि में उन्हें वेद- विद्या का उपदेश दिया-

" यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्म बुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ।। (श्वेता0)

शिव का एक वृहत् परम कल्याणकारी कार्य जो उनकी सर्वोत्तमता का परिचायक है वह है - उनका विश्वगुरू के रूप में नाना प्रकार की विद्या योग, ज्ञान, भक्ति आदि का प्रचार करना जो बिना उनकी कृपा के यथार्थ रूप में प्राप्त नहीं नहीं हो सकता है । ये शिव न केवल विश्वगुरू है अपितु अपने कार्य कलाप आहार विहार औरसंयम- नियम आदि द्वारा जीवन्मुक्त के आदर्श हैं ।

लिङ्ग पुराण के अध्याय 6 और शिवपुराण की वायवीय संहिता पूर्व-भाग के अध्याय 22 में शिव के योगाचार्य होने का औरउनके शिष्य-प्रशिष्यों का विशद वर्णन है ।

" युगावर्तेषु शिष्येषु योगाचार्यस्वरूपिणा ।
तत्रतत्रावतीर्णेन शिवेनैव प्रवर्त्तितं ।।"[1]

---

1. शिवपुराण अ0 - 22 श्लोक सं0 28

इस पुराण के अनुसार जो इनको अपना सद्गुरु मान कर शिव की उपासना ध्यान करता है, वह अनायास शिव की साक्षात् प्राप्ति करता है ।

" स्वदेशिकानिमान् मत्वा नित्य य: शिवमर्चयेत् ।
स याति शिवसायुज्यं नात्र कार्या विचारिणा ।।"

शिव का एक अपर नाम पशुपति भी है । तत्वज्ञ वैदिक ऋषियों के अनुसार यह जीव ही प्रभु है क्योंकि यह जीव शरीर को देखता है, शरीर जीव को नहीं देखता। दोनों को कोई उनसे भी परे देखता है परन्तु ये दोनों उसे नहीं देखते । ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक सभी पशु कहे जाते हैं । यह माया पाशों में बंधा रहता है और सुख दुख रूपी चारा खाता है । यह पशु शिव की लीलाओं का साधन है । अज्ञान से बद्ध होने के कारण वह ईश नहीं है, सुखात्मक और दु:खात्मक है तथा ईश की प्रेरणा से स्वर्ग , नरक को जाता है । इसी लिये जीव ही " पशु " है और उसका " पति " ही शिव है इसलिये " पशुपति " शिव अथवा महेश्वर का ही नाम है ।

अत: जीव तथा ब्रह्मादि देवों का भी नियामक होने के कारण "शिव" महादेव कहे जाते हैं ।

1• शिव पुराण अ.5 श्लोक सं0 60,61, 62,63

"स पश्यति शरीरं तच्छरीरं तन्न पश्यति ।
तौ पश्यति परः शिवस्तावुभौ तं न पश्यतः ।। 60 ।।
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः ।
पशूनामेव सर्वेषांप्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ।। 61
स एष बाध्यते पाशैः सुखदुःखाशनः प्रभुः ।
लीला साधनभूतो य ईश्वरस्येति सूरयः ।। 62 ।।
"अज्ञो जन्तुनीशोऽयमात्मनस्सुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ।। 63 ।। "

प्रलय काल में उस परात्पर शिव के अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व ही नहीं रहता । ब्रह्माण्ड श्मशान हो जाता है, उसकी भस्म और रुण्ड- मुण्ड में वही व्याप्क होता है अतएव वह शिव " चित्ताभस्मालेपी " और " रुण्ड- मुण्डधारी " कहलाता है न कि अघोरियों के समान चिता निवासी हैं ।

" कल्पान्तकाले प्रलुठत्कपाले ।
समग्रलोके विपुलश्मशाने ।
त्वमेकदेवोऽसि तदावशिष्ट-
श्चिताश्रयो भूतिधरः कपाली ।। " (शै० सि० सा०)

कर्म- फल देने के लिये ही सृष्टि होती है । उसमें जीव नाना प्रकार

के दु:ख भोगते हैं । उससे सबका छुटकारा केवल प्रलय काल में होता है । वह माता- पिता के समान सभी को सुला देता है । कोई- कोई तो उसे इस भाव से भी "शिव" कहते हैं कि उस समय किसी को रन्च मात्र भी कष्ट नहीं होता । वह सभी के दु:खों का हर्त्ता है । अतएव वह "हर" है जिनको उस शिव की इस करुणा का ज्ञान नहीं है वे उसके इस दु:ख मोचनकार्य को तमोगुण कहते हैं यह मूर्खता ही है ।

"विदन्ति मूढा न स्वरूपमव्ययम्"

वह कर्पूर गौर है, सभी सत्त्वगुण उसी से प्रकट होते हैं, सत्त्व गुण स्वच्छ प्रकाशमय है । उसमें जो दोष राहित्य है, वही गौर वर्णता है ।

वह शिव पापियों को त्रिविध दु:ख आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शूल पीडा देता है इसी से वह त्रिशूल धारी हैं । लौह त्रिशूल से तो उनका प्रयोजन ही नहीं है ।

सैव सिद्धान्त सार में इसी मत की पुष्टि की गई है ।

"शूलत्रयं संवितरन् दुरात्मने ।
त्रिशूलधारिन् नियमेन शोभसे ।।"

यह शिव मृत्यु तथा अमृतत्त्व का मूर्तिमान स्वरूप है । उनके एक हाथ में अक्षमाला दूसरे में मृगमुद्रा है, दो हाथों से दो कलशों में अमृतरस लेकर वे उसे अपने मस्तक पर प्लावित कर रहे हैं औरदो हाथों से उन्हीं

कलशों को थामे हुये हैं । शेष दो हाथ उन्होंने अपने अङ्क पर रख छोड़े हैं औरउनमें दो अमृतपूर्ण घट हैं । वे श्वेत कमल पर विराजमान है, मुकुट पर बालचन्द्र शोभित है, ललाट पर त्रिनेत्र शोभायमान है । इस सर्वोत्तम शिव की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।

" हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम् ।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे ।

श्रीमद्भागवत् पुराण के चतुर्थ स्कन्ध में भगवती श्री दाक्षायणी कहती है कि" जिसने दो अक्षर वाले " शिव " इस नाम का उच्चारण कर लिया वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । परमानन्द रूपी रस के आस्वादनार्थ महात्माओं के मनरूपी भ्रमर जिनके चरण कमलों कीसेवामें निरन्तर लगे रहते हैं और जो अपनी आश्रितों की सम्पूर्ण कामनाओं का सेवन करते हैं । ऐसे श्री शिव की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।

ये भगवान् शिव जगद्गुरू तथा मङ्गलशिरोमणि है । उनके चरणों की ब्रह्मा भृगु नारदादिमहर्षिगण सनकादिकुमार मण्डली, महर्षि कपिल, मनुजी आदि भी ध्यान करते हैं[1] ।

" एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं

---

1. श्रीमद् भागवत् 6•17•13

जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम् ।।" ॥ श्रीमद० ॥

" नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे ।

शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ।।" ॥ श्रीमद० ॥

शिव की महिमा के सम्बन्ध में श्रुतियाँ कहती है कि वेद भी जिसके तत्व का निरूपण करने में चकित हैं । उनके बारे में जितना भी कहा जाय कम है । श्रुतियाँ भी इसमें प्रमाण हैं-

1. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।" ॥ तै० आ० ॥
2. सर्वव्यापी स भगवान् शिवः ।" ॥श्वेता०॥
3. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"
   आनन्दं ब्रह्म ॥ तै० आ० ॥
4. ईशावास्यमिदं सर्वम्" ॥ ईश०॥
5. शान्तं शिवमद्वैतम्" ॥ तै० आ०॥

जिससे इस विश्व की उत्पत्ति पालन और संहार होता है,जो इस समस्त विश्व रूप में व्याप्त है , वही शिव कहा जाता है । वही सत्य है, ज्ञान स्वरूप है, वही अनन्त है, असीम चिदानन्द है । वह निर्गुण निरूपाधि, निरन्जन और अव्यय है । वह रक्त, पीत, नीलवर्ण तथा श्वेतवर्ण नहीं है । वह तो मन और वाणी की पहुँच से परे है । वही ब्रह्म पहले " शिव "इस

---

1. श्रीमद्भाग 3 .14.34

नाम से कहे गये है ।

" यत: सर्वं समुत्पन्नं येनैव पाल्यते हि तद् ।
यस्मिश्च लीयते सर्वयेन सर्वमिदं ततम् ।
" तदेव शिवरूपं हि प्रोच्यते हि मनुश्वरा: ।
सत्यं ज्ञानमननन्तश्च चिदानन्द उदाहृत: ।। "
निर्गुणो निरुपाधिश्च निरन्जनोऽव्ययस्तथा ।
न रक्तो न च पीतश्च न श्वेतो नील एव च ।। "
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्यमनसा सह ।
तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञितम् ।। "

****
******
****
**

1. शिव पुराण ज्ञान अ० - 76

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

तृतीयोऽध्याय:

रुद्र की सर्वव्यापकता और उसकी उपासना का आध्यात्मिक महत्व

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

रुद्र की सर्वव्यापकता और उसकी उपासना का आध्यात्मिक महत्व-

अनादि काल से मानव चिन्तनशील प्रवृत्ति का रहा है । जब से मानव ने प्रथमतः सोचना आरम्भ किया उसे प्रकृति की मनोहर सुषमा देखने को मिली । प्रातःकाल उदित होने वाले सूर्य की छटा ने उसका मन मोहना शुरू कर दिया । जब वह अग्नि जलाता था, तो उसमें भी उसे एक आश्चर्यजनक तत्व दृष्टिगोचर होता था । जब आकाश में विद्युत् कौंधती थी तो उसके मन मे भी एक ऋजु प्रमोद भावना का उदय होता था ।यह सारा वातावरण मानव मन पर एक गहरा प्रभाव छोड़ने लगा । वह इस बात के सोचने के लिये विवश हो गया कि अवश्य ही इन सबके पीछे एक ऐसी अलौकिक चेतन शक्ति है, जिससे नियमित होकर यह सब प्रतिदिन एक सतत् प्रक्रिया में निरन्तर घटित हो रहा है और होता रहेगा । इस परा-प्राकृतिक चेतन को देवता नाम दिया गया और इस प्रकार मानव इतिहास में धार्मिक चिन्तन का समारम्भ हुआ । विद्वानों ने इसी प्रक्रिया को प्रकृति का मानवीकरण भी कहा है यद्यपि कहना देवीकरण चाहिये । विश्व वाङ्मय की प्रथम निधि वेद प्रकृति के देवीकरण का एक महत्वपूर्ण प्रमाण ग्रन्थ है । इसमें हमें मानव चिन्तन की प्रारम्भिक अवस्था का और उसकी विकासोन्मुख प्रतिभा का उन्नत रूप का दिग्दर्शन होता है ।

ऋग्वेद के आदिमकाल में बहुल देवताओं की सत्ता मानी जाती

थी, जिसे विद्वान् बहुदेववाद के नाम से पुकारते हैं । कालान्तर में इन बहुदेवताओं के अधिपति रूप में एक देवता विशेष की कल्पना की गयी । इन एक देवता विशेष में रुद्र अथवा शिव का विशिष्ट स्थान है, यद्यपि शक्ति एवं कार्यभेद से विष्णु तथा ब्रह्मा का भी विशेष महत्व है । किन्तु तात्विक दृष्टि से रुद्र, विष्णु एवं ब्रह्मा में एकत्व ही है । ऋग्वेद स्वयं ही कहता है कोई भी देवता छोटा नहीं होता सभी का अपना विशिष्ट स्थान है ।

" न हि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारको ।
विश्वे सतो महान्त इद् ।। ऋ0

यस्काचार्य[2] के अनुसार " इस जगत के मूल में एक ही महत्वशालिनी शक्ति विद्यमान है, जो निरतिशय ऐश्वर्यशालिनी होनेके कारण " ईश्वर " कही जाती है । उसी एक देव की बहुत से रूपों में स्तुति की जाती है ।

" महाभाग्याद्देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते ।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति ।।

निरुक्त- 6

बृहद्देवता[3] में भी इसी मत की पुष्टि की गई है । वैदिक वाङ्मय

---

1. ऋ0 8·30·1
2. निरु0 7/4, 8/9
3. बृहद्देवता अध्याय- 1 श्लोक सं0 61-65

का प्रधान लक्ष्य ही है सर्वव्यापी सर्वात्मक ब्रह्म सत्ता का निरूपण करना । यही " कारण सत्ता " कार्यवर्गों में अनुप्रविष्ट होकर सर्वत्र भिन्न- भिन्नआकारों में परिलक्षित हो रही है । प्रकृति की कार्यावली के मूल में एक ही नियन्ता है और एक ही सत्ता है । अन्यसम्पूर्ण देवता इसी मूलभूत सत्ता के विकास मात्र हैं ।

ऐतरेय आरण्यकके[1] अनुसार- एक ही " महती सत्ता की उपासना ऋग्वेदी लोग " उक्थ" रूप में किया करते हैं, उसी को यजुर्वेदी लोग याज्ञिक अग्नि के रूप में किया करते हैं तथा सामवेदी लोग" महाव्रत " नामक याग में उसकी उपासना करते हैं । आचार्य शङ्कर[2] भी अपने ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य में इसी मत की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं ।

यह रुद्र ही अखिल भुवनपति है, वहीं महेश्वर है, जो निखिल विश्व का सर्जक पालक औरसंहारक है । वही सम्पूर्ण जगत् में अव्यक्त रूप से व्याप्त है । जिस प्रकार अग्नि से उसकी दाह शक्ति अलग नहीं हो सकती, उसी प्रकार संकल्प शक्ति संकल्प करने वाले से अलग नहीं हो सकती । जिस प्रकार एक ही निराकार अव्यक्त रूप प्रणव, आकार, उकार और मकार रूप होकर साकारभाव कोप्राप्त होता है, उसी प्रकार एक ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश् रुद्र अथवा शिव ये तीन रूप हो जाते हैं । श्रुति कहती है-" एकैव मूर्तिर्बिभेदे त्रिधा5स्या[2]। वस्तुत: यह रुद्र ही निराकार है,

---

1• ऐतरेय आर० 3•2•3•/2
2• ब्रह्मसू० शा०भा० 1•1•25

वही साकार है और अपने भक्तों के कल्याणार्थ भाँति- भाँति के रूपों को धारण करता है । यजुर्वेद स्वयं ही इसी मत की पुष्टि करता है-

" प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा स्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।। "

श्री शिवगीता[1] में स्वयं श्रीराम ही रुद्र के इस ऐश्वर्यशाली महत् स्वरूप का वर्णन करते हुये कहते हैं कि हे शम्भो । जिस प्रकार वृक्ष लता गुल्मादि उद्भिज पदार्थ पृथिवी से उत्पन्न होकर उसी में स्थित रहते हुये अन्त में उसी में ही समाहित हो जाते हैं उसी प्रकार यह निखिल विश्व भी आपसे ही उत्पन्न होता है आप मे ही स्थित रहता है और अन्त: आप में ही विलीन हो जाता है ।

वेदसार- शिवस्तव[2] में श्रीशङ्कराचार्य भी इसी मत की पुष्टि करते हैं-

" त्वत्तो हि जगद्भवतिदेव । भव । स्मरारे ।
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड । विश्वनाथ ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश ।
लिङ्गात्कं हर । चराचर विश्वरूपिन् ।। "

भारतीय दर्शन के अनुसार प्रणवस्वरूप भगवान् रुद्र ही विश्व की उत्पत्ति के समय " ब्रह्मा " पोषण केसमय " विष्णु " नाम धारण करते हैं ।

1. शिवगीता- 7/23
2. वेदसार शिवस्तव श्लोक-।।

और उनके अनुरूप आकार भी ग्रहण कर लेते हैं तथापि उनके वास्तविक स्वरूप में कोई भेद नहीं उत्पन्न होता ।

महाभारत में इसकी पुष्टि करते हुये कहा गया है कि "ये रुद्र ही[1] ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवताओं का शरीर धारण करते हैं ।

"ब्रह्मा विष्णु सुरेन्द्राणां रुद्रादित्याश्विनामपि । विश्वेषामपि देवानां वपुर्धारयते भवः ।। महा०

वेदों में रुद्र अथवा शिव के तात्त्विक स्वरूप का जो दिग्दर्शन हुआ है उस पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर हम इस निर्णय पर पहुंचे बिना नहीं रह सकते कि रुद्र ही महादेव है, अग्नि है और सूर्य है ।[2]

अथर्ववेद[3] तैत्तिरीय संहिता[4] एवं शतपथ ब्राह्मण[5] में भी इसी मत की पुष्टि होती है ।

--55--

1• महाभारत अनु० अध्याय- 14

2• ऋ० 2•1•3

3• अथर्व 7•87•1

4• तैत्तिरीय सं० 5/1, 3,4 तथा 5•7•3

5• शत० ब्रा० 6•1•3, 10 तथा 1•7•3-8

इस सम्बन्ध में ऋग्वेद के अन्य मन्त्र भी प्रमाण रूप से द्रष्टव्य हैं[1]।

ऋग्वेदोक्त रूद्रदेव का स्वरूप अत्यन्त प्रभावशाली एवं व्यापक है। शतपथ ब्राह्मण[2] में इन्हें "सर्वाग्नि" कहा गया है और इनको हवि दोनों ही विधि-"शत रूद्रिय" और "शान्त रूद्रिय" से दी जाती है। सम्भवत: इसलिये यास्काचार्य[3] भी कहते हैं "अग्निरपि रूद्र उच्यते"। ऋग्वेद[4] का गृत्समद दृष्टसूक्त रूद्रपरक ही है। उसके प्रथम मंत्र मे ही ऋषि प्रार्थना करता है कि "हे मरूत् पिता हमें सूर्यदर्शन से वंचित न करो। इससे यह स्पष्ट होता है कि रूद्र उत्तरीय ध्रुव प्रदेश की दीर्घ रात्रि के, जो वहाँ कम से कम तीन मास तक रहती है, अभिमानी देवता है। वही तृतीय मंत्र में रूद्र की सर्वव्यापकता का संकेत करते हुये उससे भक्तों की रक्षा एवं आरोग्य कीप्रार्थना की गयी है[5]।

यह रूद्र अनेक रूपवाला है। भक्तों के मंगलार्थ वह नानाविध रूपों वाला अथवा रंगोवाला आकृति धारण कर लेता है। दु:ख अथवा उसके कारण

1• ऋ0 1•27•10, 3•2•5 तथा 4•3•1

2• शत0ब्रा0 9•1•1

3• निरूक्त10•7•2

4• ऋ0 2•33•1

5• ऋ0 2•33•2

को " रुद्र " कहते हैं । उस रुद् को भगवान् शिव दूर करते हैं इसी लिये संसार के आदि कारणभूत उस परमात्मा को रुद्र कहते हैं । यह रुद्र असाधारण तेजस्वी एवं बभ्रुवर्ण है, नक्षत्र विज्ञान की दृष्टि से यह रंग" आर्द्रा नक्षत्र का खास रंग है । जिसप्रकार मृगशिरा नक्षत्र का खास रंग सफेद है ।[1]

" स्थिरेभिरङ्गै: पुरुरूप उग्रो
बभ्रु: शुक्रेभि: पिपिशे हिरण्यै: ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरे-
र्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ।। "

अथर्ववेद के अनुसार[2] " चन्द्र, सूर्यतारे आदि जितने चंद्र मण्डल है वे सभी रुद्र के वशवर्ती है । सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को वेदरूपी शब्द§ का उपदेश§ देने वाले भगवान् शङ्कर ही रुद्र है ।[3] यजुर्वेद में इसतथ्य का स्पष्ट सङ्केत मिलता है । श्वेताश्वतरोपनिषद्[4] रुद्र के इसी महिमा-शाली स्वरूप का प्रतिपादन करती है ।

---

1. ऋ0 2·33·9
2. अथर्व 13·4
3. यजु0 रुद्राध्याय मं0 सं- 34
4. श्वेता0 6/18 यजु0 31/7

::- " श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमः "

ये रुद्र देव सर्वदेवो में ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ हैं।[1] यही पुराणपुरूष हैं तथा संसार बन्धन में फँसे प्राणियों के मुक्तिदाता हैं। ये पापों का सर्वनाश करते हैं। इसीलिये इन्हें शर्व अर्थात् " रुद्र " कहा जाता है।[2]

::- " भवाय च शर्वाय च नमः " { यजु० }

आचार्य शङ्कर के अनुसार यह रुद्र वय और विद्या, आश्रम आदि में बड़े होने से ज्येष्ठ तथा प्रथम{ आदिकारण} होने से वृद्ध है।

"" वयो विद्याश्रमादिभिरधिको ज्येष्ठः। वयसा वृद्धः। जगताम्ग्रे भवः।" { शा० भा०}

श्रुति तथा स्मृतियाँ इस तथ्य का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करती है कि पुराणपुरूष और श्रेष्ठ एक ही रुद्र है। यथा-

1• अग्र्यं पुरूषं महान्तम्" (श्वेता० 3/19 }

2• " नमो वृद्धाय च वर्षीयसे च नमः।" (यजु० 16/30

3• "नमोऽग्र्याय च ज्येष्ठाय च " { यजु० 16/30-32 }

4• "स एकः श्रेष्ठश्च सर्वशास्ता स एव वरिष्ठः। "(शरभोपनिषद् 3/6 }

1• कौशीतक ब्राह्मण 1- 25/13

2• यजु० 16=28

अथर्व 11/3/6/9

अथर्ववेद[1] में गोरूपिणी पृथिवी की स्तुति की गयी है । वह गो अपना खुर उठाते समय "तीर" बन जाती है और जब अपने चारों ओर देखती है तो महादेव रूप हो जाती है[2] । जब वह वृद्धिगत होकर " परिव्राजक व्रात्य बन गया तो वही महादेव कहलाने लगा[3] ।

यजुर्वेद के अनुसार ये रुद्रदेव अत्यन्त बलवान एव अस्त्र शस्त्र सज्जित प्रबल पराक्रमी योद्धा है । उनके हाथ में धनुष और बाण है तथा उनके धनुष का नाम " पिनाक"[4] है । स्वर्ण निर्मित उनका धनुष सहस्त्रों व्यक्तियों को हनन करने में समर्थ तथा सैकड़ो बाणों से अलङ्कृत और मयूर-पिच्छ से सुशोभित है[5] । वे वज्र भी धारण करते हैं जिसका नाम "सृक्"[6] है ।

" धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्निं शतवधं शिखण्डिनम् ।।"

ऋग्वेद में रुद्र की महत्ता का वर्णन करते हुये ऋषि कहता है कि " ये रुद्र देव स्वर्ग लोक के रक्त वर्ण (अरुष) वराह है[7] । ये सबसे श्रेष्ठ " वृषभ"

1· अथर्व 12/4,5
2· तदेव 12·5·18
3· तदेव 12·1·4
4· शुक्ल यजु0 16/51
5· तदेव 11·2·12
6· तदेव 16·21
7· ऋ0 1·114·4

कामनाओं के सेचक है, वे तरुण हैं तथा उनका तारुण्य सदा सर्वदा कायम रहने वाला है । वे शूरो के अधिपति है और अपने सामर्थ्य से पर्वतो में टिकी हुयी नदियों में जल का प्रवाह उत्पन्न कर देते हैं । अपने भक्तों के कल्याणार्थ वे सब कुछ कर देते हैं इसीलिये उन्हें " शिव " इस नाम से भी पुकारा जाता है ।

ऋग्वेदीय देव मण्डली में रुद्र का स्थान उतने महत्व को न प्राप्त हो सका जितना कि अन्यसंहिताओं में इनका महत्वदीख पड़ता है । यजुर्वेद के रुद्र अध्याय में रुद्रदेव के लिये भव शर्व, पशुपति, उग्र, भीम आदि शब्दों काप्रयोग मिलता है । जिनसे रुद्र की सर्वव्यापकता एवं उस के महत्व का स्पष्ट सङ्केत प्राप्त होता है । इस जगत् में कोई ऐसा स्थान नहीं है, चाहे वह स्वर्गलोक में हो, अन्तरिक्ष में, भूतल के ऊपर या भूतल के नीचे हो, रुद्रदेव का आधिपत्य न हो । यह निखिल जगत् सहस्त्रो रुद्रो की सत्ता से ओतप्रोत है । ये रुद्र जगत् के समस्त पदार्थों के स्वामी हैं । वे अन्नो के खेतो के वनो के अधिपतिहैं, साथ ही साथ चोर, डाकू, ठग आदि जघन्य जीवों के भी वे स्वामी है । अथर्ववेद[1] में रुद्र के नामों में भव, शर्व, पशुपति तथा भूतपति उल्लिखित है । यह तथ्य द्रष्टव्य है कि पशुपति का अभिप्राय मात्र गाय आदि पशुओं के ऊपर हीउनका अधिकार नहीं चलता अपितु पशु के अन्तर्गत मानव की गणना भी अथर्ववेद को मान्य[2] है ।

---

1. अथर्व 11.3.6

2. तदैव 11.2.9

तमेवे पन्व पशवो भक्ता ।

गावो अश्वा:पुरूष अजावय: ।।

रुद्र के लिये प्रयुक्त " पशुपति " के तान्त्रिक अर्थ का आभास सर्वप्रथम अथर्ववेद में ही मिलता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रुद्र का निवास अग्नि, औषधियों तथा लताओं मे ही नही है अपितु उन समस्त भुवनो में भी है जिनकी रचना कर रुद्र देव ने इन्हें सम्पन्न बनाया है ।

"यो अग्नौ रुद्रो या अप्स्वन्तर्य ।

औषधीर्वीरुध आ विवेश ।

या इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे ।

तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ।। " ﴾ अथर्व0 ﴿

अथर्ववेद में प्रयुक्त रुद्र के लिये पशुपति शब्द का अत्यन्त ही आध्यात्मिक महत्व है । क्यो कि तत्वज्ञ वैदिक ऋषियों के मत में " व्यापक जीवात्मा या क्षेत्रज्ञ ही " पशु " कहलाता है । यह पशु तीन तरह का होता है ।

﴾अ﴿ विज्ञानाकल ﴾अ﴿ प्रलयाकल ﴾इ﴿ सकल

﴾अ﴿ जो परमात्मा को जानकर जप ध्यान तथा सन्यास द्वारा अथवा भोग द्वारा कर्मों का क्षय करके देह, इन्द्रियादिको के बंधन से रहित हो जाता है तथा केवल उसमें मलरूपीपाश ﴾ बन्धन﴿ ही अवशिष्ट रह जाता है, उसे विज्ञानाकल कहते हैं ।

1• अथर्व 7•87•1

§आ§ जिस जीवात्मा के देह इन्द्रियादि प्रलय काल में लीन हो जाते है § किन्तु बीज रूप में रहते हैं§ तथा जिसमें मल और कर्मरूपी दो पाश §बन्धन§ रह जाते हैं, वह "प्रलयाकल" कहलाता है।

§इ§ जिस जीवात्मा में मल, मया तथा कर्म यह तीन पाश रहते हैं उसे सकल कहते हैं।

विज्ञानाकल के भी "समाप्त कलुष" और "असमाप्तकलुष" ये दो भेद होते हैं। जीवात्मा जो कर्म करता है, उस प्रत्येक कर्म की तह मल पर जमती रहती है। इसी कारण इस मल कापरिपाक नहीं होने पाता। किन्तु जब कर्मों का त्याग हो जाता है तब तह न जमने के कारण मल का परिपाक होजाता है और जीवात्मा समाप्त कलुष कहलाने लगती है। ऐसे जीवात्माओं को भगवान रूद्र आठ प्रकार के "विद्येश्वर" पद पर पहुँचा देते हैं। उनके नाम हैं-

§1§ अनन्त
§2§ सूक्ष्म
§3§ शिवोत्तम
§4§ एकनेत्र
§5§ एकरूद्र
§6§ त्रिमूर्ति
§7§ श्रीकण्ठ
§8§ शिखण्डी।

असमाप्त कलुष जीवात्माओं को परमेश्वर मंत्रस्वरूप दे देता है।

कर्म तथा शरीर से रहित किन्तु मल रूपी पाश में बंधे हुये जीवात्मा ही मन्त्र है ।

"प्रलयाकल" भी दो प्रकार के होते हैं-

पक्वपाशद्वय और अपक्वपाशद्वय । जिसके "मल" तथा "कर्म" रूपी दोनों पाशों का परिपाक हो गया हो वह "पक्वपाशद्वय" जीवात्मा मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। "अपक्वपाशद्वय" जीव नाना प्रकार के कर्मों को करते हुये नाना योनियों में घूमा करता है।

सकल भी दो प्रकार के होते हैं- "पक्वकलुष" और अपक्वकलुष" जैसे- जैसे जीवात्मा के "मल- कर्म" तथा माया इन पाशों का परिवाक बढ़ता जाता है वैसे- वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होते चले जाते हैं । तब वे पक्वकलुष जीवात्मा मन्त्रेश्वर कहे जाते हैं ।

तत्वज्ञ वैदिकऋषियों के अनुसार यह जीवात्मा मल, रोध कर्म तथा माया इन चारपाशों के आवद्धहै । अत: इन पाशों में बंधा हुआ "पशु"अर्थात् जीव जब तत्व ज्ञान रूपी बाणों के द्वारा इन पाशों अर्थात् बन्धनों को काट डालता है, तभी वह परम शिव- तत्व अर्थात् "पशुपति" को प्राप्त होता है । अथर्ववेद[1] को भी पशुपति शब्द का यही अर्थ अभीष्ट प्रतीत होता है ।

-55---

1. अथर्व 7.87.3

ब्राह्मण काल में तो रुद्र का महत्वओरभी व्यापक हो गया । ऋग्वेदकी शाकल शाखा के ऐतरेय ब्राह्मण के कतिपय उल्लेखों से ही रुद्र की सर्वव्यापकता और महनीयता की पर्याप्त सूचना मिल जाती है[1] ।इस ब्राह्मण में प्रजापति से उनकी कन्या के सहगमन का प्रसंग उठाकर रुद्र की उत्पत्ति की चर्चा की गयी है । यहां पर गौरव की दृष्टि से ही रुद्र का नामोल्लेख न करके "एष देवोऽभवत्" कहकर उनके लिये सम्माननीय शब्दका ही प्रयोग किया गया है ।

उपनिषदीय वाङ्मय में रुद्र की प्रधानता का परिचय हमें अच्छी तरह से प्राप्त होता है । छान्दोग्य[2], बृहदारण्यक[3], मैत्री[4], महानारायण[5] नृसिंहतापनी[6], श्वेताश्वतर[7], आदि प्राचीन उपनिषदों में रुद्रदेव के वैभवतथा

1· ऐतरेय ब्रा0 3·3·33

2· छान्दोग्य 3·7·4

2· बृहदारण्यक 3·9·4

4 मैत्री 6·5

5· महानारायण 13·2

6· नृसिंह तापनी 1/2

7· श्वेताश्वतर 3/2,4 श्वेताश्वतर 3/2

प्रभाव का वर्णन उपलब्ध होता है । श्वेताश्वतर में रुद्र कीएकता, जगन्निर्माण में निरपेक्षता, विश्व के आधिपत्य, महर्षि तथा देवों के उत्पादक तथा ऐश्वर्य सम्पन्न बनाने के सिद्धान्तों का प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में किया गया है । "एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु: । "

वैदिक धर्म दर्शन के अनुसार जीव ही कर्म का फल भोगता है और महेश्वर फल भोक्ता नहीं है । वह तो केवल साक्षी रूप से बिना भोग के स्वयं ही प्रकाशित होता है । इन दोनों में भेद मायाकल्पित है । जिस प्रकार घट में रहने वालाआकाश घटाकाश है और मठ के अन्दर रहने वला आकाश मठाकाश है औरयह मुख्य आकाश के भेद से कल्पित है इसी प्रकार जीव और शिव रूप भेपक तत्व में दो तत्व कल्पित हैं ।

वास्तविक शिवरूप परमेश्वर साक्षात् चैतन्यस्वरूप है और जीवभी स्वरूपत: चैतन्यात्मक है क्योंकि चित् अर्थात् ज्ञान चैतन्य स्वरूप से भिन्न नहीं है ।यदि भिन्न हो तो उसकी चैतन्य स्वरूपता ही नहीं रह जायेगी । जिसके अविद्या- काम- कर्मादि दोष क्षीण हो गये हैं, ऐसे पुरूष ही स्वशरीर में स्वयंप्रकाश स्वरूप एवं सबके साक्षी उस महेश्वर को देखते हैं जिसे रुद्र कहा जाता है । परन्तु जो माया से आवृत्त हैं वे उसे नहीं देख पाते ह इस प्रकार जिसेश्रेष्ठ योगी को अपने स्वरूप का ज्ञान रहता है उस पूर्णस्वरूप वाले को कहीं भी जाना नहीं पड़ता । आकाश सम्पूर्ण औरएक है, वह कहीं नहीं जाता । इसी प्रकार आत्म स्वरूप का ज्ञाता भी कहीं नहीं जाता । वह तो निश्चय पूर्वक उस परब्रह्म को जानकर स्वयमेव तद्रूप हो जाता है।

रुद्रोपासना का आध्यात्मिक महत्व-

भारतीयसंस्कृति में रुद्रदेव की उपासना औरउनकी अभ्यर्चना के अन्दरजो दार्शनिक तत्व सम्निहित है, उसका अपना एक विशिष्ट महत्व है। शिव अथवा रुद्र की उपासना के सम्बन्ध में अनेक रूपक मिलते हैं एक पुराण में कहा गया है कि-

" चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च।
ब्रह्मादीनाञ्च सर्वेषां दुर्विज्ञेयोऽस्ति शङ्कर: ।।"

ब्रह्मादि के चरित्र भी गुह्य तथा गहन है, परन्तु शंकर के चरित्र तो अत्यन्त दुर्विज्ञेय है। शङ्कर का अर्थ है- ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के सुख का कर्ता औरदाता।

" शिव: कल्याणरूप:, अकल्मष:, निस्त्रैगुण्य: ।।"

महाभारत रुद्राध्याय में शिव की व्यापकता एवं उस के महनीय स्वरूप की व्याख्या करते हुये कहा गया है कि-

" समेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान् सर्वकर्मसु।
शिवमिच्छन्मनुष्याणां तस्माद्देव: शिव: स्मृत: ।। (महाभारत)

भगवान रुद्र अथवा शिव की उपासना वैदिक काल से ही चली आ रही है। वैदिक काल में शिव की पूजा आधुनिक रूप मे नहीं थी और न महादेव या शिवशब्द का अधिक प्रयोग ही होता था। ऋग्वेद में "रुद्र" शब्द का शिव के लिये प्रयोग मिलता है और जो विशेषण शिव जी के लिये प्रयुक्त है वे प्राय: रुद्र के लिये मिलते है। सर रामकृष्ण भण्डारकर ने इस सम्बन्ध में बहुत विस्तार के साथ यह दर्शाया है कि किस तरह रुद्र का रूप आगे चलकर शिव के रूप में परिवर्तित हुआ तथा महाभारत के समय शिवलिङ्ग की पूजा कैसे प्रचलित हुयी।

रुद्र अथवा शिव की उपासना सम्बन्धी शैव मत मे यद्यपि विभिन्न मत है किन्तु प्राय: सभी शिवोपासक शिवरात्रि व्रत को श्रद्धा एवं भक्ति के साथ सम्पादित करते है। इस व्रत के रहस्य के ज्ञानार्थ यह आवश्यक है कि शिव और रात्रि क्या है? श्रुतियां कहती है-

"शेत तिष्ठति सर्वं जगद् यस्मिन्नसौ: शिव: शम्भु: विकाररहित: ----।" अर्थात् जिसमें यह अखिल

विश्व शयन करता है, जो विकार रहित है वह शिव है, अथवा जो अमङ्गल

1· ऋ0 10·92·9 तथा 1·114·9

2· वैष्णव तथा शैव पन्थपृ0 सं0 145·160

का ह्रास करते हैं वे ही सुखमय, मङ्गल रूप भगवान शिव हैं । जो सम्पूर्ण जगत् को अपने में समाहित कर लेते हैं वे ही करुणासागर भगवान शिव हैं । महासमुद्र रूप शिव ही एक अखण्ड परतत्त्व है, इन्हीं की अनेक विभूतियाँ अनेक नामों से पूजी जाती है । यह रुद्र अथवा शिव ही सर्वव्यापक और सर्व-शक्तिमान है । वहीं व्यक्त अव्यक्त रूप से क्रमशः सगुण " ईश्वर " और निर्गुण " ब्रह्म " कहे जाते हैं । यही " परमात्मा " " जगदात्मा " "शम्भव" "मयोभव" "शङ्कर", " भयस्कर " "शिव " रुद्र " आदि नामों से सम्बोधित किये जाते हैं ।

ये रुद्र अपने उपासकों के त्रिविध तापों के नाशक हैं । इन्हीं से समस्त विद्याएं एवं कलाएं निकली है, ये ही वेद तथा प्रणव के उद्गम है। श्रुतियाँ नेति- नेति " के द्वारा इन्हीं का गुणगान करती है ।

रात्रि शब्द " रा " दानार्थक धातु से निष्पन्न होता है अर्थात् जो सुखादि प्रदान करती है वह रात्रि है । ऋग्वेद- रात्रि सूक्त के उप मंत्र में रात्रि की अत्यन्त प्रशंसा की गयी है-[1]

" उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उष ऋणेवयातय ।"

1· ऋ० संहिता रा० सू० 10.127·7

अर्थात् हे रात्रे। अश्लिष्टजो तम हैवह हमारे पास न आवे। रात्रिसदा आनन्द प्रदात्री है, अत: सब की आश्रय- दात्री होने के कारण उसकी स्तुति की गयी है। वस्तुत: ऋग्वेदोक्त रात्रि सूक्त से प्रकृति देवी, दुर्गादेवी, अथवा शिवादेवी की ही स्तुति अभिप्रेत है। इस प्रकार शिव रात्रि का अर्थ होता है। "वह रात्रि जो" आनन्द दायिनी है जिसका शिव के नाम के साथ विशेष सम्बन्ध है।

यह रात्रि माघ फाल्गुन कृष्णचतुर्दशी को पड़ती है, जिसमें शिवपूजा, उपवास औरजागरण होता है उक्त फाल्गुन कृष्णचतुर्दशी को रात्रि को शिव पूजा करना एक महाव्रत है, अत: उसका नाम महाशिवरात्रि व्रत पड़ा। स्कन्दपुराण के अनुसार यह शिवरात्रि व्रत परात्पर है, जो जीव इस शिव रात्रि में रुद्रदेव की पूजा भक्ति पूर्वक नहीं करता वह अवश्य हजारों वर्ष तक घूमता रहता है।

"परात् परतरं नास्ति शिवरात्रिपरात् परम्।
न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्।
जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्रसंशय: ।।" { स्कन्दपुराण 18-6 }

इस व्रत की महिमा एवं उसके फल के सम्बन्ध में पौराणिक वाङ्मय के कुछ श्लोक प्रमाणार्थ द्रष्टव्य हैं-

" सौरो वा वैष्णवो वान्योदेवतान्तरपूजक: ।
न पूजाफलमाप्नोति- शिवरात्रिबर्हिर्मुख: ।।

§ नृसिंह परिचर्या और पद्मपुराण§

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से शिवरात्रि व्रत में एक गूढ रहस्य सन्निहित है । फाल्गुन के पश्चात् नये वर्ष चक्र का प्रारम्भ होता है । रात्रि के पश्चात् दिन और दिन के पश्चात् रात्रि होती है अथवा लय के बादसृष्टि औरसृष्टि के बाद लय होता है । इस प्रकार लय के बाद सृष्टि और फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के बाद वर्षचक्र की पुनरावृत्ति एक ही बात है । वर्ष चक्र की पुनरावृत्ति के समय मुमुक्षु जीव परम तत्व शिव के पास पहुँचना चाहता है । ज्योतिषशास्त्र के अनुसार कृष्णचतुर्दशी में चन्द्रमा सूर्य के समीप होते हैं, अत: उसी समय में जीव रूपी चन्द्रमा का शिवरूपीसूर्य के साथ योग होता है, अतएव फाल्गुन कृष्णचतुर्दशी को शिव- पूजा करने से जीव को इष्ट - पदार्थ की प्राप्ति होती है ।

वैदिक साहित्य में व्रत हीअथर्ववेदबोधित, इष्ट प्रापक कर्म है । दार्शनिक काल में " अभ्युदय" और " नि:श्रेयस" कर्मों का हेतु पदार्थ ही व्रत समझा जाता था । पुराणों में व्रत " श्रम" का वाचक है । अत: स्पष्ट है कि जिस कर्म द्वारा भगवान का सान्निध्य होता है वही व्रत है । व्रत में उपवास होता है । इसका अर्थ है- जीवात्मा का शिव के समीप वास ही " उपवास" है । स्मृतियाँ इसी तथ्य का प्रतिपादन करती प्रतीत होती हैं ।

"उप समीपे यो वास:

जीवात्मपरमात्मनो :

उपवास: स विज्ञेयो

न तु कायस्य शोषणम् ।।"

अत: स्पष्ट है कि भगवान् रुद्र अथवा शिव का ध्यान उनका जप, स्नान कथा श्रवण आदि के साथ वास अर्थात् इन क्रियाओं को करते हुये काल- यापन करना ही उपवास कर्त्ता का लक्षण है ।

रुद्रदेव की सर्वव्यापकता एवं महनीयता के कारण ही उनकी उपासना का अपना एक अलग विशिष्ट महत्त्व है । अथर्वशिव उपनिषद्[1] में कहा गया है कि एक बार देवगण महाकैलाश में गये, उन्होंने रुद्र से पूछा- " आप कौन हैं ? भगवान् रुद्र बोले- मैं एक (प्रत्यग्रूप) हूँ । मैं सृष्टिके पूर्व में था, इस समय हूँ और भविष्य में भी रहूँगा, मैं तीनों कालों से अपरिच्छिन्न हूँ । मुझ सर्वेश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है ।

"देवा ह वै स्वर्ग लोकमगमस्ते देवा रुद्रमपृच्छन् को भवानीति । सो5ब्रवीदहमेक: प्रथममासं वर्तामि भविष्यामि च नान्य: कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति ।।"

अथर्व शिखा- उपनिषद्[2] में सनत्कुमारादि ने अथर्वण ऋषि से प्रश्न किया-

---

1· अथर्वशिर उप - अध्याय - 2

2· अथर्व शिखोप- अ0 -1

"भगवन्‌ ! किमादौ प्रयुक्तो ध्यानम्‌ ध्यातव्यं किं तद्ध्यानं को वा ध्याता कश्च ध्येयः ।"

सनत्कुमार के इन प्रश्नों को सुनकर अथर्वण ऋषि ने क्रमशः तीन प्रश्नों का उत्तर दिया और कहा कि ये शिव अथवा रुद्र ही ध्यान योग्य हैं । तदनन्तर इससे इतर सम्पूर्ण देवताओं की उपेक्षा कर रुद्रदेव का ही ध्यान करना चाहिये । सम्पूर्ण देवों में प्रधानदेवता ब्रह्मा विष्णु और रुद्र इस जगत्‌ की सृष्टि, स्थिति और संहार में नियुक्त हैं । किन्तु ये भी भूत और इन्द्रियादि के सदृश परमेश्वर से ही उत्पन्न होते हैं । सम्पूर्ण कारणों के हेतु भूत भगवान रुद्र कभी भी उत्पत्ति, विनाशादि विकारों से ग्रस्त नहीं होते कल्याणरूप वेद ही इन रुद्र भगवान की वाणी है । इसीलिये तत्वज्ञ वैदिक ऋषिगणों के वे ही ध्येय हैं ।

"नमः शङ्गवे च" (यजु०)[1]

रुद्रदेव अपने उपासकों को वेदरूपी वाणी में स्थित होकर मोक्ष सुख प्रदान करते हैं ।[2] ये अपने भक्तों के दुःखों का नाश करते हैं । इनका कर स्पर्श सुखदाता है, रक्षक है और पापविनाशक है ।[3]

---

1. यजु० 16-4
2. ऋ० 10·71·5
3. ऋ० 2·7

संपूर्ण देवों का प्रथम मुख अग्नि ही है ।[1] अग्नि में हवन किये गये हवि को ग्रहण करदेवगण तृप्त होते हैं ।[2] इन देवों का मुख ही अग्नि है तथा अग्नि रूप मुख से ही प्राणी प्राण धारण करते हैं[3] ।

" प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि ।

शिवोमाविशाप्रदाहाय ।। " {तै० आ०}

तैत्तिरीयारण्यक मे ऋषि कहता है कि-

" हे हुत द्रव्य । मै तुझे पन्च प्राणों में आहुति रूप से हवन करता हूं । तु शिवरूप होकर मेरी क्षुधा- पिपासा के शमनार्थ मेरे शरीर में प्रविष्टहो जा । "

ऋग्वेद[4] में रुद्र की उपासना का महत्व बतलाते हुये कहा गया है कि " जो द्विज रुद्र स्वरूप सविता को ओरपाप के हरने वाले अतिथि को हवन के साथ प्राणाहुति से तथा भोजन से तृप्त नहीं करता है वह केवल पापी है ओरपापरूप भोजन के खाने वाला है ।

---

1. ऐ०ब्रा० 20.1.1

2. तदैव 1.9.2

3. तै० आ० 10.34

4. ऋ० 10.117.6

" अर्यमणं पुष्यति नो सखयां
केवलाधी भवति केवलादी " ऋ०

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रुद्रदेव का शरीर है इस शरीर में अग्नि ही मस्तक है, चन्द्रमा सूर्यदोनों नेत्र हैं, दिशायें श्रोत्र हैं,वेद वाणी है, विश्व व्यापी वायु प्राण रूप से हृदय में अवस्थित है, पृथिवी पादरूप है- वह सम्पूर्ण भूतो काअन्तरात्मा है । ऐसे रुद्रदेव की उपासना करने वाला सभी पाशों से मुक्त हो कैवल्य पद का भागीदारहोता[1] है ।

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः
वायुःप्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ।। "

रुद्रदेव की अथवा शिवलिङ्ग की उपासना का वर्णन ऋग्वेदमें भी सूक्ष्म रूप से मिलता है[2]। कालक्रम से वैदिक साहित्य में, संहिताओं में, ब्राह्मणों में, आरण्यकों में और उपनिषदों में भी रुद्र आदि अनेक नामों से और उमा विद्या आदि अनेक नामों से उमामहेश्वर के प्रसंग आते हैं । पौराणिक

1• मुण्ड० 2•1•4

2• ऋ0 10•92•9, ऋ0 1•114•1-4, 101

136 सम्पूर्ण 2/34/ । तथा 2•11•2

वाङ्मय में सूक्ष्म रूप से वर्णित उन्हीं रुद्र भगवान् की विस्तृत व्याख्या मिलती है । इतिहासों में तो घटना प्रसङ्ग में चर्चा आती है । वाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड में रावण के कथा प्रसङ्ग में आया है-[1]

" यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षेश्वरः ।
जाम्बूदमयं लिङ्ग तत्र तत्र स्म नीयते ।। "
बालुकावेदिमध्ये तु पतल्लिङ्गस्थाप्य रावणः ।
अर्चयामास गन्धैश्च- पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः ।। "

महाभारत अनुशासन पर्व में[2] भगवान् महेश्वर का कथा प्रसङ्ग है, जिसके अन्तर्गत शिवसहस्त्र नाम का स्मरण एवं जप को प्राणी ने अभ्युदय का हेतु निरूपित किया गया है। सौप्तिक पर्व में तो ये रुद्रदेव अश्वत्थामा के प्रार्थना पर इतना प्रसन्न हो गये कि उस के कल्याणार्थ उसके शरीर में ही प्रविष्ट हो गये । इसके अतिरिक्त रुद्र की उपासना और उसके तात्त्विक महत्त्व का वर्णन न केवल शिव से सम्बद्ध पुराणों में हीअपितु पद्म पुराण शैवपुराण, स्कन्द पुराण, लिङ्गपुराण, मत्स्य पुराण, ब्रह्माण्ड पुराणादि में भी वर्णित है ।

इतिहास पुराणादि के अतिरिक्त तन्त्र ग्रन्थ और स्मृतियों मे भी

1• वाल्मीकि रा० उ० का० 31/42-43

2• महाभारत अ० 16

रुद्रदेव की उपासना का आध्यात्मिक महत्त्व वर्णित है । जहाँ तक तन्त्र ग्रन्थों का प्रश्न है वे तो उमामहेश्वर संवाद पर ही है । तंत्रों के द्वारा ही भगवान् शंकर ने अनेक विद्याओं और रहस्यों का वर्णन किया है । जिसकी विधिपूर्वक उपासना कर व्यक्ति मनोवांछित फल की प्राप्ति कर सकता है ।

संहिताओं में रुद्र की स्तुति मात्र है, परन्तु शतपथ ब्राह्मण[1] में और शाखायन ब्राह्मण[2] में रुद्र देव की उत्पत्ति और उनकी उपासना विधि का उसी प्रकार से वर्णन उपलब्ध होता है, जैसा मार्कण्डेय पुराण और विष्णु पुराण में मिलता है । यही नहीं अपितु वाजसनेयि संहिता[3] में " अम्बिका " और " शिवा " तवलकार आरण्यक[4] में ब्रह्मविद्या स्वरूपिणी "उमा हैमवती " और तैत्तिरीय आरण्यक[5] में कन्या कुमारी, दुर्गा, कात्यायनी के रूप में रुद्र अथवा शिवा का यशोकीर्तन एवं उनकी उपासना का वर्णन मिलता है ।

---

1. शत० ब्रा० 6.1.3
2. शा०ब्रा० 6.1.1-9
3. वाजसनेयि सं० 3/57 तथा 16/1
4. तवलकार आर० 3.11-12 तथा 4/1-2
5. तै० आ० प्रपा० 10

लिङ्•ग पुराण के तीसरे अध्याय में शिव लिङ्•गोपासना का आध्यात्मिक वर्णन मिलता है । जिसमें यह कहा गया है कि भगवान् महेश्वर {रुद्र} अलिङ्•ग है । प्रकृति- प्रधान ही लिङ्•ग है, महेश्वर निर्गुण है । प्रकृति सगुण है । प्रकृति या लिङ्•ग के विकास और विस्तारसे ही इस निखिल विश्व की सृष्टि होती है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड लिङ्•गानुरूप ही निर्मित होता है । ये ब्रह्माण्डरूपी ज्योतिलिङ्•ग अनन्त कोटि हैं । निखिल सृष्टि लिङ्•ग के ही अन्तर्गत है, लिङ्•गमय है और अन्ततः लिङ्•ग में ही सारी सृष्टि का लय हो जाता है ।

" आकाशं लिङ्•ग मित्याहु: ।
पृथिवी तस्य पीठिका
आलय: सर्वदेवानां लयना लिङ्•गमुच्यते ।।6 {स्कन्दपुराण}

आकाश लिङ्•गा है, पृथिवी उसकी पीठिका है, सब देवताओं का यह आलय है । इसी में सब का लय होता है, इसीलिये इसे लिङ्•ग कहते हैं ।

ये शिव परब्रह्म है और अपने उपासकों के लिये साक्षात् कल्पवृक्ष स्वरूप है । महाभारत में इन्हें सर्वप्रधान देवाधिदेव परिपूर्णतम परात्पर ब्रह्म कहा गया है । ज्ञान यज्ञ, दान और सम्मान में ये सभी देवों से श्रेष्ठ है उनके इस महनीय स्वरूप से सम्बन्धित विभिन्न आख्यायिकायें हैं ।

जाम्बवती के अत्यन्त अनुनय विनय करने पर भगवान् कृष्ण उसकी पुत्र-प्राप्ति के लिये शिव आराधना के निमित्त कैलास पर्वत पर गये । ऋषिप्रवर उपमन्यु के मुखारविन्द से उनकी अतुल महिमा को सुनकर अति मुग्ध हुये और ऋषि के उपदेश से विधिपूर्वक भगवान रुद्र की अर्चना में संलग्न हुये । एक मास तक फलाहार करके, दूसरे में जल पीकर, तीसरे में मात्र वायु का भक्षण कर ऊपर को हाथ उठाये एक पैर से खड़े रहे । उनकी इस उग्र तपस्या से रुद्रदेव प्रसन्न हो गये और जगदम्बा के साथ उन्हें दर्शनदेकर मनोवाञ्छित आठ वरदान दिये । उस समय उनके चारों ओर देवगण वेदमंत्रों से उनका यशोगान कर रहे थे । स्वयं श्रीहरि अर्थात् भगवान् कृष्ण ने उनकी स्तुति की[1] ।

त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः ।
धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः ।।
त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
सर्वतः श्रुतिमाल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ।।

महाभारत के द्रोणपर्व में अभिमन्यु के शोक से कातर अर्जुन की प्रतिज्ञा

---

1. महाभारत अनु० 45-396-97,407

को पूर्ण कराने तथा पाशुपतास्त्र की प्राप्ति के लिये अर्जुन को लेकर स्वयं श्रीकृष्ण कैलाश में देवाधिदेव महादेव के समीप गये और उनकी प्रार्थना किया। प्रसन्न होकर शिव ने अर्जुन को वह दिव्यास्त्र प्रदान किया जिसने महाभारत के युद्ध में पाण्डव की विजय में निर्णायक भूमिका का निर्वाह किया।

नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।
नमः सहस्त्रशिरसे सहस्त्रभुजमृत्यवे ।।
सहस्त्र नेत्र पादाय- नामोऽसंख्येयकर्मणे ।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिद्ध्यतां नो वरः प्रभो ।।

"पराशरपुराण" के अनुसार श्रुतियों, स्मृतियो एवं पुराणों में जहाँ कहीं अन्य देवताओं को जगत् का कारण बतलाया गया है वहीं उसका पर्यवसान शङ्कर जी में ही है। ये साम्बशिवही सबके कारण है। सत्य, ज्ञान और अनन्त वही है।

"सर्वकारणमीशनः साम्वः सत्यादिलक्षणः ।
श्रुतयश्च पुराणानि भारतादीनि सत्तम ।
शिवमेव सदा साम्बं हृदि कृत्वा श्रुवन्ति हि ।।"

---

1. महाभारत द्रोण पर्व 80/63-64

प्रणव स्वरूप होने के कारण ये शिव वैदिक धर्मावलम्बियों के परम उपास्य देव हैं । प्रणव के सिर पर चन्द्रबिन्दु होने के कारण ये चन्द्रशेखर हैं ।प्रणव वेद का बीज मंत्र है । मनुमहाराज कहते हैं कि ऋग्, साम और यजुर्वेद से "अ" "उ" "म" इन तीन अक्षरों को लेकर प्रणव निर्मित हुआ है । इसीलिये ये शिव वैदिक ऋषियों के परम आराध्य देव है । ये श्रेष्ठ धर्मोपदेशक, दिव्य चिकित्सक और अधार्मिक वासनाओं को नष्ट कर अपने उपासना करने वालों के परमहितचिन्तक हैं ।

" नमस्ते रुद्र मन्यव उतो व इषवे नमः ।
बाहुभ्यामुत ते नमः ।। "[3]

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् । अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ।। [5]

शिव अथवा रुद्र के इस उपासना मंत्र का अपना एक अलग आध्यात्मिक महत्व है । शरीर और आत्मा दोनों के संयोग से मनुष्य की स्थिति है, इसलिये दोनों के मङ्गलार्थ आत्मिक उन्नति के लिये धर्मोपदेशक कहकर औरशारीरिक अभ्युदय के लिये " दिव्य चिकित्सक " कहकर रुद्र की उपासना की गई है ।

ये रुद्र अपने उपासकों के हितचिन्तक एवं शरण में आये हुये प्राणियों

---

1. यजु0 16.3-5

यजु0 16-5

के पालनकर्त्ता है इसलिये रुद्र तत्वज्ञ वैदिक ऋषिगणों के रुद्र ही ध्येय है[1] ।

§क§ सत्वानां पतये नमः" § यजु० §

§ख§ क्षेम्याय नमः "§ यजु० §

निरुक्तकार यास्काचार्य का मत है कि आर्द्रा नक्षत्र के मेघ का नाम" रुद्र" है । यह मेघ चातुर्मास के प्रारम्भ में" रुदन्" द्रवति" गर्जन कर वर्षणकरता है । यही रुद्र के अश्रु है, जिनसे रजत § चाँदी§ उत्पन्न होता है । इसलिये रुद्रोपासक यज्ञ में ऋत्विजों को दक्षिणा में रजत दान नहीं करते है बल्कि सुवर्ण दान करते है[2] ।

ये रुद्रदेव संसार-सागर के परमपार जीवनमुक्ति स्वरूप मेंवर्तमान और अ ते मैत्र जपादि के द्वारा पापों सेरक्षा करने वाले तारक तथा उत्कृष्ट ज्ञान के द्वारा भवसागर से पार करने वाले सुदृढ - पोत है । उपासक जन इस तत्व को जानकर भवबन्धनों से रहित हो जाते है[3] ।

1· यजु० . रुद्रा० मं० सं० 20 तथा 32

2· तदैव - 32

3· श्वेताश्वतर उ० 4/15

यजुर्वेद भी इसी मत की पुष्टि करता प्रतीत होता है[1]।

" नमः प्रतारणाय चोत्तरणाय च नमः ।। "

सूर्यसदृश ज्योतिः स्वरूप होने के कारण ही द्वादश आदित्य के समान रुद्र की उपासना करने वाले द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग की अर्चना करते हैं ।

वेदशैवों का सर्वोपरि प्रधान ग्रन्थ है, जिससे शिवोपासना का शुभारम्भ प्रतीत होता है । पुरातत्त्विक दृष्टिकोण से भी इसी मत की पुष्टि होती है । सिन्धु तटवर्तिनी सभ्यता में भी शिवपूजा की विशेषता का दिग्दर्शन होता है । यहाँ पर दो तरह की शिवमूर्तियाँ मिली हैं । प्रथम मूर्ति जो मोहन जोदड़ो की मुहरों में मिलती है योगावस्था में स्थित ध्यानी शिव की है । इसमें शिव जी मध्य में विराजमान है तथा उनके चतुर्दिक पशु की आकृतियाँ हैं । सम्भवतः पशुपतिनाथ की उपाधि इन्हें इसी से मिली प्रतीत होती है, क्यों कि इस मूर्ति के चारों ओर बाघ, हाथी, गैंडा तथा भैंसा खड़े हैं । त्रिशूल की जगह इनके मस्तक पर तीन आकृतियाँ हैं । जो आगे चलकर अलग त्रिशूल का आकार धारण कर लेती है । द्वितीय मुहर में शिव के तीन मुख है, जो ब्रह्मा विष्णु तथा महेश का बोध कराते हैं ।

---

1. यजु0 16-42

यजुर्वेद संहिता के सोलहवें अध्याय में रुद्र अथवा शिव की उपासना के 66 {छाछठ} मंत्र है, इन सभी मंत्रों के देवता रुद्र है । इन मंत्रों में रुद्र की उपासना का जो वर्णन मिलता है । वह तत्वज्ञ वैदिक ऋषियों की गवेषणात्मक चिन्तन का सार प्रतीत होता है । ये रुद्र ब्रह्माण्ड रूपी सभामण्डप के सभापति हैं । वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वहितकारी, अलख, अगोचर अज, अविनाशी, अचिन्त्य समस्त विद्याओं के भण्डार सच्चिदानन्द मैं अनन्त विश्वों के नियन्ता हैं । यह सम्पूर्ण विराट सभा उनके अधीन है और[1] इसके स्वामी हैं । जो उपासक रुद्र के इस स्वरूप को जानकर उनकी उपासना करता है, वह परमपद को प्राप्त होता है ।

" नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृहतीभ्यश्च वो नमः । 24 ।।

रुद्रोपासको के रोग तथा पीडा का हरण करने वाले रुद्र ही हैं ।[2] इसी लिये वैदिक ऋषिगण यह कहते हुये कि हे रुद्र आप ब्रह्माण्ड के समस्त

---

1. यजु0 16/24
2. यजु0 16/50

पदार्थ {भूत} यानीप्राणी और अप्राणी {अण्डज, पिण्डज, स्थावर और जगक ये सभी भूत है} सबके स्वामी है, शिखा सूत्र रहित परम त्यागी तथा आकाशरूपी जटाओं को धारण करने वाले हैं आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार कीजिये औरदु:ख देने वाले रुद्रांशयुक्त पदार्थों को हमसे दूर करदीजिये।

" ये भूतानामधिपतयो विशिखास: कपर्दिन: ।
तेषां सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।। 59 ।।

उन रुद्रगणों कोप्रणाम है जिनका निवास अन्तरिक्ष अर्थात् वायु मण्डल में है और वायु गति का जिनका बाण है । वे हमारी रक्षा करें औरवांछित और दु:खदायी दुष्टों का विनाश करें । इन रुद्र को पूर्व की ओर से दसबार पश्चिम की ओर से दस बार, उत्तर, दक्षिण तथा ऊपर की ओर से दस- दस- बार- प्रणाम हो ।

" नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषव: । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दशप्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा: तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्म: ।। {यजु0 16/64}

नमोस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषव: तेभ्यो
दश प्राचीर्दश- - - - -{ यजु0 16/66}

उस रुद्रदेव को प्रणाम है जिनका निवास पृथिवी में है और अन्न अर्थात् खाद्य द्रव्य ही जिनका बाण है ।

1• यजु0 16/66

भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार यद्यपि " शिव " संहारकर्ता हैं औरश्मशान उन्हें प्रिय हैं । किन्तु आध्यात्मिक दृष्टिकोण से कल्पान्त में वे केवल " द्यावापृथिवी " का ही संहार नहीं करते वरन् उन बन्धनों का भी संहार करते हैं जो प्रत्येक आत्माओं को बाँधे रहते हैं । पारमार्थिक दृष्टिकोण से भौतिक श्मशान वास्तविक श्मशान नहीं जहाँ शव अग्निको समर्पित होते हैं, प्रत्युत् भक्तो का हृदय ही श्मशान है जो अहङ्काररूपी माया से आवृत्त होने के कारणवीरान हो गया है । ये रुद्रदेव अपने उपासकों के अहंकार अथवा माया और कर्मजला कर भस्म कर देते हैं इसीलिये इनका एक अपर नाम श्मशानवासी नटराज भी है ।

उनके चरणों में " न " नाभि में "म" स्कन्धदेश में "शि" मुखमण्डल में "व" और मस्तक में "य" है ।[1] डमरुवाला हाथ " श " फैला हुआ हाथ " व " अभयहस्त " य " अग्निवाला हाथ "न" और उपस्मारपुरूष को दबाकर रखने वाला पैर (म) है । पन्च अक्षरों के अर्थ क्रमशः ईश्वर, शक्ति, आत्मा, तिरोभाव और मल है । यदि इन पन्चसुन्दर अक्षरों का उपासक जन ध्यान करें तो आत्मा उस जगत् में पहुँच जाती है जहाँ न प्रकाश है और न अन्धकार ।[2]

---

1. उपमाइ विलक्कम्
मिलग्रान्थ पद 33-35

2. श्वेता4/18 तथा ऋग्वेद 10-129-2

"यदा तमस्तन्न दिवा नरात्रि

नं सन्न चासच्छिव एव केवल: ।।

अत: स्पष्ट है कि वैदिक तथा परवर्ती भारतीय संस्कृति में रुद्र की उपासना ऐहिक और पारलौकिक अभ्युदय का हेतु है । उपासना द्वारा शिव का साक्षात्कार करना व्यष्टि भाव को लांघकर उंचा उठना है । इस व्यष्टि भाव के अन्दर उपाधि युक्त एवं व्यावहारिक जीवन का ज्ञान रहता है जो अज्ञान एवं दु:ख का कारण है । शक्ति के चरणों में आत्म-समर्पण करना ही शिव के साक्षात्कार का कारण माना गया है । यथार्थत: आत्मसमर्पण का अर्थ है देहाभिमान और अहंबुद्धि से ऊपर उठकर ध्येय वस्तु की प्राप्ति में लग जाना जब साधक इस अवस्था में पहुंच जाता है तो वह शिव स्वरूप हो जाता है । उसके अनादि जन्म मरण का बीज कारण देह एवं तत्सम्भूत सूक्ष्म, स्थूल देहों के पुनरागमन का निरोध हो जाता है । ऐसी स्थिति के उत्पन्न होते ही वह अखिलात्मा के साथ एकात्मता प्राप्त कर महेश्वर रूप में पूजित हो जाता है ।

"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"

1• बृहदारण्यक- 6-3



चतुर्थोऽध्यायः

वैदिक वाङ्मय में निहित सृष्टि प्रक्रिया
तथा
ब्रह्मा विष्णु और रुद्र की एकात्मता

इस सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ ? सृष्टि के पूर्व क्या था ? इसका सर्जक पालक और धारक कौन है ? इस भौतिक जगत का विकास कैसे हुआ ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो विद्वानों के वैचारिक मतभेद के कारण रहे हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में जितना गहन और तात्त्विक चिन्तन प्राचीन भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। दार्शनिक प्रतिभा के धनी ऋषियों द्वारा अपनी दिव्य मेधा के बल पर सृष्टि के उस मूल बीज को खोजने का प्रयास किया गया जिसे आदि तत्त्व या कहा जाता है।

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि विषयक जिज्ञासा का प्रथम संकेत मिलता है जिसके प्रारम्भिक तीन मंत्रों में सृष्टि से पूर्व की अवस्था का चित्रण किया गया है[1]। इस सूक्त के अनुसार उस समय न सत् था न असत् था न अन्तरिक्ष था और न ही उसके ऊपर आकाश। तब मृत्यु नहीं थी, अमृत भी नहीं था। उस समय केवल वह एक ही था जो स्वधा (अर्थात् ब्रह्मा की माया) के द्वारा विना वायु के श्वास ले रहा था। उस समय वही समष्टि स्वरूप सूत्रात्मा श्वास, प्रश्वास रूप कल्प सृष्टि और प्रलय आदि व्यवहार से रहित शान्त समुद्र के समान "रुत्" शब्द वाच्य ऋत्-स्वयं प्रकाशी चेतन और "द्र" शब्द वाच्य अनन्ताकाशरूपिणी नित्यज्ञानशक्ति उमा के साथ एक अखण्ड, परिपूर्ण रुद्र अस्तित्व रूप क्रियावाला था।

---

1. ऋ0 10.129.2

उस रुद्र की अनन्तशक्ति के किसी एक भाग में माया बीजरूप से स्थित थी । जैसे वटवृक्ष की शक्ति अपनी उत्पत्ति के पूर्व वट बीज में रहती है वैसे ही अव्यक्त शक्ति उमा में थी । बीजशक्ति नित्य उमा से भिन्न नहीं है, क्योंकि उमा तो आगन्तुक अवस्थारूप माया से पृथक है ।

उमा नित्यज्ञान स्वरूप है । ज्ञान का रूप नही तो चेतनका रूप कहाँ से होगा । इसलिये रुद्र ज्ञान स्वरूप निराकार है और अपरिणामिनी उमा के परिचय को देने वाले परिणामिनी बीजशक्ति है । भारतीय आस्तिक परम्परा के मत में यदि इस बीज की सत्ता अनादिसान्त प्रवाह से न होती तो जगत् रूप वृक्ष की उत्पत्ति और प्रलय कैसे होता तथा अनन्त शक्ति सम्पन्न रुद्रदेव की ऐश्वर्य शालिता का गुणगान कौन करता । ज्ञान स्वरूप का परिचय कराने वाली यही बीज शक्ति है । जैसे अग्नि से उसकी दाह शक्ति अलग नहीं होती उसी तरह बीज सत्ता से अपरिणामिनी शक्ति पृथक् नहीं होती[1] ।

ऋग्वेद के पुरुष सुक्त में पुरुष की हवि से सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन मिलता है । इस सृष्टि का सम्पादन याग देवों ने किया था । इस सुक्त में अद्वैत वेदान्त की उस मुल भावना का बीज दृष्टिगोचर होता है जिसके अनुसार यह सब कुछ ब्रह्म ही है । सर्वं खल्विदं ब्रह्म" सृष्टि कर्ता

---

1. ऋ0 10.129.1-7

उस परमपुरुष की महिमा का वर्णन करते हुये कहा गया है कि "तीन पादों सहित वह पुरुष ऊपर उठा हुआ है, उसका एक पाद यहाँ (संसार रूप में) है। उसके पश्चात् वह खाने वाले चेतन तथा न खाने वाले अचेतन को लक्ष्य करके अनेक रूपों में व्याप्त हो जाता है। [1]

"यस्य त्री पूर्णा मधुना पादान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति"

(ऋ०)

आचार्य सायण के मत में वह (अर्थात् परम पुरुष) अज्ञान के कार्य-भूत संसार के गुण- दोषों से रहित हो उत्कृष्ट रूप में स्थित है। उसका पाद अथवा लेश यहाँ माया में सृष्टि एवं संहार के रूप में बार- बार आता है और माया में आने के बाद वह पुनः देव, मनुष्य तिर्यग् आदि विविध रूपों में होता हुआ चेतन एवं अचेतन को लक्ष्य कर व्याप्त हो जाता है। [2]

"त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि।।" (ऋ०)

ऋग्वेद में विश्वकर्मा को कहे गये एक सूक्त में एक प्रश्न किया गया है कि जब सृष्टि के पूर्व जल ही था तो जलों ने गर्भ रूप में प्रथमतः किसे

---

1. ऋ० 1·154·4

2 ऋ० 10·90·4

धारण किया जहाँ सभी देवता एक साथ दीखपड़े थे ।

ॐ "स्विद्गर्भ प्रथमं दध्र आपो
यत्र देवा: समपश्यन्त विश्वे ।।"

इस प्रश्न का समाधान करते हुये बताया गया है कि "उस अज तत्त्व (परमात्मा) की नाभि में एक अंडा था जिसमें समस्त प्राणी सूक्ष्म रूप में निवास करते थे । उस स्वसृष्ट जल में शयन करते हुये जन्मरहित ब्रह्मा की नाभि में ब्रह्माण्ड स्थापित था । यहीइस निखिल जगत् का आदिम तत्त्व था ।

"तमिदगर्भं प्रथमं दध्र आपो - यत्र देवा समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्यनाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थु ।।(ऋ0)

ऋग्वेदस्थित विश्वकर्मा सूक्त में जगत् के मूल उपादान के विषय में यह प्रश्न किया गया कि वह कौन सा वन था ? और वह कौन सा वृक्ष था । जिसे काट छीलकर द्यावापृथिवी का निर्माण किया गया ।

"किं स्विद् वनं क उ वृक्ष आस ।
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षु: ।"

यही मंत्र ऋग्वेद के विश्वेदेवा को सम्बोधित एक सूक्त में भी आया है । यद्यपि उपादान विषयक इस जिज्ञासा का समाधान ऋग्वेद में नहीं दिखाई पड़ता किन्तु वैदिक साहित्य में विशेषत: ब्राह्मण ग्रन्थों और

आरण्यको में इस प्रश्न का उत्तर अत्यन्त तात्त्विक और दार्शनिक ढंग से दिया गया है। "ब्रह्म ही वह वन था, ब्रह्म ही वह वृक्ष था जिसको काटछीलकर द्यावापृथिवी का निर्माण किया गया।

"ब्रह्म तद्वनं ब्रह्म स उ वृक्ष आस,
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।।"

सायणाचार्य ने भी उक्त ऋचा के अपने भाष्य में "ब्रह्म स वृक्ष आसीत्" "इत्यादिकमुत्तरम्" लिखकर इसी तथ्य की पुष्टि की है।

वस्तुतः वेदों में वर्णित यह सृष्टि प्रक्रिया ब्राह्मणग्रन्थों और आरण्यको में वर्णित उस दार्शनिक सृष्टि क्रम का आधार है जिसका विकास उपनिषदों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। ब्राह्मण और आरण्यक साहित्य में सृष्टि तत्व का जो वर्णन उपलब्ध होता है, वह उस गहन दार्शनिक चिन्तन का परिणाम है, जिसका मूल बीज वेदों में विशेषतः ऋग्वेद में दिखायी पड़ता है।

ऋग्वेद की ऐतरेय शाखा के ऐतरेय आरण्यक तथा यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के तैत्तिरीय आरण्यक में सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम तथा मानव शरीर का महत्व वर्णित है तथा इस बात का भी संकेत दिया गया है कि जीवात्मा इस शरीर में परमात्मा को जानकर कृतकृत्य हो जाता है। इस आरण्यक में परमात्मा के सृष्टिरचना विषयक संकल्प का वर्णन करते

हुये यह कहा गया है कि " इस जड़ चेतनमय प्रत्यक्ष जगत् के इसरूप में प्रकट होने से पूर्व कारणावस्था में एकमात्र वह परमेश्वर ही था । जगत् की सृष्टि से पूर्व उस अवस्था में भिन्न भिन्न नामरूपों की अभिव्यक्तिनहीं थी । सृष्टि के आदि में पुरुष ने यह विचार किया कि " मैं एक से अनेक हो जाऊँ "और लोकों की रचना करूँ[1] ।

इस विचार के उत्पन्न होने पर उस परमेश्वर ने अम्भ:, मरीचि मर और जल इन लोकों की रचना किया । द्यु लोक के ऊपर जो लोक है जिन्हें मह:, जन: तप: औरसत्य आदि नामों से जाना जाता है और जिसका आधार द्युलोक है उसे अम्भ: नाम से जाना जाता है । उसके नीच स्थित अन्तरिक्ष लोक को अथवा जो सूर्य, चन्द्र आदि किरणों वाले लोक विशेष हैं उसे" मरीचि " नाम से सम्बोधित किया गया है । उसके नीचे पृथिवी लोक को " मर " नाम से जाना जाता है तथा उसके नीचे जो पातालादि लोक हैं उन्हें ही " आप:" नाम से अभिहित किया गया है । लोक रचनान्तर उस परमात्मा ने पुन: लोकों के रक्षार्थ लोकपालों का सृजन किया[2] ।

1• ऐ० आ०8/2

2• ऐ०आ० 2•4•1 तथा ऐ०आ० 3•4•2

"अदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं
मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः ।।" {ऐ० आ०}

इस विराट् पुरुष को उत्पन्न कर परमात्मा ने संकल्परूप तप किया। तब उस तप के परिणाम स्वरूप विराट्पुरुष के शरीर में सर्वप्रथम उसी प्रकार मुखछिद्र बना जैसे अण्डा फूटता है । मुख से वाक् इन्द्रिय उत्पन्न हुई और वागिन्द्रिय से उसका अधिष्ठातृदेव अग्नि उत्पन्न हुआ । इसी प्रकार उस विराट् पुरुष के विभिन्न अवयवों से विभिन्न शक्तियाँ तथा देवताओं का उद्भव हुआ[1] ।

परमात्मा द्वारा सृजित इन्द्रियों के अधिष्ठातृअग्नि आदि सब देवता संसार रूपी महान समुद्र में आ पड़े । अर्थात् विराट् पुरुष के शरीर से उत्पन्न होने के बाद उन्हें कोई ऐसा निर्दिष्ट स्थान नहीं मिला जिससे वे उस समष्टि शरीर में स्थित रह सके । यहाँ इस ब्राह्मण में संसार को अर्णव कहकर यह बताया गया है कि समुद्र की तरह इस संसार के पार पहुँचना अत्यन्त कठिन है, केवल तत्वज्ञान ही इस संसार रूपी समुद्र से मानव को पार पहुँचाने में समर्थ है । परमात्मा ने देवों के उससमुदाय को बुभुक्षा और पिपासा से संयुक्त कर दिया । अतः भूख और प्यास से पीड़ित होकर वे

---

1. ऐ० 2·4·1

देवगण सृष्टिकर्ता परमेश्वर से बोले कि " हमारे लिये एकऐसे स्थान की व्यवस्था कीजिये जिसमें रहकर हम अन्न भक्षण कर सके । गाय और अश्व के शरीर यथेष्ठ न होने के कारण उस . . . परमेश्वर ने विवेक सम्पन्न पुरूष को उत्पन्न किया अत: मानव शरीर उस परमात्मा की सुन्दर तथा श्रेष्ठ रचना है । सम्भवत: इसीलिए इसे देव दुर्लभ माना गया है । मानव शरीर के उत्पन्न होने के पश्चात् सभी देवों ने अपने अपने आश्रयों से प्रवेश किया । वायु पे प्राण होकर नासिका में प्रवेश किया । अग्नि ने वाक् होकर मुख में प्रवेश किया, इसी प्रकार अन्य देवों ने भी मानव शरीर में प्रवेश किया । जैसे घट पटादि पदार्थ भूमि से पैदा हो पुन: विनाश के समय उसी में लीन हो जाते हैं औरविद्यमान अवस्था में भी अपने कारण रूप पृथिवी पर आश्रित रहते हैं । उसी प्रकार वाणी से अग्नि प्रथमत: उत्पन्न होती है तथा पुन: वही अग्नि वाणीरूप होकर वाणी के स्थान मुख में प्रवेश करती है न्याय दर्शन भी इसी मत की पुष्टि करता है कि समवायि कारण कार्य से कभी पृथक् नहीं होता है।" भूख और प्यास के लिये परमेश्वर ने पृथक स्थान की व्यवस्था नहीं की प्रत्युत् देवों के आहार में ही इन दोनों का भागीदार बना दिया । सम्भवत: इसीलिये जब किसी भी देवता को देने के लिये इन्द्रियों द्वारा विषय भोग ग्रहण किये जाते हैं, उस देवता के भाग में क्षुधा और पिपासा का भी स्थान होता है ।

ऋग्वेद की ऐतरेय शाखा के ऐतरेय ब्राह्मण तथा ऐतरेय आरण्यक में पुरूष को ही सृष्टि का मूल कारण बताया गया है । पुरूष को अन्नमय तथा

हिरण्यमय भी कहा गया है । पुरूष की श्रेष्ठता का दिग्दर्शन इस आरण्यक में अत्यन्त तात्त्विक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । इस आरण्यक के मत में पुरूष की वाणी से ही पृथ्वी और अग्नि की उत्पत्ति हुई श्रोत्र द्वारा दिशाओं और चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई । नासिका के द्वारा अन्तरिक्ष और वायु की उत्पत्ति हुई तथा पुरूष के मन द्वारा जल और वरूण की उत्पत्ति हुई ।[1]

यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के तैत्तिरीय ब्राह्मण तैत्तिरीयारण्यक तथा तैत्तिरीयोपनिषद् में भी इसी मत की पुष्टि की गई है ।[2]

1• " स इरामयो यदीरामयस्तस्माद्दिरण्यमय: " ﴾ ऐ0आ0 ﴿

2• स वा एष पुरूषोऽन्नरसमय:" ﴾ तै0 आ0 ﴿

ऐतरेयारण्यक के स्वभाष्य में सायणाचार्य कहते हैं कि-

" इरा शब्द: अन्नवाची । स: पुरूष: शिर: पाण्डयादियुक्तो-ऽन्नरसमय: । अत एव तैत्तिरीया आमनन्ति स वा एष पुरूषोऽन्नरसमय:।। "

1• ऐ0 आ0 2•1•3 तथा ऐ0आ0 2•4•3

2• तै0 आ0 8/1

लोक तथा लोकपालों की सृष्टि के अनन्तर परमात्मा ने पन्चमहाभूतो में से प्रधान जल में से अन्न की उत्पत्ति किया । अन्नोत्पत्ति होते ही वाक् आदि इन्द्रियाँ अन्न की ओर अग्रसर हुई परन्तु अन्न उनके द्वारा ग्रहण नहीं किया गया वरन् केवल अपान के द्वारा ही अन्न ग्रहण किया गया क्यों कि वायु ही अन्न को धारण करता है । यही वायु अन्न के द्वारा मानव जीवन का रक्षक होने से साक्षात् आयु है ।

लोक तथा लोकपालों और उनके लिये अन्नोत्पत्ति के अनन्तर परमेश्वर ने पुन: यह विचार किया कि यह मानवरूप पुरुष मेरे विना कैसे रहेगा, यदि बिना औरमेरे सहयोग के ही सभी इन्द्रियाँ अपने कार्यों का सम्पादन कर लेगी, तो फिर मेरा क्या उपयोग रहेगा । ऐतरेय आरण्यक में परमात्मा की इस मन: स्थिति का स्पष्ट संकेत मिलता है ।[1]

" स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति ।। "

यह विचार आते ही उस परमात्मा ने मानव शरीर की सीमा अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र को चीरकर प्रवेश किया जिस द्वार से वह परमात्मा प्रविष्ट हुआ उसे " विद्रति " नामक द्वार के नाम से जाना जाता है । यह द्वार आनन्द स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति कराने वाला है । आचार्य शङ्कर

---

1. ऐ०आ० 2·4·3

अपने ऐतरेयोपनिषद् भाष्य में इसी मत की पुष्टि करते हैं । उनके अनुसार परमात्मा के तीन स्वप्न हैं । प्रथम स्वप्न जागृत काल में इन्द्रियों का स्थान दक्षिण नेत्र द्वितीय स्वप्नकाल में अन्तर्मन और सुषुप्ति में हृदयाकाश तथा पितृदेह, मातृगर्भाशय, अपना शरीर ये तीन आवसथ है तथा जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीन स्वप्न हैं ।

"तस्यैव सृष्ट्वा प्रविष्टस्य जीवेनात्मना राज्ञ इव पुरं त्रय आवसथा: । जागरित काल इन्द्रियस्थाने दक्षिणं चक्षु:, स्वप्नकाले अन्तर्मन:, सुषुप्तिकालेहृदयाकाश इत्येतत् । वक्ष्माणा वा त्रय आवसथा: पितृ शरीरं मातृगर्भाशय: स्वं च शरीरमिति । त्रय: स्वप्ना: जागृतस्वप्नसुषुप्त्याख्या ।" [ऐ० उ० शा० भा०]

आचार्य सायण ने भी ब्रह्मोपनिषद् के आधार पर नेत्र कण्ठ और हृदय तीन स्थानों का उल्लेख किया है । वस्तुत: परमेश्वर के उपलब्धि के तीन स्थान है तथा उसके स्वप्न भी तीन ही है । प्रथम तो हृदयाकाश उसकी उपलब्धि का स्थान है । दूसरा विशुद्ध आकाश रूप परमात्मा है जिसे सत्यलोक गोलोक, ब्रह्मलोक, साकेतलोक आदि नामों से जाना जाता है। तीसरा यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है । इस जगत की जो स्थूल, सूक्ष्म, कारण रूप तीन अवस्थाएं है, वे ही उस जगन्नियन्ता के तीनस्वप्न हैं ।

"नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समादिशेत् सुषुप्तं हृदयस्थं तु" ।

मानव रूप में उत्पन्न हुये इस पुरुष ने भौतिक जगत की रचना को देखकर विचार किया कि " इस अद्भुत् जगत् का सर्जक कौन है क्योंकि यह मेरी की हुई रचना तो हो नहीं सकती । अतः कार्य होने के कारण इसका कोई कर्त्ता तो होगा ही । इस विचारोत्पन्न के साथ ही उस पुरुष ने अपने हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान विराट पुरुष को ही इस सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त परब्रह्म के रूप में प्रत्यक्ष किया । इस आरण्यक में परमात्मा की महिमा तथा मानव शरीर के महत्व का दिग्दर्शन कराते हुये सृष्टि तत्त्व का अत्यन्त प्रभावोत्पादक वर्णन किया गया है ।

तत्त्वज्ञ वैदिक ऋषियों के मत में " संसारी जीव सर्वप्रथम पुरुष शरीर में ही गर्भ रूप से रहता है । पुरुष शरीर में जोवीर्य है, वह पुरुष के सम्पूर्ण अङ्गों से उत्पन्न हुआ सार है, तेज है । पुरुष उस आत्मभूत तेज का स्वशरीर में ही पोषण करता है । फिर वही तेज जब स्त्री के गर्भाशय में स्थापित करता है । तब इसे गर्भ रूप में उत्पन्न करता है । यह इसका प्रथम जन्म है ।

" पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति यदेतद्रेतः ।
तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः संभूतमात्मन्येवमात्मानं बिभर्ति
तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैन ज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ।। "

1• ऐ0 आ0 1•154•6

अपने पति के आत्मस्वरूप गर्भ का पोषण स्त्री करती है । पुरूष गर्भ रूप से पैदा हुये [redacted] उस कुमार को प्रसव के अनन्तर जात कर्मादि संस्कारों से अभ्युदयशील बनाता है । जन्म के बाद कुमार का जो संस्कार पुरूष करता है, प्रतीक रूप से मानो वह इन लोकों की वृद्धि से अपना ही संस्कार करता है, क्योंकि इसी विधि से लोकों की वृद्धि होती है । यही उसका द्वितीय जन्म है ।[1]

" तत्स्त्रिया आत्मभूतं गच्छति "

पिता का ही आत्मस्वरूप पुत्र जब कार्य करने योग्य हो जाता है तब जितने भी वैदिक, लौकिक शुभ कर्म है, उन सभी का प्रतिनिधि वह पुत्र को बना देता है और गृहस्थ का पूरा दायित्व छोड़कर स्वयं कृतकृत्य हो जाता है तथा शरीर की आयुपूर्ण होने पर जब पिता पुन: जन्म लेता है तब उसे तृतीय जन्म कहा जाता है । इस तरह जन्म जन्मान्तर की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है ।

इस जगत में उत्पन्न हुआ मानव अवस्था की तीनों अभिव्यक्तियों के क्रम से जन्म- मरण परम्परापर आरूढ़ हुआ जिस समय किसी भी अवस्था में अपनी आत्मा को जान लेता है, वह सम्पूर्ण पाशों से मुक्त हो कर धन्य हो जाता है । यहाँ यह तथ्यद्रष्टव्य है कि सृष्टि वर्णन प्रसंङ्ग मे ऋग्वेद, ब्राह्मणग्रन्थों और आरण्यकों में जो प्रसंग मिलते हैं उनसे यह प्रतीत

---

1. ऐ०आ० 2.5.।

होता है कि ब्रह्मा , विष्णु और रुद्र ही इस सृष्टि के नियामक हैं । सृष्टि के संचालन हेतु ये स्थूलत: भिन्न हैं लेकिन सूक्ष्मत: ये एक ही हैं । यजुर्वेद में रुद्र को मोक्ष अर्थात् तारने वाला ब्रह्म कहा गया है ।[1]

" नमस्ताराय " (यजु०)

भगवान् शङ्कराचार्य अपने ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य में इसी मत की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं ।

" तारयति संसारमिति तार: । तार: प्रणव: तद्रूपाय नम: । संसारसागरादुत्तारकं ब्रह्म ।। "

अर्थात् संसार को तारने वाले रुद्र को नमस्कार है । गीता[2] भी इसी का प्रतिपादन करती है ।

" तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् । "

सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को वेदीरूपी वाणी का उपदेश करने वाले रुद्र ही हैं[3]। वही अपनी शक्ति के साथ सृष्टि की पूर्वावस्था में विद्यमान था[4]।

1. यजु० 16/40
2. गीता 12/7
3. यजु० 16/34 तथा श्वेता 6/18, यजु० 16/41
4. ऋ० 3.17.4

केवल्योपनिषद् के अनुसार- अग्नि, विद्युत् और सूर्य रूप नेत्रों वाला रुद्र नीलकण्ठ और तुरीयस्वरूप है[1]। विश्व रचना के पूर्व बीज शक्ति चेतन के जितने स्वरूप में स्फुरित होती है उसका उतना ही भाग नीलकण्ठ होता है, क्योंकि अधिष्ठित मायाजल को मायिक ने अधिष्ठान रूप से पान किया था[2]। यहाँ जल का नाम ही विष है और माया, अव्यक्त शक्ति का नाम सलिल है।

ऐतरेय आरण्यक के षष्ठ अध्याय में आत्मा के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुये प्रज्ञान को ही ब्रह्म कहा गया है और यह बताया गया है कि मानव इस प्रज्ञान स्वरूप परमात्मा की शक्ति के द्वारा ही स्व- स्व कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। यह निखिल विश्व उस परमतत्त्व की शक्ति से ही ज्ञानशक्तियुक्त है। इस प्रज्ञानमय ब्रह्म का ज्ञान होते ही मानव लोक से ऊपर उठकर अर्थात् शरीर का त्याग करके सभी इच्छाओं को प्राप्त करके स्वर्ग लोक में अमृतत्त्व को प्राप्त करता है।

"स एतेन प्रज्ञेनात्मनास्माँल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे
लोके सर्वान् कामानाप्त्वामृत: समभवत् ।।"[3]

---

1. केo उo-7
2. ऋo 10•87•18
3. ऐoआo 2•6•1

वैदिक आङ्•मय में सृष्टि प्रक्रिया का जो वर्णन मिलता है। उसके अनु.ार -" मानव ही ृष्टि का उच्चतम मूल्य है। सर्वप्रथम पन्च-भूतरूप आत्मा रहती है उसमें विभाजन होता है - अन्न और आनन्द औषधि तथा वनस्पति अन्न है और प्राणी आनन्द। प्राणभूतों में मानव भोक्ता है और अन्य प्राणी इसके अन्न हैं। इसी विकास को ऐ0 ब्राह्मण में आत्मा का "आविस्तराम्" अर्थात् अधिक आविर्भाव कहा गया है। औषधी तथा वनस्पति आत्मा के आविर्भाव है, क्यों कि अन्य वस्तुओं की तरह उसमें न केवल रस है अपितु चित्त नामक एक अधिक गुण भी रहता है। सृष्टि के इस क्रम में मानव अन्य प्राणियों की अपेक्षा उस परमात्मा का उच्च कोटि का आविर्भाव है, क्यों कि उसमें एक अन्य महान गुण प्रज्ञा है। उस प्रज्ञा शक्ति से युक्त होने के कारण ही तो मानव विज्ञात और ज्ञात को कह देता है। भुत और भविष्य का ज्ञान रखता है, स्वर्ग नरक को पहचानता है तथा मर्त्यहोकर भी अमरता की कामना रखता है। परमात्मा द्वारा सृजित अन्य प्राणी यथा पशु पक्षी आदि मात्रक्षुधा और पिपासा कोही जानते हैं, योग्य अयोग्य तथा भूत और भविष्य का निर्धारण वे नहीं कर सकते। इस दृष्टि से मानव उस जगन्नियन्ता की विलक्षण रचना है। इस आरण्यक में मानव की उपमा इस अतर्पणीय अभिलाषाओं के कारण आकाश से दी गई है, क्यो कि जोकुछ भी वह प्राप्त कर लेता है, उससे आगे बढ़ते रहने कीउसकी कामना बलवती रहती है, यदि इसे गगन भी प्राप्त हो जाय, तो भी वहसंतुष्ट नहीं होगा।

इस प्रकार मानव को ही आत्मा का सर्वोत्तम उत्कृष्ट तथा पुण्यमय श्रेयरूप बताकर कहा गया है कि " मानव के उत्कर्ष का प्रधान चिह्न है प्रज्ञा, और प्रज्ञा ही आत्मा का उपास्य एवं श्रेय रूप है । सृष्टि के इस विधान को जो मानव जानता है वह मुक्त हो जाता है[1] ।

" पुरुषे त्वेवाविस्तरामात्मा स हि प्रज्ञानेन संपन्नतमो विज्ञातं वदति विज्ञातं पश्यति वेद श्वस्तनं वेद लोकालोकौ मर्त्येनामृतमीप्सत्येवं सम्पन्नः ।। " ऐ० आ० ।

निष्कर्षतः ऋग्वेद तथा उससे सम्बद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों तथा आरण्यकों में यह कहा गया है कि आदि में आत्मा ही एकान्तसत्ता थी । इसके अतिरिक्त उस समय दूसरी कोई सचेतन सत्ता नहीं थी । आत्मा ने सृष्टि सृजन की इच्छा किया । इस पर उसने स्वर्गोपरि अम्भोलोक दिव्य तेजस् पूर्ण स्वर्ग लोक, मृत्यु लोक और जलमय पाताल लोक इन चार लोकों की सृष्टि किया । इसीलिये स्वर्ग और पृथिवी ऊपर नीचे दोनों ओर से जलमय प्रदेश से परिवेष्टित हैं । इन लोकों की सृष्टि के अनन्तर आत्मा ने विराट् पुरुष का चिन्तन किया और इस चिन्तन के फलस्वरूप सर्वप्रथम इन्द्रियों का सृजन हुआ । इसके अनन्तर इन्द्रियों के विहित व्यापारों और उनके सांगतिक अधिष्ठाता देवता अथवा लोकपालों का निर्माण हुआ लोकपालों के अनन्तर

---

1. ऐ०आ० 2·3·2तथा ऐ०आ० 2·2·2

शरीर का निर्माण हुआ और उसी से वाणी प्रकट हुयी । वाणी से अग्नि तथा नासिका से निश्वास और श्वास से जीवन पालासु की रचना हुई । इसी प्रकार क्रमशः नेत्र, श्रवण(कर्ण) की रचना हुई ।

वस्तुतः सृष्टिसत्ता के ये विविध उपादान इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि" भिन्न - भिन्न इन्द्रिय व्यापार अन्तर्माध्यमिक विराट पुरूष की व्यष्टि प्रकृति का अनुशीलन करते हैं । अपनी उत्पत्ति के पश्चात् अग्नि, वायु, सूर्य, दिशा आदि व्यष्टि- सृष्टि के बाह्य उपादानों के कारणभूत, वाणी, श्वास, दृष्टि, श्रवण आदि व्यापारों के सृष्टि के पूर्व हीपुरूष की मुख, नासिका, पुट, नेत्र श्रवण आदि इन्द्रियों का विधान हो चुका था । इसके पश्चात् ही आत्मा से क्षुधा और तृषा नेअपने लिये सृष्टि में स्थान देने का निवेदन किया था । आत्मा नेकहा कि वह इनके लिये स्वयं देवों में स्थान देगी और इस प्रकार उसने उन्हें देवों का सहयोगी बना दिया । यही कारण है कि जहाँ कहीं देवों को आहुति दी जाती है क्षुधा और तृषा का अंश उन्हें प्रदान किया जाता है । इन सभी का सृजन कर आत्मा ने उनके लिये अन्न रूप पदार्थ की रचना की । इसके पश्चात् आत्मा ने मानव शरीर में प्राण की सृष्टि की । उसने विचार किया कि मैं इस मानव शरीर में किस प्रकार करूँ क्यों कि मेरे बिना इस शरीर का अस्तित्व कैसे रहेगा । यह विचार आते ही " आत्मा " ने सीमान्त को खोला और उसमें प्रविष्ट हो गयी । इसलिये इसे विभाजन द्वार या आनन्द स्थान भी कहते हैं । यही वही द्वार है जहाँ से स्त्रियाँ अपनी

माँ काढ़ती है । यह वही स्थान है जहाँ बच्चों के मस्तक में छिद्र होता है । यह वही स्थान है जहाँ सन्यासी की मृत्युपरान्त उसके प्रतिबद्ध जीव के मुक्ति के लिये एक नारियल टूटता है । इस आत्मा के शरीर में प्रविष्ट होते ही जीवात्मा अपने चारों ओर प्रत्येक पदार्थ को देखने लगी कि क्या वे अपने से भिन्न किसी अन्य पदार्थ की सत्ता सूचित करते हैं, किन्तु उसने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि एक ब्रह्म ही सर्वत्र है । यही कारण है कि जीव ने ब्रह्म को सर्वत्र व्याप्त देखा । इस प्रकार सृष्टि प्रक्रिया का कथन करके इस ब्राह्मण ग्रन्थ में बताया गया है कि इस जीव और ब्रह्म में परतत्व मूलक तादात्म्य है।[1] श्रीमद्भागवत् महापुराण में प्रायः इसी प्रक्रिया से सृष्टि तत्व का वर्णन मिलता है।[2]

यजुर्वेद तथा उससे सम्बद्ध ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों में हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) को ही सृष्टि का मूल तत्व कहा गया है । शतपथ ब्राह्मण तथा बृहदारण्यक में तथ्यों के आधार पर सृष्टि के उद्भव सम्बन्धी सिद्धान्तों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है पौरुषेय और अपौरुषेय । यद्यपि उनका पर्यवसान अन्त में उस एक ही मूल तत्व जिसे परब्रह्म कहा गया है उसी में हो जाता है । अपौरुषेय विभाग के अन्तर्गत ऐसे सिद्धान्त आ जाते

---

1. ऐत०आ० पृष्ठ सं० 277 ऐत० ब्रा० 2·6·4
   श०ब्रा० 37·6
2. श्रीमद्भागवत महापुराण । भाग पृ० सं० 192-193

हैं जो पञ्चमहाभूतों अर्थात् जल, वायु, अग्नि, आकाश, पृथिवी को वस्तु जगत् का परमतत्व मानते हैं । अथवा जो असत् सत् याऐसी ही सूक्ष्म कल्पनाओं को सम्पूर्ण वस्तुओं का मूल मानते हैं । इसके विपरीत पौरुषेय विभाग के अन्तर्गत ऐसे सिद्धान्त आ जाते हैं, जो सृष्टि निर्माण प्रक्रिया को आत्मा अथवा परमात्मा के आधारपर सिद्ध करना चाहते हैं और विविध रूपों में सृष्टि उत्पत्ति के द्वैत तत्त्व मूलक अथवा उद्गम मूलक अथवा परम-तात्त्विक ईश्वर मूलक पक्ष का प्रतिपादनकरते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण तथा वृहदारण्यक के अनुसार इससंसार मण्डल में मनादि की उत्पत्ति के पूर्वयहाँ नामरूपात्मक कुछ भी नहीं था, यह सब क्षुधारूपमृत्यु से आवृत्त था, क्योंकि क्षुधा ही तो मृत्यु है । उसने मन को इसलिये बनाया कि " मैं मन सेयुक्त हो जाऊँ । उसने अर्चन करते हुये आचरण किया । अतः उसके अर्चन करने सेपूजा का अङ्गभूत रसात्मक जल उत्पन्न हुआ[1] ।

" नैवेह किं चनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत् ।

अशनाययाऽशनाया हि मृत्युस्तन्मनोऽकुरुतात्मन्वी स्यामिति । सोऽर्चन्नचरत्तस्यार्चत आपोऽजायन्तार्चते वै मेकमभूदिति तदेवार्कस्यार्कत्वं क ह वा अस्मै भवति य एवमेतदर्कस्यार्कत्वं वेद ।। " (वृ० आ०)

1• वृ० आ० उ० शा० भा० पृ० 47

प्रश्न उठता है कि जब सृष्टि से पूर्व सभी कुछ मृत्यु से ही आवृत्त था तो वह किस स्वरूपवाली मृत्यु थी । इसका उत्तर देते हुये इस आरण्यक ग्रन्थ में बताया गया है कि" अशनाया रूप से । क्यों कि अशनाया मृत्यु है । " हि" शब्द से श्रुति प्रसिद्ध हेतु का बोध होता है । जो भी भोजन की इच्छा करता है, वह अशनाया के अनन्तर ही जीव हत्या करता है, वह अशनाया के अनन्तर ही जीव हत्या करता है । इसलिये अशनाया शब्द से मृत्यु लक्षित होती है । इसी से" अशनाया "हि" श्रुति भी कहती है । अपने वृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य में आचार्य शङ्कर इसी मत की पुष्टि करते हैं ।

" अशनाया हि मृत्युः । हि शब्देन प्रसिद्धं हेतुमवद्योतयति । यो ह्यशितुमिच्छति सोऽशनायानन्तरमेव हन्ति जन्तून् । तेनासावशनायया लक्ष्यते । मृत्युरित्यशनाया हीत्याह ।।"

वस्तुतः यहा" अशनाया समष्टि बुद्धि तादात्म्यापन्न सूत्रात्मा का धर्म है, अतः बुद्धि में स्थित वह सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ ही मृत्यु है । इसलिये सृष्टि से पूर्व यह सभी कुछ मृत्यु से आवृत था । जिस प्रकार पिण्डावस्था रूप मृत्तिका के घटादि आवृत्त हैं, उसी प्रकार हिरण्यगर्भ रूप मृत्यु से जगत् व्याप्त था । सर्वप्रथम उसने मन बनाया ताकि मैं आत्मवान हो जाऊँ । अर्थात् मैं इस आत्मा स्यानि मन से मनस्वी हो जाऊँ । अपने वृहदारण्यकोपनिषद् के भाष्य में शङ्कराचार्य जी भी कहते हैं कि-

बृ० आ० उ० शा० भा० पृ० - 47

" केनाभिप्रायेण मनोऽकरोदिति । उच्यते-

" आत्मन्व्यात्मवान्स्यां भवेयम् । अहमनेनऽऽत्मना मनसा मनस्वी स्यामित्यभिप्राय: ।।"

मन से मनोयुक्त होकरप्रजापति ने अर्चन करते हुये अपने ही प्रति " मैं कृतार्थ हूँ " इस प्रकारआचरण किया, जिसके फलस्वरूप पूजा का अङ्गभूत द्रवात्मक जल उत्पन्न हुआ । जल औरपृथिवी से अग्नि कीउत्पत्ति हुई इसीकारण जल को अर्क कहा जाता है। अग्नि में अर्क के हेतु होने से पूजा का अङ्गभूत जल ही अर्क है । विराट् जल में अग्नि प्रतिष्ठित है किन्तु उसका प्रकरण नहीं होने से वह साक्षात् अर्क नहीं है । अग्नि के प्राकरणिकत्व होने से पार्थिव अग्नि ही अर्क है । वह उस जल का फेनरूपसारभूत के सदृश "शर" अर्थात् दधि के सारभूत की तरह स्थूल भाग था, वही एकत्रित हो गया और बाह्य तथा आन्तरिक तेज से परिपक्व होकर कठोर हो गया । वही संघातरूप प्रत्यक्षगोचर पृथिवी हो गयी । उस जल से विराट् शरीर पैदा हुआ । उस पृथिवी के उत्पन्न होने पर वह मृत्युरूप प्रजापति श्रमयुक्त हो गया । यह प्रजापति का महान कार्य था, जो उसने पृथिवी की सृष्टि किया । श्रान्त होने के कारण प्रजापति का " तेजोरस: " उसके शरीर से बाहर निकल गया । प्रजापति कावह तेजोरस अग्नि ही था जो बाहर निकल गया । इस अण्डे के भीतर से सर्वप्रथम कार्यकारण संघाताभिमानी विराडशब्दित अण्डाभिमानी आत्मा प्रजापति जिसे चतुर्मुख ब्रह्मा भी कहते हैं उत्पन्न हुआ स्मृतियाँ इसी तथ्य का अनुमोदन करती है ।

1. बृ०आ० 3.6.2

" स वैशरीरी प्रथम: "

इस प्रथम शरीर के उत्पन्न होने के पश्चात् उस मृत्यु ने यह कामना किया कि "मेरा दूसरा शरीर उत्पन्न हो जिससे मैं देहधारी हो जाऊं । ऐसी दृढ इच्छा से सम्पन्न उस मृत्यु रूप प्रजापति मन से विचार किया । उससे जो वीर्य हुआ वही संवत्सर होगया । इससे पूर्व संवत्सर नहीं था । उससंवत्सर काल निर्माता गर्भस्थ प्रजापति को मृत्यु रूप प्रजा-पति ने उतने समय तक गर्भ मेंधारण किये रखा, जितना संवत्सर का परिणाम होता है । इसके पश्चात् उसने उस अण्डे को फोड दिया । उससे जो प्रथम शरीरी कुमार उत्पन्न हुआ उसने जन्म लेते ही अग्नि के प्रति भक्षण के लिये मुख फाडा, उस समय स्वाभाविक अविद्या से युक्त होने के कारण उसने डरकर "भाण" ऐसा शब्द किया, वही वाक्{ शब्द"} हो गया ।[1]

" सोऽकामयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुनं समभवदशनाया मृत्युस्तद्रेत आसीत्स संवत्सरोऽभवद् न ह पुरा तत: संवत्सर आस तमेतावन्तं कालमबिभ: । यावान्संवत्सरस्तमेतावत: कालस्य परस्तादसृजत । तं जातमभिव्याददात्स भाणकरोत्सैव वागभवद् ।। "{ बृ० आ० उ०}

---

1. बृ० आ० 1·2·2

उस भयभीत तथा स्वाभाविकी अविद्या से युक्त बालक को देखकर मृत्यु ने विचार किया कि " क्षुधायुक्त होने पर भी यदि मैं स्रष्टव्य अन्न मे हेतुभूत इस शिशु को मार डालूंगा तो " कनीयोऽन्नं करिष्ये" कम अन्न कर लूंगा । ऐसा विचार कर उस मृत्यु ने उसे अभय दान दे दिया । इसी प्रकार भक्षण से उपराम होकर अन्न की बहुल्यता के लिये उस मृत्यु ने पूर्वोक्त भाषात्मिका वाक् तथा कुमार भावापन्न मन से वेदत्रयी का आलोचन रूप मिथुन भाव को प्राप्त होकर इस जड़ चेतनमय संसार का सृजन किया[1] ।

" स ऐक्षत यदिवा इममभिमंस्ये कनीयोऽन्नं करिष्य इति स तया वाचा तेनाऽऽत्मनेद सर्वमसृजत यदिदं किं चर्चो यजूंषि सामानि छन्दांसि यज्ञान्प्रजाः पशून् । स यद्यदेवासृजत तत्तदत्तुमधियत् सर्वं वा अत्तीति तददितेरदितित्वं सर्वस्यै तस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमेतददितेरदितित्वं वेद ।। 5 ।। (बृ० आ० 1·2·5)

तथा च मंत्र:

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः " इत्यादि: ।

1· बृ० आ० 1·2·5

भगवान् शङ्कराचार्य अपने वृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य में इस मत की पुष्टि करते हुये कहते हैं कि-

" सर्वस्यैतस्य जगतोऽन्नभूतस्यात्ता सर्वात्मनैव भवत्यन्यथा विरोधात् । न हि कश्चित्सर्वस्यैकोऽत्ता दृश्यते तस्मात्सर्वात्मा भवतीत्यर्थः । सर्वमस्यान्नं भवत्यत एव । सर्वात्मनो ह्यत्तुः सर्वमन्नं भवतीत्युपपद्यते । य एवमेतद्यथोक्त-मदिते र्मृत्योः प्रजापतेः सर्वस्यादनाददितित्वं वेद तस्यै तत्फलम् ।। { वृ० उ० शा०भा०}

इस जड़ चेतनमय निखिल विश्व की रचना उस प्रजापति की मैथुन प्रवृत्ति का परिणाम है । उस प्रजापति ने अकेले ही आनन्द का अनुभव नहीं किया । इसलिये उसने दूसरो की अर्थात् स्त्री की अभिलाषा किया । जैसे स्त्री पुरुष परस्पर आलिङ्गित होते हैं वैसे ही परिणाम वाला वह सत्य संकल्प रूप प्रजापति भी हो गया । उसने स्वशरीर को द्विधा विभक्त कर लिया उसी से पति और पत्नी हुये । उस प्रजापति ने अपने स्वरूप में अवस्थित रहते हुये ही विराट् सत्य संकल्प होने के कारण अपने से भिन्न आलिङ्गित स्त्री पुरुष के परिणाम वाला दूसरा शरीर कर लिया । प्रजा-पति के उस पातन से मनु नामक पति और शतरूपा नाम्नी स्त्री हुयी । इस प्रकार उस मनु नामक प्रजापति ने पत्नी रूप से की गयी अपनी शतरूपा नाम की कन्या से " सम्भवत " अर्थात् मैथुन किया । उस मैथुन धर्म से मनुष्य उत्पन्न हुये[1] ।

1• वृ०आ० 1•3•7

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार " स्मृतिप्रोक्त पुत्रीगमन सम्बन्धी प्रतिषेध वाक्य का स्मरण कर वह शतरूपा विचारकरने लगी कि यह तो अशास्त्रीय कृत्य है " जो प्रजापतिरूप मनु स्वयं से मुझे उत्पन्न करके मुझसे ग्राम्यधर्म करता है, अत: अब मैं जात्यन्तर रूप से अपने को छिपाये लेती हूँ । यह सोचकर वह अन्तर्हित हो गयी । शतरूपा के इस गोभाव के अनन्तर मनु बैल हो गया । वह पूर्ववत गाय के साथ ग्राम्य धर्म करने लगा इसी से गाय और बैल उत्पन्न हुये । पुन: शतरूपा घोड़ी हो गयी औरमनु अश्वश्रेष्ठ हो गया इसके बाद शतरूपा गर्दभी हो गयी और मनु गर्दभ हो गया । उन घोड़ी और अश्वश्रेष्ठ के समागम से घोड़ा खच्चर और गर्दभाख्य तीनों एक खुर वाले पशु उत्पन्न हुये । पुन: शतरूपा अजा हो गयी और मनु अज । जब वह भेड़ हुयी तो मनु ने भेड़ा होकर उसके साथ ग्राम्य धर्म क्रिया इसी से भेड़ बकरे आदि उत्पन्न हुये । इस प्रकार जो कुछ भी चीटी से लेकर स्त्री पुरुष द्वन्दात्मक जगत् है उसने इन सभी की इस तरह से सृष्टि किया । आचार्य शङ्कर अपने बृहदारण्यकोपनिषद् के भाष्य में इसी मत की पुष्टि करते हैं ।

" एवमेव यदिदं किन्च यत्किंचेदं मिथुनं स्त्रीपुंसलक्षणं द्वन्दमा पिपी- लिकाभ्य: पिपीलिकाभि: सहानेनैव न्यायेन तत्सर्वमसृजत जगत्सृष्टवान् ।। "
§ बृ० उ० शा० भा० 1·3·4§

इस निखिल जगत् की रचना करके प्रजापति ने अपने मन में विचार

किया कि-" मै ही सृष्टि हूँ । जिस जगत का मैने निर्माण किया है, विवर्तरूप से यह जगत् मुझसे अभिन्नहोने के कारण मुझसे भिन्न नहीं है । क्यों कि मैंने ही तो इस सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न किया है । इसलिये वज प्रजापति सृष्टि नाम वाला हुआ । जो इस तथ्य को जानता है वह इस प्रजापति की सृष्टि में प्रजापति के समान ही सृष्टा होता है ।

" सोऽवेदहं वाव सृष्टिरस्म्यह हीदं सर्वमसृक्षीति
तत: सृष्टिरभवत्सृष्ट्या हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ।।5 ।।
§ वृ० आ० 1·3·5 §

एवम्प्रकारेण मिथुनात्मक सृष्टि की उत्पत्ति कर प्रजापति ने ब्राह्मणादि चार वर्णों को नियमाधीन करने वाली देवताओं की इच्छा से पुन: मन्थन के द्वारा मुखरूप योनि से दोनों हाथों से अग्नि को उत्पन्न किया । उसने ऐसा इसलिये किया, क्यों कि दो हाथ और मुख ये दोनों दाहक गुण सम्पन्न अग्नि की योनि है । संभवत: इसीलिये ये दोनों ही अन्दर से" अलोमकम् अर्थात् रोमरहित हैं अग्नि की तरह ब्राह्मण भी प्रजापति के मुख से उत्पन्न हुआ है । इसलिये एक ही योनि से उत्पन्न होने के कारण अग्नि ब्राह्मण पर उसी प्रकार अनुग्रह करता है जिस प्रकार ज्येष्ठ भ्राता लघु भ्राता पर करता है । श्रुतियाँ और स्मृतियाँ " आग्नेयो वैब्राह्मण:"[1]

1· तै0 आ0 प्रपा0-7

कहकर इसी तथ्य का अनुमोदन करती है । अग्नि देव के सदृश ही उस प्रजापति ने बल की आश्रय भूता भुजाओं से क्षत्रिय जाति के नियन्ता इन्द्रादिकों और क्षत्रियों को उत्पन्न किया । क्षत्रिय इन्द्र देवता से अनुग्राह्य और बाहुल्य वीर्यवाला होता है । इस तथ्य की पुष्टि श्रुतियाँ और स्मृतियाँ भी करती है ।

"ऐन्द्रो राजन्यः" ‖ यजु० ‖

इसी प्रकार चेष्टा के आश्रय होने के कारण उरूओं से वैश्य जाति के नियन्ता वसु आदि देवता तथा वैश्य को उत्पन्न किया ।

इसी प्रकार चरणों से पोषणकर्त्री पृथिव्याभिमानी देवता एवं सेवा परायण शूद्र की उत्पत्ति की यही बात "पद्भ्यां शूद्रो5जायत" श्रुति और स्मृति से सिद्ध होती है । यजुर्वेद तथा उससे सम्बद्ध ब्राह्मण ग्रन्थ और बृहदारण्यक में सृष्टि के इस क्रम का स्पष्ट रूप से वर्णन प्राप्त होता है ।

"अथेत्यभ्यमन्थत्स मुखाच्च योनेर्हस्ताभ्यां चाग्निमसृजत् तस्मादेतदुभयमलोक मनन्तरतो5लोमका हि योनिरन्ततः । तद्यदिदमाहुरमुं यजामुं यजेत्येकैकं देवमेतस्यैव सा विसृष्टिरेष उ ह्येव सर्वे देवाः । अथ यत्किंचेदमार्द्रं तद्रेतसो5सृजत तदु सोम एतावद्वा इदं सर्वमन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नमग्नि-

रन्नाद: सैषा ब्रह्मणोऽतिसृष्टि: । यच्छ्रेयसो देवानसृजताथ यन्मर्त्य: सन्न-मृतानसृजत तस्मादतिसृष्टिरतिसृष्ट्या हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ।।"

प्रश्न यह उठता है कि इस निखिल विश्व का सर्जक क्या प्रजापति ही है ? इस विषय में बहुत से मत प्रस्तुत किये गये हैं । कुछ के अनुसार "ब्रह्म ही हिरण्यगर्भ है।" कुछ अन्य का मत है कि हिरण्यगर्भ अर्थात् प्रजापति संसारी है किन्तु दोनों ही मतों मे से ब्रह्म को ही हिरण्यगर्भ कहा गया है इस आद्य पक्ष को ही ब्राह्मणों और आरण्यकों में सिद्ध किया गया है । वस्तुत: यह परमात्मा ही इन्द्र, मित्र वरुण, अग्नि आदि नामों से पुकारा जाता है । यह ब्रह्म है, यह इन्द्र है । यह प्रजापति है और ये सभी देवता हैं । स्मृतियाँ भी इसी तत्व का वर्णन करती हुई कहती हैं कि "इस परमात्मा को ही कोई अग्नि, कोई मनु और कोई प्रजापति कहते हैं वह परमात्मा अतीन्द्रिय, आग्राह्य सूक्ष्म अव्यक्त, सनातन सर्वभूतमय और अचिन्त्य है ।

आचार्य शङ्कर[2] भी अपने बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य मे इसका समर्थन करते हुये कहते हैं कि-

1• "पर एव हिरण्यगर्भ इत्येके । संसारीत्यपरे । पर एव तु मन्त्र वर्णात् । इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु: इति । एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापति-रेते सर्वे देवा:" इति च श्रुते: ।

1• बृ० आ० 2•2•6

2• बृ० आ० उ० शा० भा० पृ० सं० 157

स्मृतेश्च-

2· एतमेके वदन्त्यग्निमनुमन्ये प्रजापतिम् ।।"

3· योऽसावतीन्द्रियग्राह्य: सूक्ष्मोऽव्यक्त: सनातन: ।

सर्वभूतमयोऽचिन्त्य: स एव स्वयमुद्बभौ ।।"

4· ब्रह्मा विश्व सृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च ।

उत्तमां सात्विकीमेतांगतिमाहुर्मनीषिण: ।।

5· विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् सर्वो ह्येष

रुद्र" । इति श्रुते: ।।

वैदिक वाङ्मय में सृष्टि का सर्जक वह हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ही है जिसे "नेति नेति" कहकर पुकारा गया है । उसमें संसारित्व का होना परमार्थ दृष्टिसे नहीं प्रत्युत उपाधि के कारण ही है । पारमार्थिक दृष्टि से वह असंसारी है इस प्रकार हिरण्यगर्भ का एकत्व और नानात्व है । संभवत: इसी लिये उस परमात्मा के लिये ।

" आसीनोदूरं व्रजति शयानो याति सर्वत: ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्योज्ञातुमर्हति ।।"

" सृष्टि सर्जन के परिप्रेक्ष्य में त्रिदेवों कीएकता "

तत्व ज्ञानी ऋषियों ने अपनी अगाध श्रद्धा और अन्तर्मुखी शुद्ध बुद्धि

के द्वारा पिण्ड ब्रह्माण्ड में ओत- प्रोत तथा उससे भी परे स्वतन्त्र स्वयंभू, स्वसंवेद्य तत्त्व का अनुभव करके यह प्रतिपादित किया है कि वह निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापी, अनाद्यन्त, सच्चिदानन्द, सकलैश्वर्यसम्पन्न परमतत्व अपनी महिमा में प्रतिष्ठित "एकमेवाद्वितीयम्" है ।

वह सगुण होकर भी निर्गुण है, साकार होकर भी निराकार है, अपाणिपाद होकर भी ग्रहण और गमन करने वाला है, "सर्वेन्द्रिय गुणाभासम्" होने परभी "सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् है । वह दूर है औरसमीप भी है, निर्विकल्पकहोकर भी सविकल्पक है तथा "अवाङ्मनसगोचरम्" होकर भी बुद्धिगम्य है । वह "अणोरणीयान्महतो महीयान्" सब कुछ है । इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में परस्पर विरोधी वर्णन प्राप्त होने परभी यह उसका सर्वांगीण वर्णन नहीं है । इसलिये शास्त्रों ने यह कह दिया कि "वह परमात्मा अनाद्यनन्त, निर्गुण, निरवयव, निर्विकार "सत्यं ज्ञानमनन्तम्" अनिर्वचनीय और "नेति- नेति" है ।

इस प्रकार उसपरब्रह्म की अनिर्वचनीयता का दिग्दर्शन करा कर ब्राह्मणों और उपनिषदों में स्पष्ट रूप से कह दिया गया है कि परमात्मा मन बुद्धि का विषय नहीं है । क्यों कि वह तो "न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा" है[1]। वह पञ्चमहाभूतों के शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध, इन पञ्च गुणों से रहित अनादि अनन्त और अव्यय है । वह किसी भांति नहीं जाना जासकता, क्यों कि "विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" । उसका अनुभव

---

1. तवलकार आ0 प्रपा-10

तो उस तत्ववेत्ता पुरुष को ही हो सकता है जो अपनी अन्तर्मुखी चित्त-वृत्ति के द्वारा अन्तर्ज्ञान प्राप्त करके उसका " सत्यं शिवं सुन्दरम् " रूप में अनुभव करते हैं ।

श्वेताश्वतरोपनिषद्[1] के अनुसार परब्रह्म अपनी शक्ति से युक्त होकर ही सृष्टि का निर्माण करता है । इस उपनिषद् में वर्णित तथ्यों के आधारपर हम कह सकते हैं कि शिवलिङ्ग की पूजा के सम्बन्ध में वैदिक वाङ्मय में जो आध्यात्मिक रहस्य सन्निहित है उसका भाव यही है कि " यह अव्यय सदाशिव ही सृष्टि रचना के निमित्त दो हो जाते हैं । क्योंकि सृष्टि बिना द्वैत{ आधार- आधेय" के हो नहीं सकती आधेय अर्थात् चैतन्य पुरुष विनाआधार अर्थात् प्रकृति, उपाधि के व्यक्त नहीं हो सकता । इसलिये इस सृष्टि में जितने पदार्थ है उनमें अभ्यन्तर चेतन और बाह्य प्राकृतिक आधार अर्थात् उपाधि शरीर देखे जाते हैं । दृश्यादृश्य सम्पूर्ण लोकों में इन दोनो की प्राप्ति होती है । इसी कारण इस अनादि चैतन्य परमपुरुषपरमात्मा की शिवसंज्ञा सृष्ट्युन्मुख होने पर अनादि लिङ्ग है और उस परम आधेय को आधार देने वाली अनादि प्रकृति कानाम योनि है, क्योंकि ये दोनों इस अखिल चराचर विश्वके परम कारण हैं । शिव लिङ्ग रूप में पिताऔर प्रकृति योनिमें माता है । स्वयं श्री हरि गीता में यही बात कहते हैं[2] ।

---

1. श्वेताश्वतरोपनिषद् 5-6
2. गीता- 14/3

" मम योनिर्महद् ब्रह्म

तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।

सम्भव: सर्वभूतानां

ततो भवति भारत । " ।। [गीता]

" महद् ब्रह्म " [महान प्रकृति] मेरी योनि है, जिसमें मैं बीज देकर गर्भ का संचार करता हूँ और इसी से सब भूतों की उत्पत्ति होती है । मनुस्मृतिकार[1] भी इसी मत की पुष्टि करते हैं ।

" द्विधाकृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरूषोऽभवत् ।

अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभु: ** "

उस अचिन्त्य परमेश्वर की अतर्क्य लीला से साम्यावस्था में स्थित त्रिगुणात्मक प्रकृति में गुण- क्षोभ होकर , सूक्ष्म, स्थूल निरिन्द्रिय, सेन्द्रिय तैजस- तामस, दृश्य- अदृश्य, चर- अचर , देव- दानव पशु- पक्षी और मनुष्यादि विविध रूप से विभिन्न सृष्टि प्रवाह उसके रजोगुण प्रधान रूप से होता है । उस समय नानाविध शक्ति सम्पन्न वही पर ब्रह्म सगुण होकर हिरण्यगर्भ या ब्रह्म देव के नाम से जाना जाता है । श्रुति कहती है-

---

1. मनुस्मृति 2/45

" हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे

भूतस्य जात: पतिरेक आसीत् ।।"

इसी क्रम से जब सृष्टि का नाना विधप्रसार हो जाता है तब उसका पालन करने के लिये वही भगवान् सत्वगुणप्रधान विष्णुरूप से अवतरित होते हैं । अन्त में प्राणिमात्र की मङ्गलमय कामना से युक्त होकर परमेश्वर तमोगुण प्रधान शिव रूप में प्रकट होकर इसका संहार करने लगते हैं ।

एक ही परमेश्वर इस विश्व में विविध गुण सम्पन्न होकर कहीं किसी का आविर्भाव और तिरोभाव अथवा उत्कर्षापकर्ष करके अनेक लीलाओं को करता हुआ अनेक नामरूप से जाना जाता है, किन्तु इससे उसी स्वरूपावस्थिति में लेशमात्र भी भेद नहीं होता है । गीता में अर्जुन को " रुद्राणां शङ्करश्चास्मि" या " धाताहं विश्वतोमुख:" या विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्, ऐसा केवल मौखिक उपदेश ही भगवान श्रीकृष्ण ने नहीं दिया, वरन् अर्जुन की " द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम्" इस प्रार्थना पर विश्वरूप दर्शन कराके उसी के मुख से-

" पश्यामि देवास्तवं देव देहे ।

सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्गान् ।

ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-

मृषींश्च सर्वानुरंगाश्च दिव्यान् ।। -"

कहलाकर- अर्जुन को सन्देह मुक्त कर दिया । भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार शिव और विष्णु में न कोई छोटा है और न कोई बड़ा । अपने अपने कार्य के सब प्रभु हैं । यह तो उपासक की इच्छा और अधिकार के अनुसार नियत है कि वह जिस किसी रूप को अपनी उपासना के लिये चुन ले किन्तु दोनों में लघुता गुरुता देखना अपने को विज्ञान शून्य घोषित करना है । निर्विशेष परात्पर या अव्यय पुरुष जो उपासना और ज्ञान का मुख्य विषय है तथा जीव का अन्तिम प्राप्य है, उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं है । उसे " वेवेष्टीति विष्णुः " सर्वत्र व्यापक है, इसलिये विष्णु कह लीजिये अथवा शेरतेऽस्मिन्सर्वे इति शिवः सभी कुछ उसी में है, इसलिये शिव है । वेदान्त सूत्र के अनुसार सर्वधर्मोपपत्तेश्च " सभी गुण कर्म और नाम उसके हो सकते हैं । अतएव विष्णु सहस्त्र नाम में शिव के नाम और शिवसहस्त्रनाम में विष्णु के नाम आते हैं । विष्णु यज्ञस्वरूप है और यज्ञ द्वारा ही रुद्र आदि देवता उत्पन्न होते हैं यज्ञ के आधारपर ही सभी देवताओं की स्थिति है । रुद्र शिव का रूप है इसलिये कहा जा सकता है कि शिव विष्णु के उदर में है, उनसे उत्पन्न होते हैं वही दूसरी दृष्टि से अग्निप्रधान सूर्य मण्डल रुद्र का रूप है और और जगत् के अन्तर्गत यज्ञमय विष्णु है । और जगत में जो यज्ञ हो रहा है उसी से हमारा जीवन है । " यज्ञो वै विष्णु " यज्ञ ही विष्णु है । इस दृष्टिसे रुद्र अथवा शिव के पेट में विष्णु है । इसी प्रकार सूर्य का उत्पादक यज्ञ परमेष्ठि मण्डल में होता है, अतएव वह मण्डल विष्णु प्रधान कहा गया है- उस मण्डल के पेट में सूर्यमण्डल आ जाता है ।

इससे विष्णु के पेट में शिव का आविर्भाव हुआ । वहीं एक दूसरा वर्णन भी मिलता है जिसके अनुसार परमेष्ठिमण्डल स्वयम्भूमण्डलान्तर्गत रहता है और ये मण्डल आग्नेय होने के कारण रुद्र वा अग्नि के नियन्ता महेश्वरका मण्डल कहा जा सकता है । स्वयम्भूमण्डलान्तर्गत एक वाचस्पति तारा है, उसे श्रुति में इन्द्र माना गया है और इन्द्र महेश्वर के रूप के अन्तर्गत है । उसे मण्डल की व्याप्ति में परमेष्ठिमण्डल के अन्तर्भूत रहने के कारण फिर शिव के उदर में विष्णु आ गये । इसलिये स्पष्ट रूप से कहा गया[1] है ।

" शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोस्तु हृदयं शिव: । "

श्रीमद्भागवत महापुराण[2] में भगवान् स्वयं ही कहते हैं कि- मै, ब्रह्मा और शिव त्रिगुणात्मिका माया के- सृष्टि स्थिति संहार- रूपी कार्य करने के कारण पृथक्- पृथक् प्रतीत होते हैं।[3] यथार्थत: हम एक ही हैं । हमारी माया को न जानने के कारण ही अज्ञजन भ्रमवश हम दोनों को भेद - दृष्टि से देखते हैं किन्तु ज्ञानी जन जिस भाँति अपने शरीरावयवों में भेद नहीं देखते । उसी तरह वे प्राणि मात्र में आत्मभेद नहीं देखते हैं-

---

1. विष्णु पुराण 3-4
2. श्रीमद्भाग०प्रथम स्कन्ध अ0 - 33
3. " " 4.7.50-54

" अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगत: कारणं परम्

आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृगविशेषण: ।।

आत्ममायां समाविश्य सो5हं गुणमयी द्विज ।

सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञा क्रियोचिताम् ।

तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि ।

ब्रह्म रुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञो5नुपश्यति ।।

त्र्याणामेक भावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।

सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ।। "

इसी तथ्य की पुष्टि शिव पुराण में की गई है । यथा-

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मा विष्णुहराख्यया ।

सर्गरक्षालयगुणै: निष्कलो5यं सदा हरे ।।

अहं भवानयं चैव रुद्रो5यं यो भविष्यति ।

एकं रूपं न भेदो5स्ति भेदे च बन्धनं भवेत् ।। "

विष्णु पुराण के मत में इन त्रिदेवों में गुणजन्य भेद होने पर भी वास्तविक
रूप में अभेद ही है ।[1]

---

1. विष्णु पुराण- 6-7

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्माविष्णुशिवाभिधाम् ।
स संज्ञा याति भगवानेक एव जनार्दनः ।। "

एक ही परमात्मा सृजन, रक्षण और हरण रूप कार्य करने से ब्रह्मा विष्णु महेश नाम को प्राप्त होते हैं । इसी तथ्य का प्रतिपादन नारायणाथर्वशिरोपनिषद्[1] भी करती है -

" अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत्, प्रजाः सृजेयेति । नारायणाद्ब्रह्मा जायते, नारायणाद्रुद्रो जायते, नारायण एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् । निष्कलङ्को निरन्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चिद् ।। "

वृहन्नारदीय पुराण भी स्पष्ट रूप से इसी कथन की पुष्टि करता है-

" नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरन्जनः ।
तेनेदमखिलं व्याप्तं जगत् स्थावर जङ्गमम्।।
तमादिदेवमजरं केचिदाहुः शिवाभिधम् ।
केचिद्विष्णु सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदूचिरे ।। "

---

1. अथर्वशिरोपनिषद्- 3-5

मार्कण्डेय महापुराण के एक ही महाशक्ति आधार भेद से भिन्न भिन्न शक्ति रूप में प्रकाशित होकर भिन्न - भिन्न कार्य करती है । वह अचिन्त्य होने पर भी पुरुष और स्त्री दोनों रूपों को धारण कर लेती है ।[1]

" लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ।
एकैव सा महाशक्तिस्तया सर्वमिदं जगत् ।।
एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।
चक्षुष्मन्तोऽनुपश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ।।

सम्भवतः इन्हीं सब कारणों से श्रुति में कहीं तो पुरुष रूप से " पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्" तो कहीं विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् "। " सर्वो ह्येष रुद्रः" शिवरूप से एक ही परमात्मा का विवेचन है ।

षोडश ग्रन्थों में सर्वप्रथम " तत्त्वग्रन्थ " में वल्लभाचार्य जी कहते है कि ब्रह्मा विष्णु और शिव ये त्रिदेव निर्गुण है, क्यो कि निर्गुण परब्रह्म हीप्रकृति के तीन गुणों को अधिष्ठेयत्वेन॥ नियम मेंरखने की इच्छा से॥ ग्रहण कर ब्रह्मा विष्णु और शिव रूप से हो गये ।

1. मार्कण्डेय पु0 6-9

"वस्तुन: स्थितिसंहारौ कार्यौशास्त्रप्रवर्तकौ ।
ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ ।
निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयो: कृता ।
भोगमोक्षफलेदातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि ।।
भोग: शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चय: ।
अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि ।।

ये शिव और विष्णु दोनों भोग और मोक्ष दाता है । तथापि दोनो ने दो कार्यअलग अलग बाँट रखे हैं । इसलिये दोनों हीपुरूषार्थों का दान नियत रूप से नहीं करते । श्रीमद्भागवत् में कहा गया है-

हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगा: ।
स्वात्मारतस्याविदुष: समीहितम् ।।
यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनै:
श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ।।"

आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य जीवलोकस्य राक्षसे ।
शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान् भव: ।।

पौराणिक वाङ्मय में ये त्रिदेव स्थूल रूप से भिन्न होते हुये भी तात्विक दृष्टि से अभिन्न है ।

लिङ्गपुराण के अनुसार[1] " एक बार भगवान् श्रीकृष्ण पुत्र प्राप्ति के निमित्त तप करने को वन में गये । वहाँ महामुनि जब उपमन्यु के आश्रम में गये तो धौम्य के ज्येष्ठ बन्धु उपमन्यु का दर्शन हुआ । ~~उनको देखकर~~ उनको देखकर श्रीकृष्ण ने उनकी तीन प्रदक्षिणा किया । उस मुनिश्रेष्ठ के दर्शन से ही श्रीकृष्ण के कायज और कर्मज मल नष्ट हो गये । इसके पश्चात् मुनिश्रेष्ठ ने श्रीकृष्ण को भस्मोद्धूलन करके उन्हें शिवमन्त्रोपदेश दिया । शिव-मन्त्रोपदेश का अनुष्ठान करने से महेश्वर ने प्रसन्न होकर उन्हें वरप्रदान किया ।

" पुत्रार्थं भगवास्तत्र तपस्तप्तुं जगाम ह ।
आश्रमं चोपमन्योर्वै दृष्टवांस्तत्र तं मुनिम् ।।

नमस्कारं तं दृष्ट्वा धौम्याग्रजमहो द्विजाः ।
बहुमानेन वै कृष्णस्त्रिः कृत्वैव प्रदक्षिणाम् ।।

तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः ।
नष्टमेव मलं सर्वं कायजं कर्मजं तथा ।।

भस्मनोद्धूलनं दत्त्वा उपमन्युर्महामुनिः ।
तमग्निरिति विप्रेन्द्रा वायुरित्यादिभिः क्रमात् ।

तपसा त्वेकवर्षेण दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ।
साम्बं सगणमव्यग्रं लब्धवान् पुत्रमात्मनः ।। "

---

1. लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय- 108

इसी लिङ्ग पुराण[1] के उत्तरार्द्ध के पन्चमाध्याय में भगवान् विष्णु जब अम्बरीष को वर प्रदान करते हैं - तब अम्बरीष श्री विष्णु भगवान् से कहते हैं-

" लोकनाथ परमानन्द नित्यं मे वर्तते मति: ।
वासुदेव परा देव वाङ्मन: कायकर्मभि: ।।

यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मन: ।
तथा भवाम्यहं विष्णो तव देव जनार्दन: ।। "

अत: स्पष्ट है कि " ब्रह्मा विष्णु और शिव में त्रिगुणात्मिका माया से ही केवल माया मोहित जीवों को वैचित्र्य और वैभिन्न प्रतीत होता है, यथार्थ के कुछ भी भेद नहीं है । सृष्टि के सर्जन में बिना इनकी एकता के कुछ भी नहीं हो सकता ।

" स ब्रह्मा स शिव: सेन्द्र: सोऽक्षर: परम: स्वराट् ।
स एव विष्णु: स प्राण: स कालोऽग्नि: सचन्द्रमा ।। "

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्य: पन्था: विमुक्तये ।। "

---

1. लिङ्ग पुराण उत्तरार्द्ध अ० 5

x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x

पञ्चमोऽध्याय:

वेदोक्त शिव अथवा रुद्र का कल्याणकारी स्वरूप तथा उनकी शक्ति-

x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x

वैदिक वाङ्मय के अनुसार यह सम्पूर्ण जगत कर्ममूलक है । कर्मों के जड़ होने से तथा उनके नियमन में देवताओं की आवश्यकता रहने से ही देवताओं की इस विश्व में प्रधानता मानी गयी है । जब देवताओं में प्रधान " महादेव " ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूपी त्रिगुणात्मक त्रिमूर्ति को धारण करके स्वयं को सगुण रूप से प्रकट करते हैं तब उनकी त्रिगुणमूर्ति सर्वदैव प्रधान होकर प्रत्येक ब्राह्माण्ड में प्रधान देवता के नाम से धारण कर प्रसिद्ध होती है । वस्तुत: तात्विक दृष्टि से इस त्रिमूर्ति में कोई भेद ही नहीं है । ये तीन प्रमुख अधिदेव मूर्तियाँ ही प्रत्येक ब्रह्माण्ड में " ईश्वर " नाम से जानी जाती है । ब्रह्मा जी में परमात्म स्वरूप भगवान् शिव की अध्यात्म और अधिदेव शक्ति का पूर्णोत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है । सम्भवत: इसी कारण इन्हें लोकसर्जक, " पितामह " अर्थात् पितृगणों के नायक भी कहा जाता है। " महेश " इस नाम से उनकी अधिभूतशक्ति एवं अधिदैवशक्ति का पूर्ण विकाश है इसी से उन्हें ज्ञानदाता और ऋषियों का नायक कहा जाता है । इसी प्रकार विष्णु में परमात्मा शिव की अधिभूतशक्ति और अध्यात्मशक्ति का विकास रहने पर भी वे दैवीशक्ति समूह के केन्द्र होने से देवताओं के नायक है । भगवान रुद्र अर्थात् शिव ने " पितृगणों का अधिकार केवल स्थूल जगत पर और पिण्डो में अर्थात् मनुष्यपिण्डो पर ही विशेष रूप से रखा है । इसी प्रकार ऋषियों का अधिकार केवल ज्ञानी जीवों पर है । परन्तु देवों का अधिकार प्रत्येक ब्रह्माण्ड के सभी विभागों पर समान रूप से होने के कारण वे सर्वमान्य है श्रुति भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है ।

2• श्वेता 4-14

यद्यपि नाम " शिव " है तथा उनमें संहारक शक्ति की ही प्रधानता है और यह प्रधानता ही उनके कल्याण कारी स्वरूप का प्रमुख आधार है। तत्वज्ञ वैदिक ऋषियों के मतानुसार " जब वे रुद्रदेव अपने स्व- स्वरूप में स्थित रहते हैं तब वे सौम्यता की साक्षात प्रतिमूर्ति रहते हैं। लेकिन जब वे इस जगत में होने वाले अनर्थों पर दृष्टि डालते हैं। तब वे उग्र हो जाते हैं। सायणाचार्य रुद्र के इस कठोर लेकिन मङ्गलमय स्वरूप का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करते हैं। यजुर्वेद[1] भी इसी मत की पुष्टि करता है। अनर्थ करने वालो को चूंकि रुद्रदेव दण्डित करते हैं इसी लिये इन्हें यमराज भी कहा जाता है[2]। गीता भी इसी तथ्य का अनुमोदन करती प्रतीत होती है[3]।

ये शिव अथवा रुद्र अपने उपासको का कल्याण किस रूप में करते है और उसके लिए उपासकजन क्या विधि अपनाते हैं, इसका स्पष्ट प्रमाण शिवपुराण में मिलता है[4]। इस पुराण के मत में " रुद्र " अथवा " शिव "इन दो अक्षरों वाले नाम का जो भक्ति सहित उच्चारण करना है, वह रुद्रलोक का वासी बन जाता है और उसके कर्मों की सम्पूर्ण न्यूनता स्वयमेव पूर्ण हो जाती है।

---

1. यजुर्वेद 16-30
2. तदेव 16.33
3. गीता- 16-19
4. शि०पु० रु०सं० अ०- 16

ये रुद्रदेव उपासकों की कामनाओं का सेवन भी करते हैं ,क्यों कि ये अजर आत्मवैभव सम्पन्न और आत्मदेव है, प्रत्येक प्राणी के अन्दर विद्यमान परब्रह्म परमात्मा है[1]। जिस तरह घर का गृहपति परिवार के सदस्यों को अच्छे आचरण के लिये प्रोत्साहित और दुराचरण के प्रति दण्डित करता है उसी प्रकार ये रुद्रदेव भी सम्पूर्ण जगत को समान द्रष्टि से देखते हुए सदाचारी को पुरुष्कार औरदुराचारी को दण्डित करते हैं[2]। सम्भवत: इसी लिए वैदिक वाङ्मय में दानी, उपकारी और मङ्गलदाता भी कहा गया है[3]। ये इतने सहृदय और सरलमना है कि इन्हे सरलता से प्रसन्न कर अभीसिप्त कामना की पूर्ति की जाती सकती है[4]।

वैदिक ऋषियों को रुद्रदेव की उपशामक सामर्थ्य का भलीभांति ज्ञान था तभी तो वे मानव औरपशुओं के कल्याण के लिए कल्याणकारी रुद्रदेव का आवाहन करते थे[5]। रुद्र द्वारा अपने उपसकों को अपने उपचारों द्वारा निरोग एवं उन्हें शतशीत ऋतुओं तक जीवित रखने की सामर्थ्य का भी वर्णन

1· ऋग्वेद संहिता 6-49-10 तथा 1·129·2·10,92,9

ऋग्वेद 1·114·1-2

2· ऋग्वेद 6·49·10

3· ऋग्वेद 2·33·7·6·49·10· तथा 1·114·3

4· ऋग्वेद 2·33·9

5· ऋग्वेद 2·33·12 तथा 5·42·11

मिलता है ।[1]

परात्पर सत्-चित्- आनन्दस्वरूप परमेश्वर " शिव " एक हैं वे विश्वातीत और विश्वमय भी है । वे गुणातीत और गुणमय दोनों ही है वे एक ही है लेकिन अनेकरूप वाले बने हुये हैं । वे जब अपने विस्तार सहित अद्वितीय स्वरूप में स्थित रहते हैं तब असंख्य रूपों वाली प्रकृति देवी उनमें विलीन रहती है । पुन: जब वही शिव अपनी शक्ति को व्यक्त और क्रियान्वित करते हैं, तब वही क्रीडामयी शक्ति- प्रकृति शिव को ही विविध रूपों में प्रकट कर उनके क्रीड़ा की सामग्री का संकलन करती है । अथर्ववेद में रुद्र के इस अद्वितीय और विलक्षण स्वरूप का स्पष्ट निर्देशन उपलब्ध होता है ।[2]

रुद्र के मङ्गलमय अथवा कल्याणकारी स्वरूप का जो वर्णन वैदिक संहिताओं में मिलता है यद्यपि वह सूक्ष्म रूप में ही है तथापि परवर्ती भारतीय संस्कृति और धर्म दर्शन पर उसका गम्भीर और स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । पौराणिक वाङ्मय तो जैसे शिव के कल्याणकारी स्वरूप के गुणगान से ही भरे पड़े है । अथर्ववेद के अनुसार रुद्रदेव के अनुकूल रहने पर

---

1. ऋग्वेद 2·33·2

2. अथर्व० 3·26·1, 3·26·2, 3·26·3, 3·26·4-3,6

वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा शरद् हेमन्त और शिशिर ये सभी ऋतुएं सुखकर हो जाती है । वातादि उपद्रवो से होने वाली क्षति कल्याणकारी रुद्र के प्रसन्न रहने पर मानव को व्याप्त नहीं करती है[1] ।

यद्यपि रुद्र के कल्याणकारी स्वरुप के सम्बन्ध में विद्वानों में वैचारिक मतभेद का होना स्वाभाविक हो सकता है, लेकिन आस्तिक भारतीय परम्परा रुद्र को कल्याणकर्ता अतिशय कृपालु देव के रुप में ही सम्मान देती है । रुद्र का यदियह मङ्गलमय चरित्र नहीं होता तो वैदिक ऋषिगण ये प्रार्थना क्यो करते कि हे रुद्रदेव पूर्वकाल में उत्पन्न हुये ब्रह्म को उत्तम प्रकाशित मर्यादाओं से आपने ही अपनी ज्ञानदृष्टि से देखा है । उसी दृष्टि से आप हमारे सत् और असत् कर्मों का निर्धारण कर हमें कल्याणकारी पथ की ओर ले चलिये[2] ।

" ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्
वि सीमतः सुरुचो वे न आवः ।
स बुध्न्याऽउपमा अस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमसतश्च विवः ।। "

1• अथर्व 6•55•2,3

2• अथर्ववेद 5•6•1-14

इस निखिल जगत् की गतिशीलता और चेतनशीलता का हेतु रुद्र ही है क्यों कि वे परम कल्याणकारी देव ही मित्र तथा वरुण के साथ मिलकर इस कठिन कार्य का सम्पादन करते हैं[1]। यजुर्वेद के अनुसार " ये रुद्रदेव स्वरूपत: ही कल्याणमय है[2]। आत्म समर्पण की भावना से रुद्र की अर्चना करने वाला कभी भी दु:ख का भागी नहीं बनता क्यों कि उसकी विपत्ति का शमन स्वयं" श्री शिव" ही कर देते हैं[3]।

" अनाप्ता ये व: प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व: एतत् पुरो दधे ।। "

यह जगत सुखदु:खात्मक है । धर्म शास्त्रों के अनुसार दु:ख से निवृत्ति का सरलतम और एकमात्र उपाय अपने इष्टदेव का स्मरण ही है । वैदिक ऋषियों के मत में समस्त देवों से अतिशय कृपालु" शिव" ही है । त्रिदेवों में इनके सदृश अतिशीघ्र भक्तों पर द्रवित होने वाला अन्य कोई नहीं है । रुद्र अथवा शिव के कल्याणमय स्वरूप का स्पष्ट दिग्दर्शन श्रीमद्भागवत में होता है जब वृत्रासुर की कठिन आराधना को देखकर स्वयं श्री शिव ही कह उठते हैं कि तुमने वृथा ही अपने शरीर को इतनी पीड़ा दी ,मैं तो मात्र जलमात्र के अर्पण से ही संतुष्ट हो जाता हूँ[4]।

---

1. ऋग्वेद 1·43·3-5
2. यजुर्वेद 16/41
3. अथर्ववेद 5·6·1-2
4. श्रीमद्भागवत 5·6·1-2

ये रुद्रदेव अन्नदान के प्रति बन्धक शत्रुओं के नाशक हैं । अथर्ववेदमें रुद्र के परम कारुणिक स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुये ही स्तोता कहता है कि हे रुद्रदेव । आप अन्नदान के प्रति बन्धक शत्रुओं को भगा दे । क्यो कि आप शत्रुओं पर समुद्र की ओर से भी आक्रमण करते हैं, इसी लिये आपके उपासक जन आपको " सनिस्रस" अर्थात् चढाई करने में कुशल योद्धा भी कहते हैं[1] ।

" पयू षु प्र धन्वा वाज सातये ।
परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तदृयर्णवेनेयसे
सन्निस्त्रसो नामासि त्रयोदशो मास ।। " ॥ अथर्ववेद॥

रुद्र के कल्याणकारी स्वरूप कावर्णन करते हुये भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं कि " महादेव का " स्मरण करने वाले के पीछे पीछे मैं नामश्रवण के लोभ से अत्यन्त भयभीत होते हुये जाता हूँ । जो " शिव इस शब्दो-च्चारण के साथ प्राणों का त्याग करता है वह कोटि जन्म के पापों से मुक्तिपाकर मोक्ष का भागीदार बन जाता है । ब्रह्मवैवर्तपुराण[2] के मत में शिव शब्द कल्याणवाची है और कल्याणशब्द मुक्तिवाचक है, वह मुक्ति भगवान शङ्कर से ही प्राप्त होती है, इसी लिये वे " शिव " कहे जोते हैं ।

1· अथर्ववेद 5·6·1-4

2· ब्रह्मवैवर्तपुराण- ब्रह्मखण्ड

धन तथा बन्धवों के नाश हो जाने के कारण दु:ख रूपी अर्णव में निमग्न हुआ मानव " शिव " शब्द का उच्चारण करके सब प्रकार के कल्याण को प्राप्त करता है । " शि " का अर्थ है पापों का नाश करने वाला और "व " कहते हैं मुक्ति देने वाले को । भगवान् रुद्र अथवा शङ्कर में ये दोनों गुण है इसीलिये वे शिव कहलाते हैं । " शिव " यह कल्याणमय नाम जिसकी वाणी में रहता है उसके जन्म- जन्म के अर्जित पापपुन्ज स्वयमेव विनष्ट हो जाते हैं " शि " का अर्थ है मङ्गल और " व " कहते है दाता को, इसलिये जो मङ्गलदाता है वही शिव है । ये भगवान रुद्र निखिल जगत् के मनुष्यों का " श " कल्याण करते हैं और कल्याण मोक्ष को कहते हैं । इसी से वे शङ्कर भी कहे जाते हैं । ब्रह्मादि देवता तथा वेद का उपदेश करने वाले जो कोई भी इस जगत् में महान कहे जाते हैं उन सभी देवों के परम उपास्य होने के कारण ही वे रुद्र " ऋषि " अर्थात् महादेव कहे जाते हैं । वे रुद्रदेव महती अर्थात् निखिल जगत् की अधीश्वरी ईश्वरी प्रकृति द्वारा पूजित हैं इसलिये भी इन्हें " महादेव " इस नाम से पूजा जाता है । वे कल्याणमयरुद्र इस सृष्टि में स्थित सम्पूर्ण आत्माओं के स्वामी है संभवत: इसी दृष्टि से उन्हें " महेश्वर " भी कहा जाता है ।

अथर्ववेद के अनुसार ये " रुद्र " आत्मदेव " भी हैं क्योंकि वैदिक ऋषिगण पापाचरण में रत रहने वाले असुरों के प्रभाव से त्राण पाने के लिये

इन्हों रुद्र देव की शरण का अवलम्बन ग्रहण करते थे । उनकी दृष्टि में कल्याणमय रुद्र के प्रति आत्मसर्वस्व का समर्पण ही मुक्ति का मूल था[1] ।

" यो5स्माचक्षुषा मनसा चित्याकूत्या च यो अघायु -
रभिदासात् त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ।। "

§ अथर्ववेद §

पद्मपुराण[2] के अनुसार " एक बार शिव जी ने मृत्यु को देखकरकहा इसने मरणकाल में मेरे नाम का स्मरण किया है । मुझे लक्ष्य करके अथवा और किसी भी अभिप्राय से जो मेरानाम एकाध अक्षर जोड़कर या घटाकर भी कहता है उसे मैं निश्चय ही स्वलोक प्रदान कर देता हूँ । इसने मृत्यु के समय " प्रहर " शब्द का उच्चारण किया है । केवल " हर " शब्द ही परमपद देने वाला है । लेकिर इसने तो " प्र " शब्द अधिककहा है । यमराज से मेरा आदेश कह दो कि जो " शिव " नामके जपने वाले हैं, उन्हें तुम नमस्कार किया करो । जो व्यक्ति शिवनाम का स्मरण, अर्चन एवं कीर्तन करते हैं अथवा दास्यभाव से उनकी भक्ति करते हैं, श्रुति में वर्णित पन्चाक्षर मंत्र तथा शतरुद्रिय का अनुष्ठान करते हैं उन पर मेरा शासन है, इसमें रन्चमात्र भी संदेह का स्थाननहीं है ।

---

1. अथर्ववेद 5.6.1-10

2. पद्म पुराण- पातालखण्ड- शिवमृत्युसंवाद

तत्वज्ञ वैदिक ऋषिगण रुद्र के कल्याणमय स्वरूप से भिज्ञ थे और उनके वास्तविक महत्व को जानते थे। वेदों में वर्णित अनेक अग्निपरक सूक्तों में भी प्रकारान्तर से रुद्र की ही स्तुति की गयी प्रतीत होती है। एक स्थल पर स्तोता रुद्र की प्रार्थना करता हुआ कहता है कि "हे रुद्रदेव तू इन्द्र का घर है। मैं सभी प्रकार की गतियों से युक्त सभी पुरुषार्थों से युक्त सर्व आत्मबल से युक्त सम्पूर्ण शारीरिक शक्तियों से युक्त हो कर आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। जो कुछ मेरा है, उसके साथ सभी शारीरिक शक्तियों से युक्त तुझमें प्रविष्ट होता हूँ।

"इन्द्रस्य गृहोऽसि। तं त्वा प्रपद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन।।"[1]

ये रुद्र देव न केवल अपने उपासकों का ही मङ्गल करते हैं अपितु असुरों एवं अन्य बुरी प्रवृत्तियों सेसम्पूर्ण मानव की रक्षा करते हैं। इसलिये ये नियामक, पापियों के मारक, पोषक, हिंसक, शस्त्र फेंकने वाले नीले ध्वज से युक्त तथा सम्पूर्ण आयुधों से सज्जित इस जगत् के आदि रक्षक हैं।[2]

---

1. अथर्ववेद 5.6.11-11

2. अथर्ववेद 6.93.1-2

वेदों में सूत्ररूप में वर्णित शिव के कल्याण कारी स्वरूप का सूक्ष्म रूप से जो तात्त्विक वर्णन मिलता है। परवर्ती भारतीय वाङ्मय में उसी की विशद् व्याख्या की गई है। न केवल पुराणों से अपितु संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में भी इसका प्रमाण उपलब्ध होता है।

ये रुद्रदेव उग्र होने के साथ- साथ परम कारुणिक भी हैं। जो गति योगियों और काशी में शरीर छोड़ने वालों की होती है वही गति से कल्याणमूर्ति शिव अपने नाम का कीर्तन करने वालों को दे देते हैं। स्वयं "श्री शिव" ही कहते हैं कि "जो मानव [1] मेरे मुक्ति दायक महेश, पिनाक पाणि, शम्भु गिरीश, हर, शङ्कर, चन्द्रमौलि, विश्वेश्वर, अन्धकरिपु, पुरसूदन आदि नामों का उच्चारण करते हुये मेरी अर्चनाकरते हैं वही श्लाघ्य है, वन्दनीय है, जो। नीललोहित, दिगम्बर, कृत्तिवास, श्रीकण्ठ, शान्त निरुपाधिक, निर्विकार, मृत्युन्जय, अव्यय, निधीश, गणेश्वर इत्यादि नामों का उच्चारण करते हुये अर्चन करते हैं कि वे साधुवाद के पात्र हैं। मेरे नाम रुपी अमृत का पान करने वाले तथा मेरे लिङ्गों का पूजन करने वाले मेरे प्रिय भक्त पुनः माता का दुग्धपान करने की न तो वह कामना करते हैं और न उन्हें फिर वह प्राप्त ही होता है। वे तो सम्पूर्ण दुःखों से मुक्ति पाकर मेरे लोक में अनन्त काल तक निवास करते हैं। महेश रुपी नाम की दिव्य अमृत धारा से परिप्लावित मार्ग में से होकर जो भी प्राणी निकल जाते हैं उनकी सांसारिक दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है और वे कदापि शोक को नहीं प्राप्त होते हैं।

1• पद्म पुराण शिवरहस्य सप्तमांश अध्याय- 1

रुद्र अथवा शिव का कल्याणमय नामरू दावानल की भाँति पापपुन्ज समूह को दग्ध कर देता है । केवल वेदों में ही नहीं अपितु पौराणिक साहित्य में भी शिव के इस कल्याणमय रूप की बार-बार स्तुतियों के रूप में, कथानकों के रूप में और आख्यानों और उपाख्यानों के रूप में वर्णन उपलब्ध होता है ।दुर्गुणों और दुर्वृत्तियों को नष्ट करने में रुद्र नाम की उपमा बज्रपात की तरह दी गयी है । जिस प्रकार कालाग्नि की प्रचण्ड ज्वाला में करोड़ो पर्वत भस्म होगये थे, उसी प्रकार मेरे नाम रूपीअग्नि से करोड़ो महापातक नष्ट हो जाते हैं । ये रुद्र इतने मङ्गलकारी हैं कि "यदि किसी चाण्डाल का चित्त इनमें अनुरक्त है, तो ये उसी भी इस संसार समुद्र से तार देते हैं । रुद्र के इसी कल्याणकारी स्वरूप की श्रुतियाँ भूरि भूरि उच्च स्वर से गुणगान करती है । सम्भवत: इसी लिये रुद्र को तारक ब्रह्म अर्थात् संसाररूपी अर्णव के उद्धार करने वाला ब्रह्म कहा गया है ।

"नमस्ताराय" (यजुर्वेद)

शिव पुराण के अनुसार मानव में दुर्गुणों का निवास तभी तक रहता

---

1. यजुर्वेद 16-40

है, जब तक वह महापातकों के विनाशक भगवान रुद्र का ध्यान नहीं करता है, उनकी स्मृति होते ही पापपुन्ज वैसे ही नष्ट हो जाते है, जैसे समुद्र में नदियाँ लीन हो जाती है। जो प्राणी मेरे "सोम" नाम का स्मरण करते हुये शरीर छोड़ता है वह साक्षात् मेरे स्वरूप का होकर मेरे धाम में निवास करता है। इसी पुराण में स्वयं श्री शिव ही यम को निर्देश देते हैं कि हे यम! मैं तुम्हारे कल्याण की एक बात कहता हूँ। वह यह है कि तुम नित्यप्रति यत्नपूर्वक मेरे उपासको की सेवा किया करो, क्योंकि वे मुझे सर्वदा प्यारे हैं।[1]

ये रुद्रदेव लोक कल्याणार्थ विद्युन्मय होकर पृथ्वी पर जल का वर्षण करते हैं और रोग निवारक औषधियों का सृजन करते हैं।[2]

भारतीय संस्कृति में रुद्र को अद्भुत कर्मों का कर्ता भी कहा गया है जहाँ एक ओर वे उग्र, हिंसक, मारक, शस्त्र फेंकने वाले, रुलाने वाले आदि विशेषणों से युक्त है वहीं उनका एक दूसरा रूप भी है जो चन्दन की तरह व्यक्ति के जीवन में शीतलता का सन्चार करदेता है। रुद्र के इसी मङ्गलमय स्वरूप को देखकर ऋषि कहता है कि अस्त्र फेंकने वाले हिंसक के लिये और

---

1. शिवपुराण सप्त0 अ0 - 20
2. ऋ0 सं0 1.114.1

उन्नति करने वाले राजा के लिये, मन से, बुद्धि से, होमो से और शक्ति से नमन करता हूँ । क्यों कि वह पापरूपी विष से संसार की रक्षा करता है ।[1] वह रुलाता भी है तो उन्हीं को जो असुर प्रवृत्ति के है और जो अन्याय को ही अपना धर्म समझते हैं । यजुर्वेद में रुद्र के इस स्वरूप का स्पष्ट वर्णन मिलता है ।[2]

ये रुद्रदेव नियामक भी है क्यो कि संसार के कल्याण के लिये ये रुद्रदेव मित्र तथा वरुण के साथ मिलकर उसे चेतनाशील करते हैं ।[2]

महान से महान पापी भी कल्याणमय शिव के अन्तसमय नामोच्चारण से यम का द्वार नहीं देखता । यही नहीं यमराज स्वयं गौतम ऋषि से कहते है कि " शिव शब्द का उच्चारण किये बिना ब्राह्मण भी मुक्त नही हो सकता और शिव शब्द का उच्चारण करके एक चाण्डाल भी मुक्त हो सकता है । यो तो शिव के सभी नाम मोक्षदायक हैं, किन्तु उन सब में शिव नाम सर्वश्रेष्ठ है, उसका माहात्म्य गायत्री के समान है ।[3]

---

1. अथर्ववेद 4.3.1-7
2. यजुर्वेद 16/46
3. ऋग्वेद 1.43.3-5

रुद्र अथवा शिव के कल्याणकारी स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों में वैचारिक मतभेद भी प्राप्त होते हैं जिनके अनुसार वेदों में विशेषत: ऋग्वेद में जो वर्णन मिलता है उससे ये प्रतीत होता है कि ये तामसिक हैं और उनकी महिमा का गान करने वाले शास्त्र भी तामसिक हैं इसी लिये ये दोनों तमोगुणी मनुष्यों के उपास्य हैं। लेकिन तात्विक दृष्टि से ये बाते निराधार ही प्रतीत होती है क्यो कि श्रुति स्वयं कहती है कि " उमादेवी सहित परमेश्वर, सब के प्रभु, त्रिनेत्र, अत्यन्त शान्त, स्वरूप, नीलकण्ठ, महादेव का ध्यान करके अधिकारी पुरुष अद्वितीय ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं। वे महादेव ब्रह्म सम्पूर्ण भूतों की योनि अर्थात कारण है। समस्त जगत के साक्षी है और " तम " से अत्यन्त परे हैं[1]।

" उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमस: परस्तात् ।। " § श्वेता0§

महाभारत में भी कहा गया है-

"रुद्रो नारायणश्चैवेत्यवं
सत्वं द्विधा कृतम् ।।

1- कैवल्योपनिषद्- 7

लोके चरति कौन्तेय

व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु[1] ।।

ये रुद्रदेव अपने स्तोताओं ~~के स्तोताओं~~ के त्रिविध तापों से न केवल रक्षण करते हैं अपितु उत्कृष्ट तत्त्व ज्ञान के द्वारा संसारसागर से मानव को पार करादेते हैं[2]। जो मानव रुद्र के इस कल्याणकारी स्वरूप को जानता है वह सभी पाशों से मुक्त हो जाता है[3]।

ये मङ्गलमय रुद्रदेव न केवल प्राणियों के आश्रय स्थान है अपितु देवों के भी है । अथर्ववेद[4] में स्तोता रुद्र के इसी कल्याणमय रूप का ध्यान करता हुआ कहता है कि- आप इन्द्र के आश्रय स्थान है इसी लिये मैं सभी गतियों, पुरुषार्थ, आत्मिक बल, शान्ति से युक्त होकर जो कुछ भी मेरे पास है उसके साथ तुझको प्राप्त होता हूं और तुझमें आश्रय लेता हूं[5] ।

महाभारत अ0 347·7

2· यजुर्वेद रुद्र मं0 सं0 42

3· श्वेता 4·16

4· अथर्ववेद 5·6·11

5· अथर्व 5·6·13

" इन्द्रस्य शर्मासि । तं त्वा प्रपद्ये तं त्वाप्रविशामि । सर्वगु : सर्वपूरूष: स्वात्मा सर्वतनु: सह यन्मेस्ति तेन ।। " (अथर्ववेद)

असुरो से रक्षा के लिये देवगण इन्हीं मङ्गलमय रुद्रदेव की शरण ग्रहण करते थे । अथर्ववेद में स्तोता प्रार्थना करता है कि- हे रुद्रदेव आप इन्द्र के कवच है । इसलिये मैं अपना सर्वस्व आपके चरणों में अर्पित कर आपकी शरण ग्रहण करता हूँ ।

" इन्द्रस्य वर्मासि । तं त्वा प्रपद्ये तं त्वाप्रविशामि सर्वगु: सर्वपूरूष: स्वात्मा सर्वतनु सह यन्मेस्ति तेन ।। "

वेदादि धर्मशास्त्रों में वर्णित तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि भगवान शिव नित्यानन्द सुख सम्पत्ति, ऋद्धि सिद्धि , बल वैभव स्वास्थ्य निरोगता एवं लौकिक- पारलौकिक शुभ फलों के दाता है । सम्भवत: रुद्र की इन्हीं विशेषताओं के कारण इन्हें देवो में " महादेव " की पदवी से विभूषित किया गया है । अव्यय, अनन्त, अटल, अमर, नित्य, आनन्द स्वरूप होने से ही इन्हें सदाशिव भी कहा जाता है । रुद्रदेव का चरित्र विविधता भरा है । जहाँ से एक ओर भयङ्कर रुद्रत्व है, वही दूसरी तरफ भोलानाथ भी है। पुराण वर्णित रावण, भस्मासुर प्रसङ्ग इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य हैं ।

ये रुद्रदेव योगियों के योगी महायोगी हैं । सम्पूर्ण योगशास्त्रका चमत्कार इन्हीं की ही कीर्ति है । योगियों की आयुवृद्धि के लिये ही आपने पारद- शास्त्र का आविष्कार किया । इस शास्त्र में वर्णित साधनों द्वारा योगीजन इच्छानुरूप कायाकल्पकर सहस्त्रों वर्षों तक अपनी आयु की वृद्धि कर सकते हैं । शिव का अर्थ ही होता है अर्थसुख, शान्ति, ऐश्वर्य, सम्पत्ति एवं सौमाङ्गल्य है । भगवान शिव इन सभी के अटूट , अव्यय अनन्त भण्डार हैं । व्याकरण के मूलतत्वों का विकास भी इन्हीं की डमरू, ध्वनि हुआ माना जाता है कामशास्त्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी कहाजाता है कि इसका आचार्य नन्दी आपका अनुचर और सेवक ही था । इस प्रकार अनेकानेक विद्याओं और कलाओं के जन्मदाता औरप्रवर्तक भगवान शिव को ही माना जाता है ।

निष्कर्षतः वैदिक वाङ्मय में रुद्र अथवा शिव का स्वरूप उग्रता तीक्ष्णता और विनाशक होते हुये भी अपने अन्दर अतिशय दयालुता एवं मङ्गलमय स्वरूप को आत्मसात किये हुये हैं । तत्त्वज्ञ वैदिक ऋषिगण रुद्र के विनाशक स्वरूप में ही मानव कल्याण की प्रतिमूर्ति देखते थे । ये शिव अपने स्तोताओं का मङ्गल तो करते ही थे, देवगण भी आसुरी प्रवृत्तियों द्वारा होने वाली बाधाओं के शमन के लिये इन्हीं कल्याणकारी रुद्र की शरण

ग्रहण करते थे । अथर्ववेद[1] में स्तोता कहता है कि हे रुद्रदेव । आप इन्द्र की अर्थात् देवताओं की ढाल है, जिस तरह शत्रु के आक्रमण को ढाल पर रोकाजाता है उसी प्रकार देवगण भी इन्द्र के नेतृत्व में असुरों द्वारा होने वाले आक्रमणों को आपको ही ढाल बनाकर दूर करते थे । इसीलिये हम अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य के साथ आपकी शरण ग्रहण करते हैं, आप हमारा मङ्गल कीजिये, क्यो कि आप साक्षात् मङ्गलमूर्ति हैं ।

इन्द्रस्यवस्यमसि । तं त्वा प्रपद्ये तं त्वा प्रविशामि सर्वगुह सर्वपूरुष: सर्वात्मा सर्वतनु: सह यन्मेऽस्ति तेन ।।"

" शिव और उनकी शक्ति"

वैदिक धर्म- दर्शन में शिव और शक्ति ये परतत्व के दो रूप है । शिव कूटस्थ तत्व है और शक्ति परिणामिनी है । विविध वैचित्र्य पूर्ण इस निखिल विश्व के रूप में अभिव्यक्त शक्ति का आधार एवं अधिष्ठान

1· अथर्व 6·93·1-2

शिव ही है । शिव अव्यक्त, अदृश्य सर्वगत एवं अचल आत्मा है । शक्ति दृश्य, चल एवं नाम रूप के द्वारा व्यक्त सत्ता है । शक्ति नहीं शिव के अनन्त शान्त एवं गम्भीर वक्ष स्थल परअनन्त कोटि ब्रह्माण्डो का रूप धारण कर तथा उनके अन्दर सर्ग स्थिति एवं संहार की त्रिविध लीला करती हुई नृत्य करती रहती है ।

शिव और शक्ति दोनों एक दूसरे के पूरक हैं शिव " इकारशून्यहोने पर शव हो जाते हैं और शक्ति का अस्तित्व भी शिव अथवा चैतन्य के विना सम्भव नहीं शक्ति जब शिव के साथ मिल जाती है तब वही ब्रह्म और वही ब्रह्ममयी हो जाती है । अत: ऐसी अवस्था में शक्ति शक्तिमान से अभिन्न है । शक्ति आत्मा की अस्पन्द स्वरूपिणी है । शक्ति जब स्पन्दस्वरूपिणी होती है तब वही जगत् का आकार- धारण करने वाली विश्वरूपिणी बनती है । इस प्रकार शक्ति स्पन्द स्वरूपिणी और अस्पन्दस्वरूपिणी दोनों है । स्पन्द स्वरूपिणी महामाया ही जगत को मोहग्रस्त करती है और वहीं महामाया प्रसन्न होने पर वरदा होकर मुक्ति प्रदान करती है ।

महातत्वादि रूप व्यापक इन्द्रियों से सब देशों और समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करने वाली ये महामाया अपने उत्पन्न किये हुये जगत् के जीवों के शुभाशुभ कर्मों को विशेष रूप से देखती है और अनुरूप फल की व्यवस्था

1· ऋग्वेद 10·127·1

करने के लिये समस्त विभूतियों को धारण करती हैं।[1] "श्री चण्डी" में शक्ति के सम्बन्ध में छः प्रश्न किये गये हैं-

"भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज।
यत्स्वभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा।।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर।।"

इन प्रश्नों का उत्तर देते हुये ऋषि कहता है कि वस्तुतः वे महामाया नित्यस्वरूपा है, सम्पूर्ण जगत् उन्हीं का है तथा समस्त विश्व को उन्होंने व्याप्त कर रखा है, तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकार से होता है। यद्यपि वे देवी नित्य और अजन्मा है, फिर भी देव कार्य हेतु प्रकट होती है, उस समय वे लोक में उत्पन्न हुई कहलाती है।[2]

"नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया
सर्वमिदं ततम्।।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।।" 65

---

1. ऋ० 10.127.2
2. दुर्गासप्तशती प्रथम अ०

अथर्ववेद के अनुसार एक बार सभी देवता देवी के समीप गये और नम्रता से पूछने लगे कि हे महादेवि आप कौन हैं? इस पर देवि ने उत्तर दिया कि मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ। मुझसे प्रकृति पुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है। मैं आनन्द और आनानन्दरूपा हूँ। मैं विज्ञान और अविज्ञान रूपा हूँ। जानने योग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूँ। पन्चीकृत और अपन्चीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ। यह जो कुछ भी दृश्यमान जगत् है वह मैं ही हूँ। मेरे द्वारा ही सोम, त्वष्टा, विष्णु, प्रजापति को धारण किया जाता है तथा मैं ही मित्र वरुण, इन्द्र एवं अग्नि तथा अश्विनी कुमारों का भरण - पोषण करती हूँ।

अहं ब्रह्म स्वरूपिणी मत्तः प्रकृति पुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च। अहमानन्दानानन्दो। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्मा ब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पन्चभूतान्यपन्चभूतानि अहमखिलं जगत्। अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ। अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि।।"

{ अथर्ववेद }

प्रश्न यह होता है कि परमात्मा के इन दोनों स्वरूपों के सर्वोच्च एवं व्यापक ज्ञान के द्वारा मुमुक्षु को मोक्ष एवं आश्रय सुख की प्राप्ति किस प्रकार होती है?

तत्वज्ञ वैदिक ऋषियों के मत में शिव का साक्षात्कार करना व्यष्टि भाव को लाँघकर ऊँचा उठना है इस व्यष्टिभाव के अन्दर उपाधियुक्त एवं व्यावहारिक जीवन का ज्ञान रहता है, जो अज्ञान एवं दुःख का कारण है। शक्ति के चरणों में आत्म समर्पण करना ही शिव के साक्षात्कार का साधन माना गया है। यहाँ आत्म समर्पण का अभिप्राय देहाभिमान से ऊपर उठ जाना है। जीवन के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों ही रूपों में जो कुछ भी क्रियायें परिवर्तन एवं चेष्टाएं होती है, सभी शक्ति के ही कार्य हैं और वह शक्ति वह ईश्वरीय तत्त्व है जो समस्त चराचर जगत् में व्याप्त है तथा जो स्वयं जगत् के रूप में अभिव्यक्त है।

आत्मसमर्पण अर्थात् व्यष्टि बुद्धि को शिव के समष्टि तत्त्व में विलीन करदेने से जब आत्मा को परमात्मा के शिव तत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है तब उसे उस परम शिव के पूर्णस्वरूप की समग्रास्पेण उपलब्धि हो जाती है। पारमार्थिक दृष्टि से वह परमात्मतत्त्व शिव और शक्ति दोनों है और दोनो से परे भी है। इस प्रकार की जब प्रकाशमयी स्थिति आ जाती है तब जीव व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार के तत्त्वों का ज्ञान तथा उनके संयोग में निरतिशय स्वतन्त्रता का अनुभव करता है और अमृतत्व के आनन्द का उपभोग करता है।

ये शक्तिरूपिणी महामाया पूज्यों में प्रथम ज्ञानवती हैं इन्हीं को

देवगण विभिन्न स्थलों पर पृथक्पृथक् स्थापित कर उनका अर्चन करते हैं ।

ऋग्वेद में स्वयं ही शक्ति की अधिष्ठातृदेवी महामाया कहती है कि मानव जो कुछ भी अन्न खाता है, चक्षु द्वारा देखता है, कर्ण द्वारा सुनता है, श्वास लेता है, ये सभी क्रियाये मेरे द्वारा ही सम्पन्न होती है । मेरी शक्ति को या मुझको न मानने वाले स्वयमेव ही विनाश को प्राप्त हो जाते हैं ।

" मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति
श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ।। "

ऋग्वेद

वैदिक वाड्मय के अनुसार " उमारूपी " शक्ति से विशिष्ट ही परमशिव ब्रह्म है । यह शक्ति ब्रह्म से भिन्न नहीं है । जिस प्रकार बीज में अड्कुरोन्मुख शक्ति न रहे तो आगे वह पल्लवित होकरफल नहीं सकेगा । विशाल और महत्तर काय वृक्षमात्र को अपने में अन्तर्गत करने

1· ऋ0 10·125·4

की शक्ति बट बीज में माननी ही पड़ेगी । इसी प्रकार इस निखिल जगत में दृश्यमान जो कारणवस्तुएं है उनमें ब रहने वाली कार्यानुकूल शक्ति के अस्तित्व को स्वीकारकरना ही पड़ेगा । अग्नि में दाहानुकूल शक्ति के अभाव में प्रतिबन्धक मणि के रहने पर भी उससे दाह क्रिया हो जानी चाहिये । और उत्तेजक मणि की सन्निधि में दाह क्रिया नहीं होनी चाहिये, परन्तु ऐसा सम्भव नहीं होता । इसलिये प्रतिबन्धक के रहने पर दाह शक्ति के संकोच को और उत्तेजक के होने पर उसके विकास को अग्नि के अन्दर स्वीकार करना ही पड़ेगा । यह शक्ति अग्नि से न अनतिरिक्त किन्तु भिन्नाभिन्न अवश्य है । जैसे चुम्बक में यदि शक्ति न हो तो उसके आकर्षण रूपी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती, उसी तरह परमशिव ब्रह्म में यदि शक्ति न हो तो इस निखिल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति भी नहीं होती । संभवत: इसी लिए श्रुति भी कहती है- " उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।" अत: स्पष्ट है कि शक्ति रूपिणी महामाया अर्थात् उमा से युक्त परमशिव ही ब्रह्म है । यह शक्तिरूपिणी उमा रज्जु से सर्प की भाँति मिथ्या नहीं है, किन्तु सहजसिद्ध है । श्रुति स्वयं कहती है[1] ।

" परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ।
स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च ।।"

1· श्वेता० 5/6

यजुर्वेद भी इसी तथ्य का प्रतिपादन करता है-

" एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे आखुस्ते रुद्र पशुस्तं
जुषस्वैष ते भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व ।। "

क्रान्तिदर्शी महर्षि रुद्र की उपासना शक्ति के साथ ही करते थे। उनकी दृष्टि में धर्मरूपिणी शक्ति और धर्मिरूपी शिव- इन दोनों में शिव ही एकमात्र क्रतुपति है, लेकिन उनका यह क्रतुपतित्व शक्ति से युक्त होने पर ही सिद्ध होता है। यजुर्वेद में शक्तिरूपिणी उमा के लिये प्रयुक्त " अम्बिका " शब्द अपने अन्दर एक निगूढ रहस्य को आत्मसात किये हुये हैं। अमरकोष के अनुसार अम्बिका शब्द का अर्थ होता है जगज्जननी। इसलिए ऋषिगण अम्बिका से युक्त शिव को आहुति देते समय हविर्भाग को स्वीकार करने की प्रार्थना करते थे-

" नमो हिरण्यबाहवे हिरण्यपतये अम्बिकापतये उमापतये नमो नमः ।। "

§ यजुर्वेद §

श्रीमन्नीलकण्ठ शिवाचार्य ने अपने ग्रन्थ " क्रियासार " में अम्बिका से युक्त शिव शक्ति को अखिल जगत् की उत्पत्ति का कारण माना है। उनके अनुसार " जिस प्रकार पुष्प की कली में रहने वाली शक्ति जब विकासोन्मुख होगी तब उसका कोरकभाव विलीन हो जायेगा और उसके अन्दर गन्ध का संचार होने लगेगा। उसके पश्चात् वायु सम्पर्क से पुष्प के अवयव भी गन्ध विशिष्ट हो जायेंगे, इस प्रकार विकसित अवयव वाले पुष्प से बाहर निकल

आ जायेंगे । उसी प्रकार शिव की चिच्छक्ति भी जब अङ्कुरोन्मुख बीज की भाँति सृजनोन्मुख होती है, उस समय शक्ति से ही सकल चेतनाचेतनरूपी शिवांश शक्ति विशिष्ट होकर प्रकट हो जाता है । शिशु बन्धन में फँसकर जब विकल होकर रुदन करता है तब उसे छिपकर देखने वाली माता तुरन्त आकर उसे अपने स्नेहमय गोद में उठा लेती है और उसके संकट को दूर कर उसे सुख देती है, वैसे यह सांसारिक जीव भी जब चित्तरूपी बन्धन में फँसकर संसारिक तापत्रय की अग्नि से जलता हुआ जब विकल हो जाता है तब वह जगज्जननी चिच्छक्ति परानंदमय विमर्शक शक्ति प्रकट होकर जीव की सम्पूर्ण संसारिक तापाग्नि को शमन करती हुयी जीव भाव को भी नष्ट कर उस शुद्धांश को शिव में मिलाकर " शिव " बना देती है ।

वस्तुत: श्रुति में " अम्बिकया " पद के साथ प्रयुक्त " स्वसा " शब्द का अर्थ ही है-" सहजसिद्ध " । शिव में वह शक्ति नित्य एवं स्वभाव सिद्ध है । जैसे पुष्प में गन्ध, चन्द्र में चन्द्रिका, प्रभाकर में प्रभा स्वभावसिद्ध है उसी प्रकार शिव में शक्ति का होना भी नित्य एवं स्वभावत: सिद्ध है ।

शक्तिविशिष्टाद्वैती मत में शिव और उनकी शक्ति का जो लक्षण दिया गया है वह इस प्रकार है-

" शक्तिश्च शक्तिश्च शक्ति:, शक्तिभ्यां विशिष्टौ शक्तिविशिष्टौ, शक्तिविशिष्टयो: अद्वैतं शक्तिविशिष्टाद्वैतम् ।। "

इस सिद्धान्त के अनुसार भी शिव और उनकी शक्ति में अभिन्नता ही

सिद्ध होती है । क्यों कि शिव ही " एकमेवा द्वितीय ब्रह्म है । " शक्त्या विशिष्टौ " में " विशिष्टौ " पद से तात्पर्य शिव और जीव से है । इनमें रहने वाली दो शक्तियाँ है जिसे चिच्छक्ति और चित्त शक्ति कहते हैं । इनमें सामरस्य अर्थात् अभेद ही है । शिव और जीव को ही " लिङ्ग और " अङ्ग कहा गया है । चिच्छक्ति को ही " विमर्श शक्ति " या " इच्छा-शक्ति " भी कहते हैं । जब यह शक्ति फूले हुये बीज की भाँति सृष्ट्युन्मुख होकर अपने अन्दर स्थित समरस ज्ञान क्रियाओं का परस्पर भेद करती है । वह भेद बुद्धि ही भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार मायातत्त्व है । जब वही माया स्वयं प्रति- स्फुरण गति से प्रविष्ट होकर सुख- दुःख एवं मोह को पैदा करती है । तब उसी को प्रकृति अथवा चित्तशक्ति कहते हैं । इस प्रकार चित्तशक्ति विशिष्ट (शिवांश) चैतन्य) ही अङ्ग है । इसके जीव और "पुरुष" ये दो नाम भी हैं । " चित्तमात्मा " नामक शिव सूत्र से भी यही सिद्ध होता है । जगद्गुरु रेणुकाचार्य भगवत्पाद भी इसी मत की पुष्टि करते हैं-

" अनाद्यविद्यासम्बन्धात्तदंशो जीवनामकः "

इस सम्बन्ध में श्री नीलकण्ठ शिवाचार्य की-

" शिवांशा ब्रह्मविष्ण्वाद्या अंशी देवः शिवः स्मृतः " नामक उक्ति श्रीमद्भागवद्गीता का " ममैवांशो जीवलोके " यह वचन तथा ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्य का " अंशो नाना व्यपदेशात् " प्रमाण रूप से प्रसिद्ध हैं ।

सांसारिक मोहों तथा मलावरण के कारण इस शिवांश रूपी जीव को उसी प्रकार अपने शिवत्व का स्मरण नहीं रहता जिसप्रकार पैदल चलने वाले राजा को अपने राजा होने का । परम शिव स्वयमेव अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से लिड्•गाड्•गत्व से तथा उपास्योपासक भाव से युक्त होकर स्मरण करता है ।

मुक्तदशा में जीव का जो चित्तशक्ति नामक विशेषण है जब उसमें निवास करने वाले मलरूपी अज्ञान एवं तमोभूत अविद्या का लय हो जाता है, तब उसी जीव की चित्तशक्ति चिति शक्ति रूपिणी हो जाती है ।

श्रीमद्भागवतमहापुराण के अनुसार जब तम में भगवान् अपनी सर्वसामर्थ्य रूपा और सर्वप्रकृतिरूपा माया से आकृतियुक्त होकर प्रवेश करते हैं तब उनका गुणावतार होता है । इसी तत्त्व को "परमशिव" कहते हैं[1]।

ऋग्वेद[2] के अनुसार यह शिव शक्ति रूपिणी महामाया ही सम्पूर्ण जगत् का सृजन करती हुयी इस विश्व में वात के सदृश प्रवाहित होती है । ये द्युलोक तथा इस पृथ्वी से भी परे हैं । अथर्ववेद भी इसी मत की पुष्टि करता है[3]।

1• श्रीमद्भागवत् स्कन्द 5 अ0 17 श्लोक- 16

2• ऋग्वेद 10•125•8

3• अथर्ववेद 3•30

" अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा ।

भुवनानि विश्वा ।

परो दिवा परएना पृथिव्येतावती महिना सं बभूव ।।" ऋग्वेद[1]

शिवशक्तिरूपिणी महामाया के इस रहस्य को जानने वाला उनकी कृपा से ब्रह्मा ऋषि और ज्ञानी बन जाता है ।

" यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि ।

तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ।।"

वैदिक ऋषियों के अनुसार " शिव " में जो शक्ति है वह धर्मरूप है जो धर्मीरूप पर शिव से भिन्न नहीं है । पर शिव सर्वज्ञ, नित्यतृप्त, परिपूर्ण सुखमय और सकलैश्वर्य सम्पन्न है । इसलिये शिव और शक्ति में साधारणतया कार्य और कारण में जो विरोध का आभास होता है वह सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर निरर्थक ही प्रतीत होता है । ये दोनों एक दूसरे के पूरक है जैसे मकड़ी स्वेच्छा से ही अपने जाल को तैयार करती है तथा उसमें फंस कर छटपटाने लगती है और पुनः स्वयं उसे अपने अन्दर समेट लेती है, जैसे पृथ्वी में लता वृक्ष उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन भी हो जाते है, जैसे चेतन पुरूष से अचेतन केश और रोम पैदा होते हैं, जैसे जड़ पदार्थ

---

1. ऋग्वेद 10·125·5

गोमय में चेतन बिच्छू आदि कीड़े उत्पन्न होते हैं, वैसे ही परिपूर्ण और शक्तिविशिष्ट पर शिव से जड और अजडरूपी इस विश्व की उत्पत्ति होती है।"

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च
यथापृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि
तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ।। (मुण्डकोपनिषद्)

यह पर-शिव ही परमेश्वर है, जिससे इस अद्भुत जगत् की रचना होती है। कहा भी है-

"चिदात्मैव हि देवोऽन्तः स्थितमिच्छावशाद्बहिः ।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत ।।"

अर्थात् जैसे" योगशक्तियुक्तसिद्ध पुरुष अपनी इच्छा मात्र से बिना कारण सामग्री के ही मनोनुकूल वस्तु की रचना कर लेता है वैसे परमेश्वर भी इच्छा मात्र से ही अपने अन्दर स्थित सूक्ष्म शक्ति को प्रकट करके जडाजडात्मक जगत् की सृष्टि करता है। श्रुति भी इसी तथ्य का प्रतिपादन करती है।

---

2. तै० आ० प्रपा० 8 अनु० -2

प्रकृति की जो नित्य साम्यावस्था है वही परात्परा महाशक्ति उमादेवी है । यह महेश्वरपरात्पर पुरूषसे भिन्न नहीं है । परवर्ती भारतीय वाङ्मय में सम्भवत: इसी दृष्टि से इन्हें अर्धनारीनटेश्वर भी कहा गया है । दोनों एक साथ है, एक हैं । परा- प्रकृति की इस नित्यसाम्यावस्था में सृष्टि निमित्त जो संकल्प होता है वही त्रिगुण का संघर्ष है, यह संघर्ष ही सृष्टि का आद्यरूप है । यह संघर्ष युद्धरूप भी कहा जाता है क्यों कि उस युद्ध अर्थात् मूल रूद्र रूप की कल्पना त्रिगुण में बैठकर नहीं की जा सकती । तत्त्वज्ञ वैदिक ऋषियों के मत में इस त्रिगुणात्मक संसार में ज्ञानमूलक या अज्ञानमूलक जो कुछ भी संघर्ष, कलह, युद्ध और समर और भयङ्करता है वह उसी मूल के फैलाव का विकृत रूप है । सम्भवत: इसी लिये रूद्ररूप के मूलरूप होने से इस रूप में भगवान् को महादेव कहा गया है । जैसे- महाकाली आद्या शक्ति कही जाती है ।

वैदिक वाङ्मय के अनुसार " सृष्टि कर्म है, और कर्मज्ञान का रूपात्मक अंश है । नामरूपात्मक जगद्रूप जो कर्म हो रहा है उस कर्म में आद्यन्त व्याप्त ज्ञान ही गणेश है । सृष्टि कर्म के गणेश है । सृष्टिकर्म के मूल में जैसे संघर्ष रूप शिवहृदय रूद्र है संकल्पधारक और कर्म पालक विष्णु है, वैसे ही कर्मधारक श्री गणेश है । ये त्रिदेव हैं, ये ही ब्रह्मा- विष्णु - महेश हैं । तीनों ही एक साथ हैं एक हैं, परन्तु अज्ञान की भेद बुद्धि से भिन्न भिन्न हैं । अभेद बुद्धि मे ही श्री उमामहेश्वर हैं । सामवेद के तवलकार आरण्यक में वर्णित तथ्यों से भी इसी मत की पुष्टि होती है ।[1]

1• तवलकार आरण्यक- प्रपा० 10

श्री उमामहेश्वर की ती नों रूप धारण कर तीनों लोकों का सृजन करते हैं । ये त्रिदेव नाम रूपात्मक जगत् से परे हैं । नामरूपात्मक जगत् में सभी प्राणी सत्व- रज- तम के चक्र में घूमते रहते हैं । इसी को ऋषियों ने माया- चक्र कहा है । इसी त्रिगुणात्मक माया के वशवर्ती सभी प्राणी है। प्रकृति के गुण बलपूर्वक जिधर ले जाते हैं उधर ही जाना पड़ता है अज्ञान के कारण मानव की वृत्ति ढकी रहती है । यह अज्ञान ही तमोगुण है, परन्तु यह तम सहसा दूर नहीं होता । जब इस पर कोई भयङ्कर आघात होता है तब प्राणी के तम का मद उतरता है, यह आघात ही रुद्र का प्रहार है जिसका हेतु है तमावरणा को दूर कर देना । संभवत: रुद्र को महादेव मानने का एक यह भी हेतु है कि वे आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार के वैरियों का शमन करते हैं ।

आदि और अन्त दोनों में ही वही रुद्र हैं और उनके साथ विष्णु भी है और ब्रह्मा भी तत्त्वज्ञ वैदिक ऋषियों के अनुसार कारणभूत, महेश के रुद्र रूप के परित्राण के लिये हृद्देश स्थित विष्णु का प्रेम और आज्ञाचक्र स्थित नेत्र की स्थिर दृष्टि चाहिये । यही परमतत्त्व है जो नामरूपात्मक जगत् के परे तीन आत्मस्वरूप के नित्यभाव हैं ।

आत्म स्वरूप के ये नित्यभाव भी उमामहेश्वर की उमाशक्ति में है । उमाशक्ति ब्रह्मविद्या हैं और महेश्वर परब्रह्म हैं । परब्रह्म की प्राप्ति ब्रह्मविद्या के बिना नहीं हो सकती और ब्रह्म विद्या का निवास भी ब्रह्म

में ही रहता है। ब्रह्मविद्या की परिभाषा ही शास्त्रकारों ने ये बताया है "ब्रह्मापि विद्यते या सा ब्रह्मविद्या" यह ब्रह्मविद्या ही माता है, इसी को परात्परा उमाशक्ति भी कहा जाता है। अतः स्पष्ट है कि परात्पर परमधाम परब्रह्म की प्राप्तिके लिये मानव जो कुछ मन्त्र, स्तुति आदि करता है उस स्तुति में उस तप में उस ज्ञान में उन्हीं की सत्ता है। परमधाम को प्राप्त करने वाला ज्ञान कर्म भक्ति का जो सोपान है वह माता का ही स्तन पान है। ब्रह्म विद्या या उमामहाशक्ति के ही ये तीनो लोक हैं, तीनों वेद है, तीनों भाव है, और तीनों रूप है। परन्तु इन तीनों से परे एक और तत्त्व है जिसे निरालम्ब स्वरूप परब्रह्म या महेश्वर कहते हैं। उनकी प्राप्ति के लिये साधक जन जो साधना करते है, जिज्ञासु ज्ञानार्जन करते हैं और मुमुक्षु कर्माचरण करते हैं, वह सभी उन्हीं का है, जिनके लिये किया जाता है।

प्राचीन भारतीय आस्तिक परम्परा के मत में इस जगत का वैभव उस हिरण्यमयी पुष्करिणी के वैभव के समक्ष केवल पीतल पर स्वर्ण का पानी चढ़ाना प्रतीत होता है और इस जगत् के भयानक से भयानक दृश्य यहाँ तक कि प्रलय और महाप्रलय भी उस शिवहृदय महारुद्र के अखण्ड आनन्द लीला विलास के श्रृंगारहार प्रतीत होते हैं। इस लौकिक जीवन में अलौकिक अर्थात् परब्रह्म की प्राप्ति का जो साधन है वह है व्यक्ति की निरहंकार सत्ता। यह सत्ता ही उमा महेश्वर के पास ले जाने वाली माता, आद्यन्तव्यापिनी

सर्वशक्तिमयी –

सत्ता का प्रथम परिचय है । शास्त्रकारों ने जिसे ब्रह्मविद्या कहा है, वही इस प्रकार अखिल अनन्त, व्यापिनी, निराकार, निर्गुण और साकार गुणमयी उमा महेश्वरी हैं । वह स्नेहमयी माँ हैं, जो रुदन् करते हुये प्राणी को उठा लेती हैं, और उसे सुख पहुँचाती हैं । चूँकि वह स्नेहमयी माता स्वयं महेश्वर से भिन्न नहीं हैं इसलिये उनका उठा लेना उमा महेश्वर के चरणों में पहुँचना ही है ।

पौराणिक वाड्.मय में शिव और शक्ति के इसी स्वरूप को दृष्टि में रखते हुये अर्द्धनारीश्वर की पदवी से विभूषित किया गया है । इसको एक अत्यन्त रोचक एवं तात्त्विक आख्यान के माध्यम से स्पष्ट किया गया है । जब ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि से प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तब उन्होंने प्रजा वृद्धि का उचित उपाय जानने के लिये तप करना प्रारम्भ किया । तपस्या के फलस्वरूप ब्रह्मा के मन में आद्याशक्ति का उदय हुआ । उक्त शक्ति के आश्रय से ब्रह्मा त्र्यम्बकेश्वर शिव के ध्यान में प्रवृत्त हुये । श्री शिव ब्रह्मा के ध्यान एवं तप से प्रसन्न होकर अर्द्धनारीश्वर के रूप में { अर्थात् आधी नारी और आधे पुरुष रूप में } प्रकट हुये । उन्हें इस रूप में प्रकट हुआ देखकर ब्रह्मा ने शिव और उनकी शक्ति की स्तुति की । इस स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर ने अपने शरीर से एक देवी की उत्पत्ति की जिनकी संज्ञा परमा शक्ति थी । उस परमा शक्ति को उद्भूत हुआ देखकर ब्रह्मा ने उनसे कहा कि मैंने अब तक मन द्वारा देवता की उत्पत्ति की है किन्तु वे

बार- बार उत्पन्न होकर भी वृद्धिगत नहीं हो रहे हैं । इसलिये अब मैं मैथुनजन्य सृष्टि द्वारा प्रजा की वृद्धि करना चाहता हूँ । इसके पूर्व आपसे अक्षय नारी कुल की उत्पत्ति नहीं हुई थी, जिसके कारण मैं स्त्री के निर्माण में असमर्थ हूँ । अतएव हे महामाये ! आप कृपा पूर्वक और पुत्र दक्ष के यहाँ कन्या रूप में जन्म लीजिये ।[1] " शिव पुराण में वर्णित इस कथा के सम्बन्ध में विद्वानों में जो भी वैचारिक मतभेद हो, लेकिन इस कथा से तीन परम उत्तम सिद्धान्तों का सङ्केत मिलता है । प्रथम तो यह कि शिवलिङ्ग रूप में संसार के समस्त चराचर प्राणियों के साँचे हैं और जो साँचे की भाँति संकल्परूप में लिङ्ग के अन्दर नहीं है उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । दूसरा तथ्य यह है कि परात्पर शिव की प्राप्ति उनकी शक्ति से सम्बन्ध होने पर ही होती है, ठीक वैसे ही जैसे ब्रह्मा को हुई थी । तीसरी बात यह कि इस निखिल विश्व मानवी प्रजा का कारण अर्द्धनारीश्वर होने से सभी पुरुष शिव रूप और सभी स्त्रियाँ शक्ति रूपिणी हैं जैसा कि शिवपुराण[2] में लिखा है-

शङ्कर: पुमान् : सर्वे
स्त्रिय: सर्वा महेश्वरी ।।"

1• शिव पुराण वायवीय संहिता पूर्वभाग अ0 13/14

2• शिव पु0वा0सं0 पूर्वभाग अ0 4/55

वस्तुतः परवर्ती भारतीय पौराणिक वाङ्मय में सदा शिव से जो चैतन्य शक्ति उत्पन्न हुई और उससे जो चिन्मय आदि पुरुष हुये, वहीं यथार्थ में शिवलिङ्ग है, क्यों कि उन्ही से इस चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई है। वे ही सबके लिङ्ग अथवा कारण हैं और उन्हीं में इस विश्व का अवसान अर्थात् लय भी होता है।[1] शिव पुराण के अनुसार तो समस्त लिङ्ग पीठ (आधार) अर्थात् प्रकृति पार्वती और लिङ्ग को चिन्मय पुरुष समझना चाहिये। इन दोनों के सहयोग से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई है।

" पीठमम्बामयं सर्वं शिवलिङ्गञ्च चिन्मयम् "

स्वयं भगवान् शिव ही कहते हैं कि जो प्राणी लिङ्ग (महाचैतन्य) को संसार का मूल कारण और इस कारण जगत् को लिङ्गमय (चैतन्यमय) समझकर इस आध्यात्मिक दृष्टि से भक्तिपूर्वक लिङ्गार्चन करता है वही मेरी यथार्थ पूजा करता है।[2] यथा-

" योऽर्चयाऽर्चयते देवि पुरुषो मां गिरेः सुते।
लोकं लिङ्गात्मकं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयते हि माम्।
न मे तस्मात् प्रियतरः प्रियो वा विद्यते ततः।।"

---

1. शि० वि० सं० अ०-9
2. शि० सनत्कु० सं० अ०-30

भारतीय ऋषि परम्परा शिव और
शक्ति को एक दूसरे से उसी प्रकार अभिन्न मानती है जिस प्रकार शिव और उसका प्रकाश, अग्नि और उसका ताप तथा दूध और उसका श्वेतवर्ण। शिव की आराधना शक्ति की आराधना है और शक्ति की उपासना शिव की उपासना है। इन दो परस्पर विरोधी एवं प्रतिद्वन्द्वी प्रतीत होने वाले तत्त्वों, शिव और शक्ति की विषमता एवं विरोध का सामन्जस्य ही परमात्म-तत्त्व का रहस्य है।

ये रुद्र की शक्तिरूपिणी महामाया मानव के कल्याण के निमित्त ही महाकाली रूप धारण कर ब्रह्मद्वेषी एवं मानव के शत्रुओं का संहार करती है तथा द्युलोक और पृथ्वी लोक में समायी हुई है।

"अहं जनाय समदं कृणोम्य-
हं द्यावापृथिवी आ विवेश।" (ऋ0)

ऋग्वेद के अनुसार ये देवी ही संसार के ऊपर द्यु पिता को उत्पन्न करती है। इनका उत्पत्ति स्थान जल के भीतर समुद्र में है, वहाँ से ही ये देवी सम्पूर्ण भुवनों में पृथक् पृथक् अवतरण करती है और इस द्युलोक को चूडा के द्वारा समीप से परसती है[2]।

---

1. ऋ0 सं0 10.125.6
2. ऋ0 सं0 10.125.7

" अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्
मम योनिरप्स्वन्त: समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवना नु
विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ।। "

वस्तुत: शिव और उनकी शक्ति का स्वरूप आनन्द है । यह ब्रह्म और माया का सम्मिलित आनन्द ही उमा का शरीर है, शक्ति के सगुण स्वरूप का विकास तथा दोनों का सम्मिलन ही नृत्य है । इस नृत्य का स्थल है- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ।

उनका शरीर आकाश है । उसमें काला बादल " अपस्मार पुरुष है । आठो दिशाएं उनकी आठ भुजाएं हैं । तीन ज्योति उनके तीन नेत्र हैं "। इस प्रकार वह सर्वनियन्ता परमेश्वर शक्ति के साथ आत्मविकास करके और हमारे शरीर को ही सभा बनाकर उसमें नृत्य करते रहते हैं ।

ये रुद्र की शक्ति विश्वमोहिनी है । पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण को ये धारण करती है । यही ऐश्वर्यशालिनी " श्रीमहाविद्या " है । जो महामाया भगवती के इस रहस्य को जानता है। वह शोक से मुक्त हो जाता है[1]।

" एषाऽऽत्मशक्ति: । एषा विश्वमोहिनी ।।

1• दुर्गासप्तशती - पृ0 सं0 46-47

पाशाङ्कुशधनुर्बाणां धरा । यथा श्री महाविद्या य एवं वेद स शोक तरति।।"

अथर्ववेद में स्तोता प्रार्थना करते हुये कहता है कि प्राण रूप देवों ने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणी को उत्पन्न किया, वह कामधेनु तुल्य आनन्द प्रदान करने वाली अन्न तथा बल की अधिष्ठातृ देवी उत्तम स्तुति से सन्तुष्ट होकर हमारे अन्धकार को दूर करे।[1]

"देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपा: पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना- धेनुर्वाग स्मा नु सुष्टु तैतु ।। 10 ।।

भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार "ये देवी शिवशक्त्यभेदरूपा, ब्रह्मा विष्णुशिवात्मिका, सरस्वती, - लक्ष्मी- गौरीरूपा अशुद्ध - मिश्र शुद्धोपासनात्मिका, समरसी भूत- शिवशक्त्यात्मक ब्रह्म स्वरूप का निर्विकल्प ज्ञान कराने वाली सर्वतत्वात्मिका महेश्वरी है"।[2] यह सर्वात्मिका ही मूल विद्या है और ब्रह्मस्वरूपिणी है ।

"कामो योनि: कमला वज्रपाणिर्गुहा
हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्र: ।

---

1. दुर्गासप्तशती पृ0 सं0 46-47
2. अथर्ववेद 10.90.4

पुनर्गुहा सकला मायया च

पुरूच्यैषा विश्वमाता दिविधोम् ।। 4 ।।

यह निखिल जगत् देवीमय है । क्यो कि वे ब्रह्मस्वरूप भगवती आदित्यो, विश्वदेवों, मित्र, वरूण, इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनों को धारण करती है ।[1]

" अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चराम्य-

हमादित्यैरूत विश्वदेवैः ।

अहं मित्रावरूणोभा बिभर्म्य-

हमिन्द्राग्नि अहमश्विनोभा ।। "

ऋग्वेद में स्वयं ये देवी ही कहती हैं कि " मैं आवेश उत्पन्न करने वाले पराक्रमी सोम को धारण करती हूँ यही नहीं अपितु मै त्वष्टा, पूषा तथा भग को धारण करती हूँ । मैं सोम को निचोड़ते हुये हवि प्रदाता एवं भली भाँति सहायता के योग्य देवों को तृप्त करने वाले स्तोता अथवा यजमान के लिये ऐश्वर्यधारण करती हूँ "।[2]

---

1. ऋ0 सं0 10·125·10 अनुवाक् मं0 सं0 ।

2. ऋ0 सं0 10·125· अनुवाक 10 मं0 सं0 2

अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं
त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते
सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ।। "

भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार शिव की इस शक्ति का परिज्ञान स्वयं शिव का ही ज्ञान है । ये महामाया, ब्रह्मविद्या की जननी है । अथर्ववेद के " श्रीदेव्यथर्वशीर्षम् " नामक सूक्त में ऋषि प्रार्थना करते हुये कहता है कि- हे चित्त स्वरूपिणी महासरस्वती हे! सद्रूपिणी महालक्ष्मी! हे आनन्दरूपिणी महाकाली ! ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये हम सब आपकी स्तुति करते हैं, उपासना करते हैं । आप हमारी अविद्या रूप रज्जु की दृढ ग्रन्थि को खोल दो और मुक्त करो ।

ये शक्ति रूपिणी देवी महाभय का नाश करने वाली महासंकट को शान्त करने वाली और करुणा की साक्षात्मूर्ति है । ये मूल प्रकृति है । इनके स्वरूप का ज्ञान ब्रह्मादिक को भी पूर्णतः नहीं हो पाता । इसलिये इन्हें अज्ञेया भी कहते हैं । इनका अन्त नहीं है- इसलिये ये अनन्ता हैं । ये अलक्ष्या भी है क्यो कि इनका लक्ष्य दीख नहीं पड़ता है । इनका जन्म भी कैसे हुआ समय से परे है, इसलिये ये अजा है । ये महादेवी अकेली ही सर्वत्र व्याप्त हैं इसलिये इन्हें " एका " भी कहते हैं । ये अकेली ही विश्वरूप में सजी हुयी हैं इसलिये इन्हें " नैका " कहते हैं । इसप्रकार सर्वगुण सम्पन्न सर्व-

शक्ति सम्पन्न ये महादेवी अज्ञेया, अनन्ता , अलक्ष्या, अजा, एका और नैका कहलाती हैं।[1]

बृहज्जाबालोपनिषद्- ब्राह्मण में शिव और शक्ति के सम्बन्ध में एक अत्यन्त विलक्षण किन्तु रहस्य से परिपूर्ण वर्णन मिलता है। इस उपनिषद् के अनुसार "पार्थिव अग्नि एकविंशस्तोम अर्थात् द्युलोक एवं स्वर्लोक (सूर्यमण्डल) तक व्याप्त है, उससे आगे सोममण्डल है। अग्नि की गति ऊपर तथा सोम की गति नीचे की ओर रहती है। विशकलन की सीमा पर पहुँचकर अग्नि ही सोमरूप में परिणत हो जाता है और फिर ऊपर से नीचे की ओर आकर अग्नि में प्रविष्ट होकर सोम अग्नि बन जाता है। इनमें "अग्नि" को "शिव" और सोम को "शक्ति" कहते हैं।[2] "सोम" शब्द की निष्पत्ति भी उमा से होती है- "उमया सहित: सोम:"।

"अग्नीषोमात्मकं विश्वमित्यग्निराचक्षते। रौद्री घोरा या तैजसी तनु:। सोम: शक्त्यमृतमय: शक्तिकरी तनु:॥"

---

1. दुर्गासप्तशती देव्यथर्वशीर्षम् पृ0 सं0 51,52
2. बृहज्जाबालोपनिषद् ब्राह्मण 30-2

1. अमृतं यत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्याकला स्वयम् ।
स्थूल- सूक्ष्मेषु भूतेषु स एव रसतेजसी ।। 1 ।।

2. द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका
तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानिलात्मिका ।। 2 ।।

3. ऊर्ध्वशक्तिमयं सोमः अधोशक्तिमयोऽनलः
ताभ्यां सम्पुटितस्तस्माच्छश्वद्विश्वमिदं जगत् ।। 3 ।।

4. अग्नेरूर्ध्वं भवत्येषा- यावत्सौम्यं परामृतम् ।
यावदग्न्यात्मकं सौम्यममृतं विसृजत्यधः ।। 4 ।।

5. अतएव हि कालाग्निरधस्ताच्छक्तिरूर्ध्वगा ।
यावदादहनश्चोर्ध्वं मधस्तात्पावनं भवेत् ।। 5 ।।

6. आधारशक्त्यावधृतः कालाग्निरयमूर्ध्वगः ।
तथैव निमग्नः सोमः शिवशक्तिपदास्पदः ।। 6 ।।

7. शिवश्चोर्ध्वमयः शक्तिरूर्ध्वशक्तिमयः शिवः ।
तदित्थं शिवशक्तिभ्यां नाव्याप्तमिह किञ्चन ।। 6 ।।

इस निखिल जगत् के आत्मा अग्नि और सोम है । घोर तेज रुद्र का शरीर है, अमृतमय, शक्ति देने वाला सोम शक्तिरूप है । अमृतरूप सोम ही सबकी प्रतिष्ठा है । विद्या और कला आदि में तेज (अग्नि) व्याप्त है । स्थूल या सूक्ष्म सम्पूर्ण भूतों में रस (सोम) और तेज (अग्नि) सभी

जगह व्याप्त है । यह तेज दो प्रकार का है- सूर्य और अग्नि । सोम के भी दो रूप है- रस और अनिल(वायु) । तेज के विद्युत आदि अनेक विभाग हैं औररस के मधुर आदि भेद है । तेज औररस से ही यह चराचर जगत् निर्मित है। "अग्नीषोमात्मकं जगत्" (अग्नि से ही अमृत(सोम) उत्पन्न होता है और सोम से अग्नि वृद्धि को प्राप्त होता है । अत: स्पष्ट है कि अग्नि औरसोम के परस्पर हविर्यज्ञ से यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न है । अग्नि ऊर्ध्वशक्तिमय होकर सोम रूप हो जाता है और सोम अध: शक्तिमय होकर अग्नि बन जाता है । इन दोनों के सम्पुट में निरन्तर यह विश्व रहताहै । जब सोमरूप में परिणत न हो, तब तक अग्नि ऊपर ही जाता रहता है औरसोम जब तक अग्नि रूप नहीं बनता तब तक नीचे ही गिरता रहता है । इसलिये कालाग्निरूप रुद्र नीचे हैं और शक्ति इनके ऊपर विराजमान है । द्वितीय स्थिति में पुन: सोम की आहुति हो जाने पर अग्नि ऊपर और पवित्र सोम नीचे हो जाता है ।ऊर्ध्वशक्तिमय अग्नि अपनी आधारशक्ति सोम से ही धृत है । अध: शक्तिमय सोम शिव की ही शक्ति कहा जाता है । अत: स्पष्ट है कि ये दोनों एक दूसरे के आधार पर है । शिव शक्तिमय है और शक्ति शिवमय है । इस निखिल ब्रह्माण्ड में कोईऐसी जगह नहीं जहाँ शिव और शक्ति दोनों व्याप्त न हो ।

शिव और उनकी शक्ति एक ही तत्व है, एक के बिना दूसरा नहीं रहता । इसलिये शिव औरउमा मिलकर एक अङ्ग है, उमा शिव की

अर्द्धांङ्गिनी हैं। पारमार्थिक दृष्टि से सोम भोज्य है और अग्नि भोक्ता है, इसी कारण अग्नि कोपुरुष औरसोम को स्त्री। माना गया है। लोक क्रम में सोम ऊपर रहता है, इसी से शिव के वक्ष: स्थल पर खड़ी हुई शक्ति की उपासना होती है। शिव ज्ञानस्वरूप या रस स्वरूप है और शक्ति क्रिया स्वरूप अथवा बलस्वरूप हैं। क्रिया या बल, ज्ञान या रस के आधार पर स्थित रहता है, इसीलिये भगवती को शिव के वक्ष: स्थल पर खड़ी हुई माना गया है। बिना क्रिया के ज्ञान सम्भव नहीं है, उसमें स्फूर्ति नहीं है, वह मुर्दा है, इसलिये शिव को "शव" भी कहते हैं। दूसरे शब्दो में विश्वरूप (विराट रूप) शिव है, उस पर चित्कालरूपा(ज्ञानस्वरूपा) भगवती खड़ी है। वही इसकी प्रधान शक्ति है, उसके विना शिव का विश्वरूप निश्चेष्ट है।

वस्तुतस्तु ऋषियों के अनुसार समस्त मुख, समस्त शिर और समस्त ग्रीवाएं भगवान् शिव कीही हैं। वे सम्पूर्ण प्राणियों के अन्त:करण में स्थित हैं औरसर्वव्यापी है, इसलिये वे भगवान् शिव सर्वगत हैं।

" सर्वाननशिरोग्रीव: सर्वभूतगुहाशय: ।

सर्वव्यापी स भगवां स्तस्मात् सर्वगत: शिव: ।। "

उस शिव रूपी पुरूष और शक्तिरूपिणी प्रकृति अर्थात् भगवती की उपासना करने से उपासक को शान्ति प्राप्त होती है और वह अभ्युदय प्राप्ति का अधिकारी हो जाता है ।

" शिव: शक्त्या युक्तो
यदि भवति शक्त: प्रभवितुम् ।। "

ये शिव जब अपने वास्तविक स्वरूप में रहते हैं तब वह अपनी शक्ति को क्रोडीभूत करके एक होकर रहते हैं, उस समय सृष्टि कार्य नहीं होता है । जब वह अपनी इस अखिलात्मिका शक्ति को अङ्गीकार करते हैं उस समय ये अपने स्वरूप में स्थित रहते हुये ही सगुण भाव को प्राप्त हो जाते हैं । सगुण अवस्था में ये रुद्र विश्वरूप हो जाते हैं । इस विश्वरूपा- अवस्था में ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है जो भीतर चैतन्य से विधृत न हो और बाहर शक्ति क्रीडा न करती हो । समस्त देवता यही शिव शक्ति है, स्थावर-जङ्गम सभी वस्तुएं इन्हीं शिव- शक्ति की मिलित अवस्था हैं ।

षष्ठोऽध्यायः

वेदों में एक और अनेक रुद्र की परिकल्पना का तात्त्विक विमर्श

भारतीय संस्कृति में परिपूर्णतम परात्पर सच्चिदानन्द परमेश्वर को ही रुद्र अथवा शिव कहा गया है । ये शिव अथवा रुद्र एक हैं, ये विश्व-मय और विश्वातीत दोनों विभूषणों से युक्त है। वे एक हैं लेकिन अनेक रूप बने हुये हैं । जब वे महेश्वर स्वस्वरूप में स्थित रहते हैं, तो इस नश्वर मायामय संसार की जननी प्रकृति देवी उनमें विलीन रहती है, किन्तु जब वही रुद्र अपनी शक्ति को व्यक्त और क्रियान्वित करते हैं, तब क्रीडा-मयी शक्ति प्रकृति शिव को ही विविध रूपों में प्रकट कर उनकी क्रीडा सा-मग्री का सृजन करती है । सम्भवत: इसी लिये भारतीय संस्कृति में परम पुरुषार्थ की कामना करने वाले प्राणियों को रुद्र की वन्दना और अर्चन करने का सन्देश दिया गया है । क्यों कि उनके सदृश अन्य कोई नहीं है ।

" नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गति: ।
नास्ति सर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे ।।"

वैदिक ऋषियों के मतानुसार यह परात्पर अक्षर पुरुष अथवा महेश्वर कार्य और कारण दोनों से अतीत है । वह न जगत् है न जगत्कर्त्ता, हाँ, जगत् और जगत्कर्त्ता दोनों का आलम्बन अवश्य है । वह एकमेव ही है । लेकिन अनेक रूपों में प्रकट भी होता है । रुद्र एकादश प्रसिद्ध हैं । आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक या अधियज्ञ भेद से इन ग्यारह के अलग- अलग

1• महाभारत अनु0 46/11

नाम श्रुति पुराणादि में प्राप्त होते हैं । शतपथ ब्राह्मण[1] में इस सम्बन्ध में इस सम्बन्ध में अत्यन्त दार्शनिक व्याख्या प्राप्त होती है । इस ब्राह्मण में पुरुष के दस प्राण और ग्यारहवां आत्मा को आध्यात्मिक रुद्र कहा गया है । भारतीय ऋषि परम्परा के मत में सप्त शीर्षण्या: प्राण:, द्वावान्चौ, नाभिर्दशमी, अर्थात् मस्तक में रहने वाले सात प्राण, दो आँख, दो नाक, दो कान और एक मुख, नीचे के दो प्राण, मल मूल त्यागने के दो द्वार और दशवीं नाभि/अन्तरिक्षस्थ वायु प्राण ही मानव के शरीर मेंप्राणरूप होकर प्रविष्ट है और वही इन दशों स्थानों में कार्यकरता है, इसलिये इन्हें रुद्र प्राण के सम्बन्ध में "रुद्र" कहा गया है । ग्यारहवां आत्मा भी यहाँ "प्राणात्मा" ही विवक्षित है । जो इन दशों का अधिनायक "मुख्यप्राण" कहा जाता है । आधिभौतिक रुद्र पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान, विद्युत पवमान, पावक और शुचि नाम से जाने जाते हैं । इनमें आदि के आठ शिव अष्ट मूर्ति के नाम से प्रसिद्ध है। इसके आगे के तीन अर्थात् पवमान,पावक और शुचि घोरस्य हैं । ये उपद्रावक वायु विशेष हैं । इनमें शुचि सूर्य में, पवमान अन्तरिक्ष में और पावक पृथिवी में कार्य करता है, किन्तु वस्तुत: हैं ये तीनों अन्तरिक्ष के ही वायु ।

---

1. शतपथब्राह्मण चतुर्दशकाण्ड अ0 5 ब्रा0 9

के इ... स्वरूप का वर्णन करते हुये ऐतरेय ब्राह्मण[1] कहता है कि अग्नि भी रुद्र ही है । इसके दो रूप है,-एक घोर और दूसरा शिव । अग्नि का जो रूप उपद्रावक, रोगप्रद, नाशक है, "घोर रुद्र" कहते हैं और जो लाभ प्रद, रोगनाशक, रक्षक है, उसे "शिव" कहते हैं । यों रुद्र भी तो शिव ही हैं । घोर रुद्रो से "मा नो वधी: पितरं मोत मातरम्" "मा न: स्तोके तनये मा न आयुषि" नमस्ते अस्त्वायुधायानातताय धृष्णवे" इत्यादि मन्त्रों में रक्षा की प्रार्थना की गयी है[2]। शतपथब्राह्मण[3] के अनुसार-अग्नि में जितना सोम सम्बन्ध है, वह उतना ही "शिव" है, कल्याण कारक है ।

रुद्र की अष्टमूर्ति में जहाँ विविध कामनाओं के परिपूर्णार्थ उनकी उपासना है, वही सूर्य, पवमान और पावक से वैदिक स्तोता दूर रहने की प्रार्थना करता है[4] ।

---

1. ऐत० ब्राह्मण 7.5.4
2. ऋ० सं० 1.114.1-11
3. श०ब्रा० काण्ड- 9
4. अथर्ववेद 7.102.1

" नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षायमृत्यवे ।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मो हिंसिषुरीश्वरा: ।।"

अर्थात् हे स्वामी (रुद्र) । द्युलोक और पृथिवी लोक को तथा अन्तरिक्ष को नमस्कार कर दूर और ऊँचा खड़ा होकर मैं निरीक्षण करता हूँ अत: आप मेरा विनाश न करें ।

वैदिक धर्म दर्शन के अनुसार आधिदैविक एकादश रुद्र तारा मण्डलों में रहते हैं- इनके कई नाम भिन्न भिन्न रूप से प्राप्त होते हैं- (1) अज एकपाद् (2) अहिर्बुध्न्य (3) विरूपाक्ष (4) त्वष्टा, अयो विजया गर्भ (5) रैवत, भैरव, कपर्दी व वीरभद्र (6) हर, नकुलीश, पिङ्गल अथवा स्थाणु (7) बहुरूप, सेनानी अथवा गिरीश (8) त्र्यम्बक, भुवनेश्वर, विश्वेश्वर अथवा सुरेश्वर (9) सावित्र, भूतेश या कपाली (10) जयन्त, वृषाकपि, शम्भु या सम्भव (11) पिनाकी, मृगव्याध, लुब्धक या शर्व । इनका पौराणिक वाङ्मय में भी स्थान- स्थान पर वर्णन है[1] । ये सभी तारा मण्डल में तारा रूप से दृष्टिगोचर भी होते हैं । रुद्र-प्राण इनमें अधिकता से रहता है और इनकी रश्मियों से भूमण्डल में आया करता है, इसी से

---

1. अ०पु० 3.6.8
शि०पु० 5.7.4
विष्णुपु० 8.5.3
सौरपु० 8.7.3-9

इन्हें रुद्र कहा गया है । इनमें भी "घोर" और "शिव" दोनों ही प्रकार की रुद्राग्नि है । जैसे- श्लेषा नक्षत्र में सूर्य के रहने पर जो वर्षा होती है, उसे रोगोत्पादक कहा जाता है और मेघा नक्षत्र की वर्षा को रोगनाशक माना जाता है । रोम- देश के प्राचीन तारामण्डल के चित्रों में सर्पधारी, कपालधारी, शूलधारी आदि भिन्न भिन्न आकारों के इन नक्षत्रों के चित्र दिखायी देते हैं, उन नक्षत्रों का आकार ध्यान पूर्वक देखने पर वह उसी सन्निवेश का प्रतीत होता है, इसी लिये उनके वैसे आकार निर्मित किये गये हैं ।

पौराणिक वाङ्‌मय में रुद्र के सम्बन्ध में जो कथाये मिलती है,उनसे भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि वस्तुत: रुद्र एक ही है । दक्षयज्ञ की कथा भी आधिदैविक और आधिभौतिक दोनों भावों से पूर्ण है । वह मनुष्याकार शिव का चरित्र भी है और "दक्ष" का सिर काटकर बकरे का सिर लगाया जाने का आशय यह है कि प्राचीन काल में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका को आरम्भ में रखकर होती थी । इस कृत्तिका का प्रारम्भ अश्विनी (मेष) से आरम्भ किया जाता था । इसी प्रकार कई एक कथायें हैं जो आधिदैविक भाव से पूर्ण है। यज्ञ में ग्यारह अग्नि होते हैं। प्रथम तीन अग्नि हैं- गार्हपत्य,

---

1. एनसाइक्लोपीडिया वायलुम 5 पृ0 सं0 282

आहवनीय और धिष्ण्य । इनमें गार्हपत्य दो भागों में विभक्त हो जाता है । इष्टि में जो गार्हपत्य था, वह सोमयाग में " पुराण गार्हपत्य " कहा जाता है और इष्टि के आहवनीय को सोमयाग में गार्हपत्य बना लेते हैं- वह " नूतनगार्हपत्य " कहा जाता है । धिष्ण्याग्नि के आठ भेद है । जिनको श्रुति में आग्नीध्रीय, अच्छावाकीय, नेष्ट्रीय, पोत्रीय, ब्राह्मणाच्छंसीय, होत्रीय, प्रशास्त्रीय और मार्जलीय कहा गया है । ये सभी अन्तरिक्षस्थ अग्नियों की अनुकृति है- इसलिये इन्हें भी एकादश रुद्र कहा गया है । ये शिव रूप होने पर ही यज्ञ में ग्राह्य है, घोर रूपों का यज्ञ में कोई प्रयोजन नहीं होता[1] ।

वैदिक वाङ्मय के अनुसार रुद्र के अनेक रूप जो यथार्थ में एक ही उसकी सर्वोत्तमता का परिचायक है । रुद्र ही इस निखिल विश्व का पालक, धारक और विनाशक है । पिपीलिका से लेकर इस लोक में जो कुछ भी है वह सब उसी से व्याप्त है । अथर्ववेद में रुद्र की इस महिमा का गुणगान करते हुये स्तोता कहता है कि " जो सब को भोजन देने वाली पृथिवी को धारण करता है, जो रस से अन्तरिक्ष को भर देता है, जो अपनी महिमा से अपर ही द्युलोक को धारण किये हुये है उस अन्न रूपी रुद्र से मैं

---

1. कल्याण-तन्त्र विशेषाङ्क पृ० सं० - 155

मृत्यु को पार हो जाऊँ[1]।

" यो दाधार पृथिवीं विश्व भोजस्
यो अन्तरिक्षमापृणादसेन ।
यो अस्तम्ना द्दिवमूर्ध्वो महिम्ना
तेनौदनेनाति तरा पि मृत्युम् ।। "

भारतीय तन्त्र साहित्य में रुद्र के सम्बन्ध में एक रुद्र और असंख्य रुद्र इन दोनों प्रकार के वर्णन प्राप्त होते हैं । इन वर्णनों का प्रथम संकेत शतपथ ब्राह्मण[2] में मिलता है । इस ब्राह्मण के अनुसार " क्षत्र रुद्र " एक ही है और असंख्यात् रुद्र " विट् " वैश्य हैं । " विटको " को इस ब्राह्मण ग्रन्थ में प्रजा कहा गया है । इन वर्णनों का अभिप्राय यही है कि एक रुद्र राजा-अधिनायक मुख्य है और अनन्त रुद्र उसकी प्रजा- अनुगामी है । मुख्य रुद्र को ही इस ब्राह्मण में " शतशीर्षा, " सहस्त्राक्ष, " शतेषुधि " कहा गया है । उसकी उत्पत्ति प्रजापति के मन्यु अर्थात् क्रोध और अश्रु के सम्बन्ध से वहाँ बतायी गयी है । " नमस्ते रुद्र मन्यवे " इत्यादि मन्त्रों की जो व्याख्या

---

1. अथर्ववेद 6·13·1-3
2. शत० ब्रा०काण्ड- 9 अ० । ब्रा० ।

शतपथ ब्राह्मण में है उनसे भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है । अतः अग्नि (प्रजापति का मन्यु) और सोम (अश्रुजल) के सम्बन्ध से " रुद्र " प्राप्त होता है । जिनसे " विप्रुट " बिन्दुमात्र का सम्बन्ध है, वे वायु के अनन्त भेद ही यहाँ पर असंख्यात् रुद्र के रूप में वर्णित है । विकृत वायु के भिन्न भिन्न अंश जो पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्यलोक में व्याप्त हैं उनका ही विस्तृत वर्णन यजुर्वेद के रुद्राध्याय में आया है[1]। इन रुद्रों के अस्त्र शस्त्र आदि का वर्णन भी आया है ।

(क) "येषां वात इषवः"

ये किस तरह प्राणियों पर अपना प्रभाव डालते हैं इसका भी वर्णन वहाँ प्राप्त होता है ।

(2) " ये आमे पात्रे विध्यन्ति "

वैदिक वाङ्मय में अन्न को प्राण संज्ञा से अभिहित किया गया है । ये रुद्र ही अन्न रूप है । उनकी इसी महिमा का वर्णन करते हुये ऋषि कहता है कि " जो जीवन देने वाले प्राण के दाताओं का स्वामी हैं जिसके लिये घृतयुक्त बोक दस देते हैं जिस की सभी दिशा, उपदिशाएं तेज से परिपूर्ण हैं । उस अन्न से मैं मृत्यु को पार हो जाऊँ[2]। उसकी कृपा से तीस दिन रूपी

---

1. यजु० 16.43-46

2. अथर्व 4.35.1-5

अरों वाले मास निर्मित हुये है । उसी ने बारह महीने रूपी अरों वाला वर्ष बनाया है । व्यतीत हुये दिन- रात जिसको प्राप्त नहीं कर सकते उस अन्न रूपी (रुद्र) से मैं पार हो जाऊँ।[1]

" यः प्राणदः प्राणदवान्बभूव ।
यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वा-
स्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ।। "

यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः
संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुरास्तेनौद
नेनाति तराणि मृत्युम् ।। "

यह ज्ञानरूपी अन्न विश्वविजेता है । इसकी कृपा से ही देवत्वके नाशक शत्रुओं का शमन होता है । इसीलिये सम्पूर्ण देवता इसज्ञान रूपी अन्न अर्थात् रुद्र की शरण ग्रहण करते हैं।[2]

" अव वाधे द्विषन्तं देव पीयुं
सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि ।
शृण्वन्तु मे श्रद्धानस्य देवा ।। "

---

1. अथर्व 4.35.1-4
2. अथर्ववेद 4.35.1-6

ये रुद्र अष्टमूर्ति भी हैं क्यों कि अक्षर पुरुष की " इन्द्र " " अग्नि, " "सोम", इन तीनों कलाओं के एक अधिष्ठता महेश्वर " अथवा " शिव " कहे जाते हैं । इस निखिल विश्व में जितने भी पिण्ड है, वे सभी अग्नि और सोम से निर्मित है, किन्तु किसी पिण्ड में सोम की प्रधानता है तो किसी पिण्ड में अग्नि की प्रधानता है । स्वयम्भु मण्डल आग्नेय, परमेष्ठि, मण्डल सौम्य, पुन: सूर्यमण्डल आग्नेय, चन्द्रमा सौम्य और फिर पृथिवी आग्नेय है जो- जो आग्नेय हैं, उन्हें " महेश्वर " " रुद्र " अथवा " शिव " इस नाम से उपासना की जाती है ।

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रु: सुमङ्गल:
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिता: सहस्त्रश: ।।

अर्थात् " जो यह लाल गुलाबी या मिश्रित रूप का दिखायी देता है । और इसके चारो ओर- जो हजारो रुद्र हैं " इस वर्णनसे स्पष्ट हो जाता है कि यह वर्णनसूर्य मण्डल का ही रुद्र रूप से है । सूर्यमण्डल ही सर्ववर्ण है, उसके चतुर्दिक सभी देवों का निवास स्थान है अथवा वे रहते है ।

" चित्रं देवानामुदगादनीकम् "

1• जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण 10•5•3

इस सूर्यमण्डल से जो मण्डलाकार आग्नेय प्राण निकलता है, उसे ही "संवत्सराग्नि" कहते हैं। इसकी पूर्ति वर्ष भर में होती है। सम्भवत: इसी लिये वर्ष को "संवत्सर" भी कहा जाता है। यह और अग्नि ही पृथिवी में "वैश्वानर" अग्नि रूप से परिणत होता है। निरुक्तकार यास्क के अनुसार इसका वैश्वानर नाम इसलिये पड़ा क्योंकि यह इस जगत के मनुष्यों को इस लोक से परलोक में ले जाता है। इसे सभी मानव प्राप्त करते हैं, और यह सभी में विद्यमान है इसलिये उसे "विश्वानर" कहा जाता है। उसका अपत्य ही वैश्वानर कहा जाता है[1]।

"वैश्वानर: कस्मात्? विश्वान्नरान्नयति। विश्व एनं नरानय-न्तीति वा। अपि वा विश्वानर एव स्यात्। प्रत्यृत: सर्वाणि भूतानि तस्य वैश्वानर:।"

ऋग्वेद[2] के अनुसार यह वैश्वानर सुमति प्रदान कर व्यक्ति को कल्याण मार्ग पर ले जाता है। स्तोता इसरुद्र रूप वैश्वानर की स्तुति करते हुये कहता है कि हमें वैश्वानर की कल्याण बुद्धिप्राप्त जो सम्पूर्ण भूतों का आश्रयणीय स्वामी है, जो इस पृथिवी लोक से ओषधियों से उत्पन्न हुआ है तथा इस निखिल जगत् को अपने प्रकाश से प्रकाशमान करता है।

1. निरुक्त अध्याय- 7 षष्ठ: पाद:
2. ऋ0 1·98·1

भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार इस भूमण्डल के चारों ओर बारह योजन ऊपर तक एक "भूवायु" है, जिसमें भूमि जैसा ही आकर्षण है। पक्षी उसी के आधार पर रहते हैं, इसी को ज्योतिष शास्त्र में "आवह वायु" और वैदिक परिभाषा में "एमुष वराह" या "उषा" कहते हैं। इस उषा रूप पत्नी में संवत्सराग्नि रूप पुरुष जब गर्भाधान करता है तब दोनों के योग से "कुमार नामक" अग्नि की उत्पत्ति होती[1] है। इस कुमाराग्नि को ही "कुमारोनीललोहित" कहकर रुद्र से उपासना की जाती है। इस कुमाराग्नि के आठ रूप हैं जो कि "चित्राग्नि" नाम से जाने जाते हैं। ये आठ नाम है- रुद्र, सर्व, "§शर्व§ पशुपति, उग्र, अशनि, § भीम, भव§ महादेव, ईशान और उनके आठ स्थान- अग्नि§ भौतिक तेज§, अप्§ जल§ ओषधि §पृथिवी, वायु, विद्युत्§ वैश्वानराग्नि यजमान का आत्मा§ पर्जन्य§ आकाश, चन्द्रमा और सूर्य[2]। पौराणिक वाङ्मय में जो नाम भेद है उन्हें ऊपर वर्णित कोष्ठकों में सङ्केत रूप में दे दिया गया है। परवर्ती भारतीय संस्कृति में रुद्र के इस महिमामय स्वरूप का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित इस तथ्य का महिम्नस्तोत्रकार श्री पुष्पदन्ताचार्य जी ने अत्यन्त मार्मिक और सारगर्भित वर्णन किया है।

---

1. श०ब्रा० काण्ड 6 अ0 1. ब्रा0 3

2. श०ब्रा० काण्ड 6. अ0 2 ब्रा0 4.

"भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि ।
प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवेत् ।।

उक्त आठों स्थानों में जो आग्नेय प्राण है- वे ही "रुद्र" अथवा "शिव" रूप से उपास्य है, यही शिव की अष्टमूर्ति भी कहीं जाती है। इसके आगे ही शतपथ ब्राह्मण[1] में इस कुमाराग्नि से पन्च पशुओं पुरुष, अश्व, गो अज और अवि की उत्पत्ति कहीं गयी है। ये पाँचों भी अग्नि अर्थात् प्राण विशेष है, इनकी प्रधानता से आधिभौतिक पशुओं के भी यही नाम पड़ते हैं। इन पशुओं का पति होने के कारण भी यह कुमाराग्नि रुद्र "पशुपति" कहा जाता है।

तत्त्वज्ञ वैदिक ऋषियों के मत में यह अग्नि रूप रुद्र ही भूलोक का मूर्धा अर्थात् शिर है। जिस प्रकार शिर से रहित प्राणी जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार इस अग्नि के बिना भी जीव लोक के जीवित रहने की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी लिये वैदिक वाङ्मय में इस रुद्राग्नि को सबसे मुख्य वस्तु माना गया है। रात्र्यवसान होने पर ही अग्नि सूर्य रूप धारण कर आ जाती है। रुद्रदेव की यह अत्यन्त विलक्षण माया है। इस माया को रुद्रदेव के उपासक ही जान पाते हैं[2]।

---

1. श०ब्रा०का० 6 अ० 2 ब्रा० 1
2. ऋ० 10,88-6

" मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्तत:
सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपो-
यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ।। "

"ऋग्वेद[1] के अनुसार " देवताओं ने स्तुतियों से और अपनी शक्तियों अर्थात् कर्मों से तथा यज्ञादिकों से द्युलोक में अन्तरिक्ष और पृथिवी लोक में परिपूर्ण इस अग्नि को अजनयन् अर्थात् उत्पन्न किया । उसी पार्थिव रुद्र रूप अग्नि को उन्होंने { त्रेधाभुवे } तीन रूप दे दिये । वही अग्नि सभी प्रकार की ओषधियों को पकाता है । इस प्रकार उन महिमाशाली देवों ने अपने यज्ञादि पुण्यकर्मों के द्वारा उसी अग्नि को तीन स्थानों द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी लोक में परिपूर्ण कर दिया ।

" स्तोमेन हि दिवि देवासो
अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसि: प्राम् ।
तमू अकृण्वस्त्रेधा भुवे कं
स ओषधी: पचति विश्वरूपा: ।। " { ऋग्वेद }

यास्काचार्य के अनुसार " इस रुद्राग्नि का ही जो तृतीय भाग द्युलोक में है वही यह सूर्य है । ब्राह्मणग्रन्थ भी इसी मत की पुष्टि करते हैं[2] ।

1. ऋ0 10.88.10

2. निरुक्त अ0-7 पृ0 252

" यदस्य दिवि तृतीयं तदसावादित्य: "
।
ऋग्वेद भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है ।

" यदेदनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवा: सूर्यमादितेयम् ।
यदाचरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा ।। " (ऋग्वेद)[1]

भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार एक ही रुद्र है जो इस समस्त लोकों को अपनी शक्ति से वश में रखता है, इसीलिये वह ईश्वर है, उसी की सब उपासना करते हैं । वही लोकों की उत्पत्ति कर अन्त समय में उनका विनाश करता है । वह रुद्र ही सबके भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित है । श्रुति भी इसी मत की पुष्टि करती है[2] । यह रुद्र जगत् का उपादान और निमित्त कारण दोनों है । सम्भवत: इसीलिये वह सर्वशक्तिमान जगन्नियन्ता जगदीश्वर अपनी इच्छा से जगत् को रचकर शासक रूप से उसके प्रत्येक अवयव में प्रविष्ट रहता है।

" तत: सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् "

बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने गार्गी के प्रश्नों का उत्तर देते हुये बताया कि हे गार्गि ! इसी अक्षर पुरुष के शासन- नियन्त्रण में सूर्य और चन्द्रमा स्थित

---

1. ऋग्वेद 10.88.11
2. श्वेता 3.2

है । इसी के भय से वायु प्रवाहित होती है, इसी के भय से सूर्य उदित होता है ।

" भीषास्माद् वात: पवते भीषोदेति सूर्य: "

वैदिक ऋषि परम्परा के अनुसार रुद्र का शिव रूप ही " विश्व रूप या "ब्रह्मसत्य" कहा जाता है । यह शिव रूप ईश्वर ही इस निखिल जगत् की रचना कर उसमें प्रविष्ट हो जाता है । वह प्रविष्ट होने वाला रूप ही ईश्वर का " विश्वचर " रूप कहा जाता है । यही सम्पूर्ण जगत् का नियन्ता है और व्यवहार में, न्याय दर्शन में, अथवा उपासना शास्त्रों में इस नियन्ता को ही "ईश्वर " कहा जाता है । ईश्वर के इस शिव रूप की व्याप्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में है, समष्टि ब्रह्माण्ड में है तथा व्यष्टि पदार्थ में भी यह व्यापक रूप से बाहर भी व्याप्त रहकर ब्रह्माण्ड को अपने उदर में रखे हुये हैं ।

तन्त्रशास्त्र के मत में परमपुरुष या आदिपुरुष रुद्र अथवा शिव एक ही हैं । इस परम पुरुष शिव और उनकी शक्ति के सम्मेलन से जो स्पन्दन पैदा होता है, यह निखिल सृष्टि उसी स्पन्दन क्रिया का परिणाम है । यही रुद्र अथवा शिव का ताण्डव नृत्य है । जब सदाशिव आनन्द से उन्मत्त होकर अर्थात्

पराम्बा आनन्दमयी से युक्त होकर नृत्य करते हैं तो उस महानृत्य के परिणाम से इस सृष्टि के पदार्थों की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार यह समस्त जड चेतनमय जगत् सदाशिव के नृत्य और नाद का ही परिणाम है । क्यों कि जहाँ स्पन्दन होता है वहाँ शब्द भी होता है । इस प्रकार शिव के डमरू के शब्द से (जो प्रकृति और पुरुष के सम्मेलन के द्वारा नादरूप में प्रकट होता है) व्याकरण के मुख्य शब्द सूत्र की उत्पत्ति हुयी । यह शब्द चार प्रकार के शब्दों में अन्तिम " वैखरी " वाक् का व्यक्त रूप है । अतएव वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर में शक्ति सन्निहित है । इस शक्ति के कारण ही आभ्यन्तरिक षट् चक्रो से इन अक्षरों का निवास स्थान है । इस शिव- शक्ति के नाद का स्थान स्वर्ग के ऊपरी भाग में है जिसकी "परा" संज्ञा है । उसी परा को स्वर्ग-लोक में ऋषिगण मन्त्र रूप में देखते हैं, इसी से उसे " पश्यन्ती " कहते हैं । परन्तु ये मन्त्र उस "परा " के आध्यात्मिक रूप है जो स्वर्ग में देखे और सुने जाते हैं । पश्चात् के मन्त्र में वैखरीरूप से प्रकट होते हैं, क्यों कि वे श्री शिव ही उस परावाक् के कारण हैं जिसके द्वारा मंत्र आदि समस्त वाक्यों की रचना हुयी अतएव रुद्र अथवा शिव ही मंत्र शास्त्र के प्रवर्तक कहे जाते हैं ।

भारतीय आस्तिक परम्परा के मत में चन्द्रमा भी रुद्र रूप ही है क्यों कि शिव के मस्तक में चन्द्रमा का सङ्केत प्रणव की अर्द्धमात्रा से है और इसी निमित्त

1· कल्याण तन्त्र विशेषाङ्क पृ0 155 सन् 1954

वह उनके मस्तक को अर्द्ध चन्द्र भूषित करता है । योगी जन अपने अभ्यन्तरके चिद्- अग्नि के द्वारा अहंकार को दग्ध करते हैं और उसके साथ उसके कार्य पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत आदि सभी को दग्ध कर परमशुद्ध आध्यात्मिक भाव में पर परिवर्तित कर देते हैं तब वह निर्विकार-शुद्ध और शान्त हो जाता है । उसे ही भस्म कहते हैं । इस शुद्ध भाव रूप भस्म को धारण करने से उपासक शान्ति का अनुभव करता है । आध्यात्मिक गङ्गा रूप विशालकाय तेजपुञ्ज है जो महा विष्णु के चरण से निकलकर ब्रह्माण्ड के नायक श्री महादेव के मस्तक पर गिरता है और वहाँ से संसार के कल्याण के निर्मित्त फैलता है । इस तेज पुञ्ज को धारण करने की शक्ति केवल महादेव में ही है, क्यो कि शिव और विष्णु में तात्त्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं है वे दोनों एक ही है ।

ये रुद्र वस्तुत: एक ही है लेकिन कार्य भेद से अनेक हो जाते हैं । इन शिव के पञ्चमुख है- ईशान, अघोर, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात । ईशान का अर्थ है स्वामी, अघोर का अर्थ है निन्दित कर्मों के करने वाले भी श्री शिव की कृपा से निन्दित कर्म को शुद्ध बना लेते हैं । तत्पुरुष का अर्थ है अपनी आत्मा में स्थितिलाभ लाभ करना । वामदेव का अर्थ है विकारो का नाश करने वाला सद्योजात रूप बालक के सदृश परम निर्मल, शुद्ध और निर्विकार है । ये शिव जी अपने उपासकों को तारक मन्त्र तभी प्रदान करते हैं जब साधक हृदय रूप काशी में अर्थात् कारण शरीर में स्थित होता है और वह तारक मन्त्र के प्रभाव से सदा सर्वदा के लिये तुरीयावस्था में चला जाता है । ये शिव त्रिशूलधारी हैं ।

त्रिशूल का आध्यात्मिक अर्थ है-त्रिताप का नाशक अर्थात् त्रिताप से मुक्ति पाकर जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से परे तुरीया में पहुँचना । अतः स्पष्ट है कि जीवात्मा की तीव्र भक्ति§ सेवा§ और मिलने के प्रगाढ़ और अनन्य अनुराग तथा विशुद्ध निर्हेतुक प्रेम से ही रुद्र अथवा शिव तत्त्व का वास्तविक ज्ञान होता है और साधक शिव के चरण कमल के स्पर्श की परम शान्ति में पूर्णता का अनुभव करता है ।

भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार शिव के मस्तक पर रहने वाली शशि लेखा इस बात की द्योतक है कि उन्होने अपने मन को पूर्णतया वश में कर रखा है । भागीरथी की धारा मुक्ति रूपी सुधा की धारा है । हाथी को अभिमान की मूर्ति माना गया है । अतः उनका हस्तिचर्म को धारण करना इस बात की सूचना देता है कि उन्होने अभिमान का दमन कर दिया है । इसी प्रकार व्याघ्र को काम का स्वरूप माना गया है । अतएव उनका व्याघ्र चर्म पर बैठना इस बात को बतलाता है कि उन्होने काम पर विजय प्राप्त कर लिया है । उनका एक हाथ में मृग को धारण करना इस बात को व्यक्त करता है कि उन्होने चित्त की चञ्चलता को दूर कर दिया है । जिस प्रकार मृग एक स्थान से दूसरे स्थान को द्रुतगति से उछलकर जाता है उसी प्रकार यह मन भी एक विषय में दूसरे विषय की ओर- उछल कूद मचाता रहता है । उनका सर्पों को धारण करना उनके ज्ञान एवं चित्प्रज्ञा का बोधक है क्यो कि सर्प दीर्घ जीवी होते हैं, वे त्रिलोचन है, उनके ललाट के मध्य में

उनका तीसरा नेत्र है जो ज्ञानचक्षु कहा जाता है। शिवलिङ्ग के समक्ष विराजमान नन्दी प्रणव स्वरूप है और लिङ्ग अद्वैत का बोधक है। वह इस तथ्य को सूचित करता है कि "मैं एक हूँ" मेरे अतिरिक्त कोई नहीं है। अतः स्पष्ट है कि भगवान् शङ्कर ब्रह्म की संहारमयी मूर्ति है। ब्रह्म का वह अंश जो तमोगुण प्रधान माया से आवृत्त है, शिव पद का वाच्य है। वही सर्व व्यापी ईश्वर है और कैलाश शिखर पर निवास करते हैं। वे ज्ञान के भण्डार हैं। पार्वती अथवा काल अथवा दुर्गा से वियुक्त शङ्कर शुद्ध निर्गुण ब्रह्म है। वह अपने भक्तों के कल्याण के लिये ही माया- पार्वती के संयोग से सगुण ब्रह्म हो जाते हैं।

भारतीय ऋषियों के अनुसार "भगवान् शङ्कर की प्रीति के तथा उनकी प्राप्ति के दो ही साधन है। एक का नाम मूर्तोपासना, दूसरे का नाम अमूर्तोपासना है। अमूर्तोपासना मूर्तिमान मानव के लिये अत्यन्त कठिन एवं दुःसाध्य है। संभवतः इसीलिये भगवान शङ्कर के मूर्तिअष्टक की पूजा यत्र- तत्र वर्णित है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य चन्द्रमा और यजमान ये आठ मूर्तियाँ हैं। भूमि रूप परमेश्वर का आवाहन शर्व नाम से होता है, जल रूप भव नाम से अग्नि रूप रुद्र नाम से, वायु रूप उग्र नाम से, आकाश रूप भीम नाम से सूर्य रूप ईशान नाम से सोमरूप महादेव नाम से और यजमान रूप का पशु नाम से होता है। इन परम शिव के तीन व्यूह है और एकतीस प्रकार हैं। तीन व्यूहों के नाम, शिव, सदाशिव और महेश्वर है। शिव को एक रूप, सदाशिव को पञ्च रूप तथा महेश्वर को पञ्चविंशति रूप कहा गया है।

" शिवमेकं विजानीयात्तदाऽयं पञ्चधा भवेद् ।
महेशस्तु समासेन पञ्चविंशति भेदक: ।। "

ज्ञानीजन विद् देव की पूजा अपने हृदय में ही करते हैं ।

वैदिक धर्म दर्शन के अनुसार " ब्राह्मण का देवता अग्नि में रहता है, बुद्धिमानों का हृदय में, अल्पबुद्धियों का प्रतिमाओं में और आत्मज्ञानियों का सर्वत्र है । "

अग्नौ तिष्ठति विप्राणां
हृदि देवो मनीषिणाम् ।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां
सर्वत्र विदितात्मनाम् ।।

वैदिक वाङ्मय में " रुद्र एक है " इस प्रकार के भी तथा " रुद्र अनेक हैं " इस प्रकार के भी वर्णन मिलते हैं । तत्त्वज्ञ वैदिक ऋषियों के अनुसार जो एक होगा उसका अनेक होना सम्भव नहीं है और जो अनेक होगा उसका एक होना सम्भव नहीं है ।

यास्काचार्य के मत में[1] रुद्र वस्तुत: एक ही है दूसरा कोई नहीं है । श्रुति

---

1. निरुक्त 1.15.7

भी इसी मत की पुष्टि करती है।[1]

" एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीय: ।

असंख्याता: सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ।। " ﴾ निरुक्त﴿

" एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु: " । ﴾ श्वेता0﴿

" एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु: ।"[2] ﴾ तै0 सं0)

अथर्वशिरस् उपनिषद् भी एक ही रुद्र की सत्ता को स्वीकार करती है। इस उपनिषद् के मत में रुद्र एक है दूसरा कोई नहीं है।[3]

" रुद्रमेकत्वमाहु: शाश्वतं वै पुराणम् ।

﴾ अथर्वशिरस्﴿

यहाँ एक तथ्य द्रष्टव्य है कि निरुक्तकार यास्क के अनुसार असंख्य सहस्रों रुद्र भूमि पर हैं। यजुर्वेद[4] भी कहता है। कि असंख्य और हजारों रुद्र भूमि के ऊपर है। ये दोनों प्रकार के कथन क्या एक रुद्र के वाचक हैं अथवा अनेक रुद्र के यह प्रश्न विचारणीय है। एक और अनेक रुद्र के सम्बन्ध में ऋग्वेद में कुछ मन्त्र मिलते हैं। उदाहरणार्थ ये दृष्टव्य हैं-

﴾1﴿ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ।। ﴾ ऋ0 10·64·8﴿

﴾2﴿ शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाष: ।। ऋ0 7·35·6﴿

1· ~~निरुक्त~~ श्वेता 3/2

2· तै0 सं0 1·8·6·1

3· अथर्वशिरस्- 5

4 यजुर्वेद 16·54

(3) रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नः ।। (ऋ0 10.66.3)

(4) रुद्रे रुद्रेभिरा वह बृहन्तम् (ऋ0 7.10.4)

इन मन्त्रों से सङ्केत मिलता है कि एक रुद्र अनेक रुद्रों के साथ रहता है । ऋग्वेदोक्त इन वचनों को सत्य मानने पर यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि एक रुद्र भिन्न है और अनेक रुद्र उससे भिन्न है । यदि ऐसा न माना जाय तो "एक रुद्र अनेक रुद्रों के साथ रहता है" इस कथन का कोई औचित्य ही नहीं रह जायेगा । वैदिक ऋषियों के अनुसार जो एक रुद्र है, वह इस निखिल जगत् का उत्पत्तिकर्ता पालनकर्ता है । वही उस जगत् में व्यापक और महाज्ञानी है । ऋग्वेद[1] में इस एक रुद्र की वन्दना करते हुये स्तोता कहता है कि जो रुद्र अग्नि आदि अन्य देवों को पैदा करने वाला, विश्व का एकमेव स्वामी, महाज्ञानी, अतीन्द्रियार्थदर्शी, हिरण्यगर्भ को जनक है, वह हमें शुभ बुद्धि से युक्त करे । जो रुद्र अग्नि, जल, ओषधि, वनस्पतियों में है तथा जो सम्पूर्ण भुवनों की रचना करता है उस तेजवान रुद्र की हम शरण ग्रहण करते हैं । यह एक रुद्र की सम्पूर्ण भुवनों का रक्षक है, वह बड़ा ज्ञानी, प्रेरक, जरा-रहित है, उसकी हम दिन और रात में प्रशंसा करते हैं ।

"भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी
रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।

---

1. ऋ0 6.49.10

बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्न-

मृधग्धुवेम कविनेषितासः ।।

वस्तुतः उपरोक्त वर्णन उस परमात्मा का है, जो एक और अद्वितीय है, उसके सदृश दूसरा कोई भी नहीं है । इसी परमात्मा को रुद्र, इन्द्र आदि अनेक नामों से पुकारते हैं ।

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋ०)

जहाँ-जहाँ (एक एव रुद्रः) एक ही रुद्र है, इस प्रकार का वर्णन है, वहाँ वहाँ रुद्र शब्द से परमात्मा अर्थ लेना ही उचित प्रतीत होता है ।

"ईशानादस्य भुवनस्य भूरे-

र्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ।।" (ऋ० 2·33·9)

ऋग्वेद के अनुसार "इस निखिल भुवनों के अधिपति रुद्रदेव से उसकी महाशक्ति को कोई दूसरा छीन नहीं सकता । उसकी शक्ति उससे पृथक नहीं हो सकती । इस रुद्रदेव की खोज उसके उपासक अन्तःकरण में करते हैं[2] ।

1· ऋ० 2·33·9

2· ऋ० 9·73·3

" अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्र परो मनीषया ।।"

वैदिक धर्म दर्शन के मत में मुमुक्षु के अभिलाषी जन [redacted] रुद्र रूप परमात्मा को मानव के अन्त: करणमें बुद्धि द्वारा जानना चाहते हैं, उसी रुद्र रूप परमात्मा की प्राप्ति अन्यत्र और कहीं नहीं होती प्रत्युत् अन्त: करण में ही की जाती है और मुमुक्षु जनो को वह उनके हृदय में ही प्राप्त होता है ।

श्रीपाददामोदर सातवलेकर ने एक और अनेक रुद्र के स्वरूप के सम्बन्धों को एक कोष्ठक के माध्यम से दर्शाया है-

एक: रुद्र:- अनन्ता: रुद्रा:

अद्वितीय: रुद्र:- सहस्त्राणि सहस्त्रशो: रुद्रा:

जनक:, पिता, रुद्र:- पुत्रा: रुद्र:

व्यापक: रुद्र= अव्यापका: रुद्रा:

ईश: रुद्र:- अनीशा: रुद्रा:

उपास्य: रुद्र: - उपासका: रुद्रा:

~~उपकर~~ एक परमात्मा- अनन्ता: जीवात्मन:

वस्तुत: वैदिक ऋषियों के मत में एक रुद्र" परमात्मा है और अनन्त रुद्र अनन्त जीवात्मा है । ऋग्वेद के अनुसार " दाता रुद्र के येअसंख्य पुत्र हैं ,

---

1· ऋ0 6·66·3 रुद्रस्य ये मीलहुषसन्तिपुत्रा:

रुद्र के पुत्र रुद्र नहीं हो सकते हैं । जिस प्रकार परम- आत्मा के पुत्र अणु आत्मा (जीवात्मा) है, वैसे ही व्यापक रुद्र के पुत्र अनन्त रुद्र किं वा अव्यापक जीवात्मा है । वेदों में एक रुद्र और अनेक रुद्र अर्थात् इन पिता पुत्रों का वर्णन इस तरह मिलता है ।

" अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधु:
सौभगाय युवा पिता स्वपा रुद्र एषाम् ।। (ऋ0)

वेदोक्त इन वर्णनों से स्पष्ट होता है कि" अनेक रुद्रो का पिता "एक रुद्र" तत्त्व है और ये अनेक किं वा अनन्त रुद्र आपस में बन्धु हैं । इनमें न तो कोई श्रेष्ठ है, ज्येष्ठ है अथवा कनिष्ठ ही है । ये सभी आपस में समान अधिकार वाले है । तत्त्वज्ञ वैदिक ऋषियों के अनुसार ये सभी अनन्त रुद्र रूपी जीवात्मा उसी परब्रह्म अनन्त शक्तिमान् रुद्र देव के अंश है इसलिये ये जीवात्मा आपस में ऐसे ही भाई है, जिनमें लघुता गुरुता का कोई स्थान नहीं है ।

वैदिक ऋषि परम्परा के अनुसार " वेदों में" जीव" और " शिव" की कल्पना ही इन रुद्रो के वेद मन्त्रों में बतायी गयी है । जीव अनेक हैं और शिव एक है । इसलिये तात्त्विक दृष्टि से जीव और शिव एक ही है ।
जीव:- शिव
रुद्रास:- रुद्र:

---

1. ऋ0 5.60.5

आत्मान: - आत्मा

अजा :- अज:

अग्नय:- अग्नि:

पारमार्थिक दृष्टि से जीव और शिव तत्त्वत: एक है । इसलिये जीव शिव बनता है । इस सम्बन्ध में जीव से शिव बनने की परिकल्पना को वेद शास्त्रों में निम्नलिखित शब्दों द्वारा बताया गया है-

जीव- शिव

पुरुष- पुरुषोत्तम

आत्मा- परमात्मा

ब्रह्म- परब्रह्म

नर- नारायण

पिण्डव्यापी- ब्रह्माण्डव्यापी

रुद्र- महारुद्र

इन्द्र- महेन्द्र

देव- महादेव

नर ही नारायण बनता है यही अर्थ " रुद्र " के महारुद्र बनने का है । शब्दभेद होने पर अर्थभेद नहीं होता । इसीलिए एक वचनात्मक रुद्र शब्द से परमात्मा की परिकल्पना और बहुवचनात्मक रुद्र शब्द से जीव आत्माओं की की कल्पना की गयी है ।

तत्वज्ञ वैदिक ऋषि परम्परा के मत में सभी वेदों से आत्मा का ही ज्ञान

होता है । वेदमन्त्र जिस एकमेवाद्वितीय विश्वात्मा का बोध कराते हैं, उनके अनेक नामों से एक ही सत्य वस्तु का दिग्दर्शन होता है । रुद्रसूक्तों में भी आत्मा का ही बहुत अंशों में वर्णन मिलता है ।

वैदिक वाङ्मय में वर्णित तथ्यों से भी यही प्रतीत होता है कि रुद्रशब्द आत्मा वाचक भी है । यह रुद्र ही परमेश्वर है[1] । यही इस निखिल सृष्टि का सर्जन और विनाश करता है[2] । यह रुद्र ही है जो जगत् की रचना कर उसमें प्रविष्ट हो गया है[3] यह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है[4] ।

1. रुद्रस्य परमेश्वर: (ऋ0)
2. रुद्र संवर्त्ता देव: (अथर्व0)
(3) जगत्स्रष्टा सर्व जगदनुप्रविष्ट: रुद्र। (अथ0)
4. रुद्र: परमेश्वर: (अथर्व0)

सायणाचार्य तथा अन्यान्य वैदिक भाष्यकारों को भी यही मत उचित प्रतीत होता है । अथर्ववेद में इसी तथ्य का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया।

---

1. ऋ0 6.28.7
2. अथर्व 1.18.3
3. अथर्व 7.92.1
4. अथर्व 11.2.3

" स धाता स विधर्ता । सोऽर्यमा स रुद्रः स महादेवः ।

स एव मृत्युः । स रक्षः । स रुद्रः तस्य----- वशे चन्द्रमा । § अथर्व० §

" वह एक रुद्र ही धाता, विधाता, रुद्र, महादेव, मृत्यु और रक्षस है, उनके वश में ही चन्द्रमा है ।" इससे स्पष्ट होता है कि महादेव वाचक अनेक शब्द है । महादेव के सहचारी रक्षस् और चन्द्रमा भी है। वस्तुतः तात्त्विक दृष्टि से " रुद्र" महादेव" आदि शब्द यहाँ विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त प्रतीत होते हैं और जिसका अर्थ परमात्मा ही है । क्योंकि धाता और विधाता तो परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकता ।

स्तुतिकुसुमाञ्जलिकार श्री जगद्धर भट्ट ने रुद्र की इस सर्वातिशायिता का अत्यन्त ही तात्त्विक वर्णन किया है । उनके अनुसार " हम उस अद्भुत् दीपक को प्रणाम करते हैं जो हृदय की गुफा के तंग कमरे में आच्छादित रहता है, जिसमें तीनों लोक प्रकाशित है, कन्द स्थान के रन्ध्रसम रन्ध्र के मुख से निकलते हुये प्राण वायु से जिसकी स्थिति स्थिर है, जिसकी कोई दशा नहीं है, जिसका बुझना जलना नहीं होता, जो स्मरहित है, जो किसी स्थान विशेष का सहारा लिये बिना ही स्थिर है । जो माया रहित है तथा जिसके ज्ञान के लिये इन्द्रियों की कोई आवश्यकता नहीं होती, वह रुद्र ही एक मेवाद्वितीय परमेश्वर है । जिसकी उपासना तत्त्ववेत्ता निर्मल मन से अपने अन्तःकरण में करते हैं ।

" हृद्गुहागहनगेहगुहितं- भासिताखिलजगत्त्रयोदरम् ।
कन्दकन्दरदरीमुखोद्गतप्राणमारुतकुलस्थिरस्थिमिम् ।।
त्यक्तसर्वदशमक्षयोदयं- रूपवर्जितमभित्तिसंश्रयम् ।
यं निरञ्जनमनक्षगोचरं- दीपमुद्भुतमुशन्ति ते स्तुम् ।।

(स्तुतिकुसुमाञ्जलि)

भारतीय संस्कृति में शिव को प्रत्येक का मूलधन माना गया है । दीपक रूप में होने के कारण ही ये महेश्वर हर एक के मूलधन हैं । सम्भवतः इसीलिए वैष्णव हरि पूजन से, बौद्ध- बुद्धपूजन से, जैनजिन पूजन से, यहूदी जिहोवा के पूजन से इसी की प्राप्त करते हैं । प्रत्येक मतावलम्बी स्वशरीर के मन्दिर चैत्य, पगोडा, चर्च अथवा मस्जिद में अपने इष्टतम आराध्य देव की प्राप्ति करता है ।

शैवसर्वशिरोमणि पवित्र ग्रन्थों में इसी मानसिक पूजा के गीत गाये गये हैं । इन ग्रन्थों में शिव की सर्वव्यापकता तथा उसके सृष्टि के कण- कण में विद्यमानता की अत्यन्त सारगर्भित एवं मार्मिक व्याख्या की गयी है ।

" आत्मा त्वं गिरिजा मतिः
सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम् ।।"

अर्थात् हे मेरी आत्मा तु मेरी बुद्धि पार्वती, हे, मेरे प्राण तेरे साथी हैं, मेरा शरीर तुम्हारी कुटिया है ।

वैदिक वाङ्मय के अनुसार "इस इष्टमत को पुं- रूप से मानने पर परम शिव का ध्यान होता है, स्त्री रूप से मानने पर परम शक्ति का भास होता है। शक्ति और शक्तिमान् का अभिन्न भाव त्रिकालसिद्ध है। शक्ति की सत्ता शक्तिमान के बिना संभव ही नहीं है क्यों कि शक्ति ही तो शिव की स्पन्दन शक्ति है। इसी प्रकार शक्तिमान् अस्तित्व शक्ति से रहित नहीं हो सकता। उपनिषदों में दोनों के इस अविनाभाव को इस प्रकार दर्शाया गया है-

रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः ।।
रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मीस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।।
रुद्रः सूर्यः उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रः सोम उमा तारा तस्मै तस्यै नमो नमः ।।
रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो यज्ञ उमा वेदीस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।।
रुद्रो वह्निरुमा स्वाहा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्यै नमो नमः ।।
रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रः पुष्पमुमा गन्धस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।।
रुद्रोऽर्थः अक्षरा सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः ।।

---

1. कल्याण- शिवाङ्क पृ० 235

सम्भवत: इसीलिये शैव मत के मानने वाले प्रत्येक पदार्थ को शिव और शक्ति के समष्टि रूप से देखते हैं। उनके अनुसार जिस- जिस पदार्थ की जो-जो वस्तु शक्ति है, वह- वह वस्तु शक्ति देवी है और वह- वह पदार्थ शिव है।" वृक्ष शिव है तो वृक्षता शक्ति है। मनुष्य शिव है तो मनुष्यता शक्ति है।

यस्य - यस्य पदार्थस्य
या या शक्तिरुदीरिता।
सा सा सर्वेश्वरी देवी
स स सर्वो महेश्वर: ।।

जैसे श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान के "विश्वरूप" के दर्शन का वर्णन है, वैसे ही रुद्र सूक्तों में रुद्रस्वरूपी परमेश्वर का विश्वरूप वर्णित है। विश्वरूप दर्शन के प्रसङ्ग को लेकर श्रीमद्भगवद्गीता और रुद्रसूक्त की समानता है। रुद्र के विश्वरूप के प्रसङ्ग में विद्युत, अग्नि, वात, वायु, सोम, गृत्स, पुलस्ति, भिषक्, सभा, सभापति, वनस्पति, अरण्यपति, पत्तीनां पति, स्थपति, क्षेत्रपति, गणपति, व्रातपति, शूर, रथी, अरथ, आशुसेन, सेनानी, असिमान्, इषुमान्, धन्वी, सु- आयुध, कवची, अग्रेवध, दूरेवध, अश्वपति, वाणिज, अन्नपति, वृक्षपति, पशुपति, शिल्पी, रथकार, तक्षा, क्षत्ता, सूत, कुलाल, निषाद, परिचर, स्तेन- ये सभी रुद्र के ही रूप हैं, रुद्रसूक्त में इसी प्रकार रुद्र के स्वरूप का वर्णन मिलता है जिससे सिद्ध होता है कि रुद्र एक ही है ये विभिन्न नाम कार्यभेद से हैं। यहा यह तथ्य दृष्टव्य है कि श्रीमद्भागवद्गीता में आत्मा, ब्रह्म, भगवान्, अहम् आदि शब्दों के द्वारा जिस

आत्मा का वर्णन है, उसी का वर्णन वेद के " रुद्र सूक्तों " में रुद्र शब्द से किया गया प्रतीत होता है ।

तत्त्वज्ञ वैदिक ऋषियों के अनुसार " जिसकी कोई आकृति नहीं, जिसकी काया नहीं, जिसका रंग नहीं और जिसकी क्रिया नहीं । न यह रुद्र अक्षर रूप है, न शब्दरूप है, न कला रूप । वह केवल परमानन्दस्वरूप है और सदा सर्वदा उदय में ही रहता हुआ सूर्य है । न तो इन रुद्र देव का कभी अस्त होता है न कभी उदय । न यह क्लान्त है और न ये कभी विकृति को ही प्राप्त होते हैं । सभी जीवों के अन्दर यह भर्गरूप सूर्य विद्यमान है"। स्थूल जगत् के दीपक- सूर्य अथवा आन्तरीय जगत् के दीपक- क्षेत्रज्ञ के प्रकाश के केन्द्र भी भर्ग नाम से अङ्कित भगवान् शङ्कर ही है ।

" तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । "
" उस सूर्यरूप रुद्र भगवान् के तेज का हम ध्यान करते हैं ।"

भगवान् शङ्कर की क्रीडा प्रतिक्षण होती रहती है उसमें कभी विराम नहीं होता । भारतीय ऋषियों ने भगवान् रुद्र की इस क्रीडा को पञ्च भागों में विभाजित किया है- सृष्टि, स्थिति, संहार, लय और अनुग्रह । भगवान् रुद्र के चिद्रूप का सम्बन्ध अनुग्रह से है, आनन्दस्वरूप का लय से और इच्छारूप का ज्ञान से तथा क्रिया रूप का सम्बन्ध सृष्टि, स्थिति और संहार से है । इन पञ्चरूपों के कारण ही भगवान् शङ्कर के पञ्च नाम है । ये नाम हैं- ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात । तुर्यातीत और तुर्यदशा की व्याप्ति ईशान और तत्पुरुष से है । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की " सद्योजात",

"वामदेव" और अघोर से है । इसी क्रम से पन्च महाभूतो की व्याप्ति इनसे कही गयी है सद्योजात की ब्रह्मदेव है, वामदेव विष्णुदेव है तथा अघोर रूद्रदेव हैं ।

आस्तिक भारतीय परम्परा इस एकरूपता के पन्चहेतुओं के कारण ही इन्हें पन्च ब्रह्म के रूप से स्वीकार करती है । इनका पन्च प्रेतों के नाम से भी तन्त्र वाङ्मय में उपासना का वर्णन मिलता है इन पाँच प्रेतों के आसन पर सदा सर्वदा पराशक्ति स्थित रहती है । आध्यात्मिक दृष्टि से प्रेतता का रहस्य यह है कि शक्ति के बिना शक्तिमान् की अवस्था मृतकवत् हो जाती है, इस रहस्य का स्पष्ट सङ्केत "शिव" और "शव" दो शब्दों के रूप से प्राप्त होता है । "इ" स्वर के होने से ही शिव, शिव है और इसके न रहने की स्थिति में शव- "इ" स्वर इच्छा शक्ति अथवा सामान्य शक्ति का बोधन कराता है । कहा भी गया है " यदि शिव शक्ति से युक्त है तो करने न करने अथवा अन्यथा करने को वह समर्थ हो सकता है । लेकिन शक्ति से रहित होने की स्थिति में वह चेष्टा तक नहीं करता ।

शिव: शक्त्या युक्तो
यदि भवति शक्त: प्रभवितुं

1· शाण्डिल्य संहिता- 4·6

न चेदेवं देवो न खलु

कुशल: स्पन्दितुमपि ।।

योगीजन इस शक्तियुक्त शिव के यथार्थ रहस्य का ज्ञान करने के कारण ही शरीरान्तर होने पर भी पूर्वजन्म की स्मृति को स्मरण करते हैं । उनकी यह समर्थवान शक्ति उनके उस अलौकिक ज्ञान के कारण ही है, जिसकी सन्तति कभी विच्छिन्न नहीं होती; सम्भवत: इसीलिए भारतीय आस्तिक परम्परा उनकी मृत्यु को मृत्यु नहीं स्वीकार करती है । तत्वदर्शी महर्षियों की यह वही अवस्था है, जिसे शास्त्रों में "इच्छामृत्यु" "अमर" आदि नामों से पुकारा गया है। उन्होंने अमृतत्त्व की प्राप्ति कर ली है । नवीन शरीरों में प्रविष्ट होने पर भी उनका ज्ञान तथा पूर्वजन्म की स्मृति लुप्त नहीं होती ऐसे ही योगी जन "जातिस्मर" कहे जाते है । ये पुरुष संसार के बन्धनों से मुक्त होने पर पर जीवों के कल्याणार्थ एक या आवश्यकतानुसार अधिक बार शरीर धारण करते हैं, जगत् में आगमन करते हैं तथा मृत्यु इनकी वश वर्तिनी होकर निवास करती है । महनीयता से युक्त ऐसे ही महर्षियों के लिये वेद कहता है -

यस्तोद यत आ बभूव

सन्ध्यान्च या सन्दधे ब्रह्मणेष: । (ऋ0)

तैत्तिरीय आरण्यक भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है-

रमते बस्मिन्मुत जीर्णे शयाने नैनं

जहात्यहस्तु पूर्व्ये ।। अनुसार (तै0 आ0)

भारतीय संस्कृति के अनुसार भगवान् की मूर्तियाँ अनन्त हैं, तथा उनकी शक्ति भी अचिन्त्य है, अपने भक्तों की मङ्गल कामना से प्रेरित होकर ही वे अनेक रूपों में प्रकट हो जाते हैं। महर्षि वेदव्यास जी के अनुसार " जब प्रेम भक्ति के साधन स्वरूप श्रवण, कीर्तन, नामस्मरणादि उपायों के द्वारा उपासकों के हृदय कमल प्रफुल्लित होते हैं तब वह परमात्मा भक्तों के हृदय सरोज में आविर्भूत होते हैं। इस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की प्राप्ति का सुगम मार्ग प्रथमतः गुरु और शास्त्रों के द्वारा प्रकाशित होता है, पश्चात् साधना के द्वारा वह प्रत्यक्ष हो जाता है। जब उपासकों में भक्ति की यह उत्कृष्ट अवस्था उत्पन्न होती है। तब उनकी बुद्धिवृत्ति में भगवान् के जिस स्वरूप का ध्यान रहता है उसी भीष्टप्रद मूर्ति के रूप में वह परमेश्वर स्वयं को इस जगत् में व्यक्त करता है।

" त्वं भक्ति योग परिभावितहृत् सरोजे
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद्धिया न उरुगाय विभावयन्ति ।
तत्तद्वपुः प्रणयसे मदनुग्राहाय ।।

रुद्रदेव त्रिगुणरूप है, इसीलिये जन्म रहित सृष्टि, स्थित और संहार करने वाले, त्रिमूर्ति रूप त्रिगुणात्मा भगवान् शङ्कर तत्त्ववेत्ता जनों के उपास्य देव है। प्रसिद्ध शिवोपासक पुष्पादन्ताचार्य जी ने भगवान् रुद्रदेव के इस त्रिगुणात्मक स्वरूप का अत्यन्त सारगर्भित व्याख्या की है।

" बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः ।।

प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।

प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ।।

अर्थात् इस निखिल जगत् की उत्पत्ति में रजोगुणप्रधान भगवान् भवदेव को प्रणाम हो । जगत् के सुख के निमित्त सत्वगुण प्रधान भगवान मृड को प्रणाम हो, उसके संहार में तमोगुण प्रधान भगवान् हर को प्रणाम हो । इन तीनो गुणों से अतीत महाप्रकाश स्थान पर स्थित भगवान् शिव को प्रणाम हो ।"

वस्तुतः शिव शब्द निर्गुण तुरीय ब्रह्म का प्रतिपादक है । माण्डूक्योपनिषद् में भी शिव - पद दो बार निर्गुण तुरीय ब्रह्म के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अन्यान्य उपनिषदे भी इसी मत की पुष्टि करती प्रतीत होती है ।

1. यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।।
(ईशा० 3/8)

11 न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो
यथैतदनुशिष्यादन्यदेव । तद्विदितादथो अविदितादधि (केनो० अ०-10)

3. मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ।।
(कठ०)

4. यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्च नेति ।। (तै० बा० प्रपा०-8)

5. आत्मा वा इदमेक एवाग्र

आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत् । (ऐतरेय०)

6. सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ।। (छान्दोग्यो०)

7. मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।

मृत्यो: स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।।

(वृहदारण्यको०)

श्रीमद्भागवत् में भी इसी मत की पुष्टिकी गयी है ।

भयं द्वितीयाभिनिवेशत: स्या

दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृति: ।

तन्मायया5तो बुध आभजेत्त

भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ।।

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो

ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ।।

" श्रीमद्भाग ।।- 2·37·38)

वैदिक धर्म दर्शन में शिवके अनेकों नामों का वर्णन मिलता है । वे सब गुणकर्मादि के अनुसार ही निर्दिष्ट किये गये हैं । प्राचीनकाल में शिव का "रुद्र" नाम था । प्रलयकारी, भयकारी, महाक्रोधी अथवा संहारक आदि गुणों से युक्त होने के कारण ही उनको यह पदवी मिली थी । वैदिक काल के देव, दानव, महर्षि या मनुष्य यह स्वीकार करते थे कि " प्रलय काल के समय जो अतिवृष्टि अनावृष्टि, अग्निदाह प्रज्वलनतडित्प्रवाह अथवा जो वज्रपातादि होते थे ।

वे सभी रुद्र के ही प्रतिरूप या प्रभाव के कारण होते थे, अथवा स्वयं रुद्र ही वायु, बलि या इन्द्रादि के द्वारा प्रलय करते थे ।

ऋग्, यजुऔर अथर्ववेद में शिव के अनेकों नाम यथा- ईश, ईश्वर, ईशान्, रुद्र, कपर्दी शितिकण्ठ, सर्वज्ञ , सर्वशक्तिमान तथा सर्वभूतेश आदि हैं। इसके साथ ही साथ उनको भयकारी, भयहारी, शान्ति वर्धक, महौषधिज्ञ, ज्ञानप्रद, स्वर्णसन्निभ और कान्तियुक्त रजत के पहाड के समान भी माना गया है । उन रुद्रदेव से सुख- सम्पदा, सन्तान तथा सौभाग्यादि प्राप्त होने की प्रार्थना का भी पर्याप्त वर्णन वेदो में मिलता है ।

ऋग्वेद की 60-70 ऋचाओं में शिव के नाम, काम, प्रभाव और स्वरूपादि का वर्णन है । यजुर्वेद में क्रोधित शिव को शान्त करने के लिये शतरुद्र का स्वतन्त्र विधान का वर्णन है । अथर्ववेद में इन क्रोधी किन्तु अतिशय दयालु, रुद्र के लिये " सहस्त्रचक्षु"" तिग्मायुध" " वज्रायुध" और " विद्युच्छक्ति" नामों से पुकारा गया है । सामवेद में ये " अग्नि" स्वरूप से स्वीकार किये गये हैं ।

कैवल्य, अथर्व, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर और नारायणोपनिषद् आदि अन्यान्य उपनिषदों में तथा आश्वलायनादि गृहसूत्रों में शिव को त्र्यम्बक, त्रिलोचन, त्रिपुरहन्ता, ताण्डवनर्तक, पञ्चवक्त्र, कृत्तिवास, अष्टमूर्ति, व्याघ्रकृति, वृषभध्वज, वज्रहस्त, भिषक्तम, संगीतज्ञ, पशुपति, औषध -विज्ञ, आरोग्यवर्धक, वंशवर्धक और नीलकण्ठ कहा गया है ।

ये शिव अपने सेवकों पर न तो कभी क्रोध करते हैं और न उनकी हिंसा(वे सदैव मङ्गलकारी और कृपालु रहते हैं । इसी से उसका शिव नाम सार्थक है । शत्रु नाश के लिये ये अपने पिनाक नामक धनुष को सदैव चढ़ाये रहते हैं इसलिये इन्हें " पिनाकी " कहा जाता है । ब्रह्मा के मस्तक को कर में धारण करने के कारण इन्हें " कपाली " भी कहा जाता है । ब्रह्मा के अनुचित व्यवहार को देखकर तत्काल सिर काट लिया और कई दिनों तक उसे कर में लिये रहे ।

विद्युत् इन रुद्र देव का प्रहरण साधन है । त्रिपुर और मदन का दहन इन्होंने इसी से किया था।इन शिव के तृतीय नेत्र से विद्युत् का प्रवाह निर्गत होता है । ये इसे तभी खोलते हैं, जब उन्हें अपने अजेय शत्रुओं का संहार करना होता है ।

आबाल वृद्ध को आरोग्य रखने, पशुओं तक को स्वस्थ करने और प्रत्येक प्रकार की महौषधियों का ज्ञान होने से इन्हें " वैद्यनाथ " कहा जाता है । धन-पुत्र और सुख सौभाग्यादि देने से ही इनका " सदाशिव " नाम प्रसिद्ध हुआ है । सदा सर्वदा अचल अटल या स्थिर रहने से स्थाणु और शीघ्र प्रसन्न होने के कारण इन्हें आशुतोष कहा जाता है । अम्बिका अथवा पार्वती के पति होने से इन्हें " अम्बिकेश्वर " भी कहा जाता है ।

एक समय परब्रह्म ने स्वयं अलक्षित रहकर देवताओं को विजयी किया। इससे देवता गर्वित हुये कि हम सबको जीत सकते हैं । परब्रह्म ने उनका घमण्ड दूर करने के लिये हाथ में एक तृण लेकर कहा इसे जलाओ, किन्तु वह न जला सका ।

जल के देवता वरुण से कहा कि इस तृण को बहाओ, वह न बहा सका और वायु से कहा इसे उड़ाओ, किन्तु वह न उड़ा सके। जब अन्त में इन्द्र आए तब वह परब्रह्म अन्तर्ध्यान हो गये और सुशोभना स्वर्णवर्णा "अम्बिका" ने इनको दर्शन दिये।[1]

अम्बिका ही ब्रह्मविद्या है। वे ही कात्यायनी गौरी, पार्वती, और भवानी आदि नामों से पूजित की जाती है। भगवान रुद्र अग्नि स्वरूप है। शास्त्रों में अग्नि की सप्तजिह्वाएं निर्दिष्ट है। वे सभी शिवा के नामों में भी परिणत होती है। "काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा स्फुलिङ्गिनी, विश्वरूची ये सभी नाम अग्निवर्णा दुर्गा के भी है।

अतः स्पष्ट है कि "अग्नि वर्ण रुद्र के अग्निवर्णा अम्बिका कल्याणकारी शिव के कल्याणकारिणी पार्वती और देवाधिदेव महादेव के देव्यादि- पूज्या महादेवी दुर्गा पत्नी रूप में प्रतिष्ठित है। शास्त्रों में वर्णित इन तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि रुद्र ने जैसा रूप धारण किया है, शक्ति भी तद्रूप में अवतरित हुई है। उमा, कात्यायनी, गौरी, काली, हैमवती, ईश्वरी शिवा, भवानी, रुद्राणी, शर्वाणी, सर्वमङ्गला ये सभी शक्ति के ही रूपान्तर हैं।

वस्तुतः रुद्र एक ही है जो अपने को अनेक रूपों में व्याप्त कर इस निखिल सृष्टि का नियमन करते हैं। जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश एक है उसी प्रकार ब्राह्मणी, वैष्णवी और माहेश्वरी भी एक ही है। अपने अपने प्रसङ्ग या प्रयोजन

1. तवलकार आरण्यक- अ-5

वश इन्हें भिन्न भिन्न माना गया है अथवा कार्य और अवसर के अनुसार" ये सब यथा समय भिन्न भिन्न रूप धारण कर अपना प्रयोजन सिद्ध करती हैं। संसार में जिस समय कुछ भी नहीं रहता उस समय परब्रह्म या उनका काल नामक नित्यस्वरूप रहता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश- ये उसी परब्रह्म के रूप हैं और ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी उस नित्यस्वरूपा प्रकृति किं वा शक्ति के रूपान्तर है।

जब स्रष्टा को सृष्टि निर्माण की इच्छा होती है तब वह प्रकृति को विक्षोभित कर अपने त्रिगुणात्मक अखण्ड शरीर को त्रिधा विभक्त करके ऊपर के भाग को चतुर्मुख, चतुर्भुज, रक्तवर्ण और कमल सन्निभरूप में परिणत करते हैं। वही ब्रह्मा है। मध्यभाग को एकमुख, चतुर्भुज, श्यामवर्ण और शंखचक्र, गदाधारी के रूप में परिणत करते हैं वही विष्णु है और अधोभाग के पञ्चमुख, चतुर्भुज और स्फटिक सन्निभ शुक्लरूप में परिणत करते हैं वही " शिव " हैं। इन तीनों में उत्पत्ति, प्रवृत्ति और निवृत्ति की शक्ति भी युक्त कर देते हैं जिस से ये स्व- स्व कर्तव्य पालन मे परायण हो जाते हैं तथा उससे विकास, वृद्धि और विनाश सदैव होते रहते हैं।

वैदिक वाङ्मय में शिव अथवा रुद्र के उपर्युक्त नामों में एक नाम " सर्व-भूतेश" भी आया है और सर्वेश, सर्वशक्तिमान् या सृष्टि संहारक हैं। पारमार्थिक दृष्टि से सर्वभूतेश का अर्थ है पञ्च महाभूत, पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश

का अधिपति । यह तथ्य सर्वविदित है कि इन पन्च महाभूतों से ही इस निखिल सृष्टि की उत्पत्ति होती है तथा उनका यथायोग्य योग होते रहने से ही वे वृद्धि को प्राप्त होते और जीवित रहते हैं । इन भूतों के कुपित होने पर संसार के प्रत्येक प्राणी और पदार्थ का सर्वनाश हो जाता है । किन्तु इनका नष्ट होना "सर्वभूतेश" भगवान "शिव" की इच्छा पर निर्भर है । यही कारण है कि शिव "सर्वभूतेश" होने के कारण ही परमात्मा माने गये हैं ।

ऋग्वेद के 7 वे (सातवें) मण्डल के 51 वे (एक्यावनवें) सूक्त में रुद्र का त्र्यम्बक नाम आया है । ऐसा प्रतीत होता है कि मृत्यु के मोचनार्थ तथा अमृत में स्थिति के लिये इनका यजन तत्वज्ञ वैदिक ऋषियों ने किया था ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।

पौराणिक वाङ्मय के अनुसार जिसके द्वारा इस भुवन का निर्माण होता है जो इस निखिल जगत् के कण-कण में विद्यमान है वही रुद्र अथवा शिव है । वह परिपूर्णतम् परात्पर शिव ही सत्य है, ज्ञानस्वरूप है, वही अनन्त है, असीम चिदानन्द है । वह निर्गुण, निरुपाधि, निरन्जन और अव्यय है । वह किसी रंगविशेष का न होकर मन और वाणी से भी परे है । इसी परब्रह्म को तत्वज्ञ जन शिव नाम से उपासना करते हैं ।

---

1. शिवपुराण ज्ञान सं० 76

"तदेव शिवरूपं हि प्रोच्यते हि मुनीश्वराः ।

सत्यं ज्ञानमनन्तश्च चिदानन्द उदाहृतः ।।

निर्गुणो निरुपाधिश्च निरन्जनोऽव्ययस्तथा ।।

न रक्तो न च पीतश्च न श्वेतो नील एव च ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

तदेव प्रथमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिव संज्ञितम् ।।

कैवल्योपनिषद्[1] के अनुसार " रुद्र एक ही है वह अन्तहीन , रूपहीन, अद्वितीय एवं चिदानन्द है। यह रुद्र ही उमा सहचर त्रिलोचन ~~कलल~~ नीलकण्ठ परमेश्वर है अर्थात् ये निराकार एवं साकार है । वह साकार रूपवान् होकर भुवन मोहन है, इसी कारण वह अद्भुत है । सम्भवतः इसी कारण भारतीय संस्कृति में कहा गया है कि " वही एक अद्वितीय रुद्र शिव विभूति रूप में असंख्य हैं[2] ।

" नीलग्रीवा शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपाश्रिताः । "

पारमार्थिक दृष्टि से इन रुद्रों की कोई गणना नहीं की जा सकती है । ये सभी नीलकण्ठ भूतों के अधिपति, कपर्दी, संहार- शक्तिमान्, शर्व, भूतल, आकाश आदि में सर्वत्र रहते हैं ।

---

1. कैवल्योपनिषद् 5: 3।
2. यजुर्वेद 16/54, यजुर्वेद 16/55

रुद्र के सम्बन्ध में संख्याभेद से जो विरोध एवं असामजस्य ज्ञान पड़ता है, इसकी अत्यन्त सुन्दर मीमांसा वृहदारण्यकोपनिषद् में प्राप्त होती है। इस उपनिषद् के अनुसार " यद्यपि संख्या की दृष्टि से देवताओं की संख्या त्रयस्त्रिशत् सहस्त्र त्रयस्त्रिशत् शत् (333300) है किन्तु यथार्थत: इनकी संख्या 33(तैतीस) ही है। इस संख्या विरोध का परिहार करते हुये इस उपनिषद् में कहा गया है कि- " महिमानभेवेषामेते त्रयस्त्रिशात्त्वेव देवा:" अर्थात् प्रथमोक्त 333300 इन्हीं तैतीस देवों की विभूति मात्र हैं, मूलत: तैतीस (33) देवता ही है। इन्हीं में 11 रुद्र हैं। इन एकादश रुद्रो की विभूति 11,1100 देवताओं में है। सभी के अन्त में यह तैतीस (33) देवता एक ही प्राण देवता की विभूति माने गये हैं। वह एक प्राण देवता ही ब्रह्म है[1]। श्वेताश्वतरोपनिषद् में वही शिव नाम से अभिहित किये गये हैं[2]।

वस्तुत: भारतीय संस्कृति में रुद्र अथवा शिव का जो वर्णन मिलता है उससे यह प्रतीत होता है कि शिव ही निगूढ़ परब्रह्म हैं। सदसद् सभी वस्तुयें उसी से उत्पन्न होती है। वही ईश्वर है जो नाना प्रकार की शक्तियों के द्वारा जगत्स्वरूप में प्रकाशित होता है। वही शिव अपनी गुणमयी शक्ति के द्वारा ब्रह्मा विष्णु और शिव नाम धारण कर सृष्टि स्थिति संहार करता है। इसी लिये उसे स्वप्रकाश भूमास्वरूप भी कहा जाता है[3]।

=====--

1. वृ०उ० 6/3-9

2. श्वेता 7/3

3. श्रीमद्भागवत महापुराण स्क० 8 अ०-7

1. गुणमय्या स्वशक्त्यास्या
सर्गस्थित्यप्ययान् विभो ।
धत्से यथा स्वदृग् भूमन् ।
ब्रह्म विष्णु शिवाभिधाम् ।।

2. त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं
सदसद्भावभावनम् ।
नानाशक्तिभिराभात-
स्त्वमात्मा जगदीश्वरः ।।

****

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x
x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

सप्तमोऽध्याय:

"वेदोक्त रुद्र अथवा शिवतत्त्व का पौराणिक वाङ्मय पर प्रभाव"

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x
x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

वेदोक्त रुद्र अथवा शिव तत्त्व का पौराणिक वाङ्•मय पर प्रभाव"

प्राचीन भारतीय वाङ्•मय में निर्विकार निराकार, सच्चिदानन्द, परब्रह्म परमात्मा का वैदिक नाम शिव है। वेद के बिना शिव तत्त्व का साक्षात्कार नहीं होता इसलिये ये शिव ज्ञानस्वरूप या ज्ञानेश्वर कहे गये हैं तथा ज्ञानियों के ये एकमात्र उपास्य देव हैं।

श्रीमद्भागवद्महापुराण के अनुसार "तीर्थों में निर्मल ज्ञानियों के समूह निवास करते हैं, और इन समूहों में तत्व विषयक- वाद हुआ करता है, उन वादों से तत्व ज्ञान होता है और तत्वज्ञान से "चन्द्रचूड" अर्थात् चन्द्रशेखर शिव भासते हैं। इसवर्णन से यह सिद्ध होता है कि पौराणिक वाङ्•मय में मोक्ष के अभिलाषी जनों के एकमात्र उपास्य देव शिव ही है।

"तीर्थे तीर्थे निर्मलं विन्दं
वृन्दे वृन्दे तत्त्वचिन्ताऽनुवादः।
वादे- वादे जायते तत्त्वबोधो
बोधो बोधे भासते चन्द्रचूडः।।"

1• श्रीमद्भागवत स्कन्द 5/4, 6/3

श्वेताश्वतरोपनिषद् भी इसी मत की पुष्टि करती है कि " शिव के ज्ञान से अत्यन्त शान्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ।[1]

" ज्ञात्वा शिव शान्तिमत्यन्तमेति " ।

वैदिक धर्म दर्शन के मत में " जो रुद्र हैं वही भगवान् है । वह निर्गुण और सगुण निरुपाधि और सोपाधि निर्विशेष और सविशेष तथा निर्विकल्प तथा सविकल्प है ।[2] जो ईश्वरो का ईश्वर है वह महेश्वर, महादेव, महारुद्र, ब्रह्मण्यदेव , एक और अद्वितीय है ।[3] ये रुद्रदेव सबके कारण तथा कारण के भी कारण हैं ।[4]

पौराणिक वाङ्मय के अनुसार " प्रलय का अवसान होने पर पुनः सृष्टि के प्रारम्भ होने के पूर्व जब परब्रह्म सृष्ट्युन्मुख होते हैं, तब वे ही परात्पर सदाशिव कहे जाते हैं, वही सृष्टि के मूल कारण है मनुस्मृति ने इन्हें ही स्वयम्भू कहा है ।[5]

---

1. श्वेता० 6/3
2. तदैव 6/11
3. छान्दो 6.2.1
4. श्वेता 6.8.
5. मनुस्मृति 5.6

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यन्जयन्निदम् ।

महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ।।[1]

अर्थात् तब वे स्वयम्भू भगवान् अव्यक्त होनेपर भी प्रलय के तम को दूर कर प्रकाशित हुये और महाभूत एवं अन्य सब बडे शक्तिशाली तत्त्व उनसे प्रकट हुये । शिव पुराण भी इसी मत की पुष्टि करता है-

सिसृक्षया पुराऽव्यक्ताच्छिवः स्थाणुर्महेश्वरः ।

सत्कार्यकारणोपेतः स्वयमाविरभूत्प्रभुः ।।

यह शिव महेश्वर भी है । साक्षी, हित का उपदेश करने वाले, पोषक एवं भोक्तारूप जो यह महेश्वर परमात्मा है वही इस शरीर में परमपुरूष की भाँति है[2] ।

" उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।

परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरूष परः ।। "

शिव पुराण के मत में ये परम पुरूष शिव प्रकृति और पुरूष दोनों से परे हैं और इनका कोई कारण नहीं है क्योंकि ये देवाधिदेव कारण के भी कारण है अतः इनके कारण का होना तो सम्भव ही नहीं है[3] ।

1• शिव०वा०सं०उ० 30।/8

2• श्रीमद्भ०गी० 13/22

3• शिव०वा०सं०पू०उ० 28/33

" तस्य प्रकृतिलीनस्य य: पर: स महेश्वर: ।
तदधीनप्रवृत्तित्वात् प्रकृते: पुरुषस्य च ।।"

यह महेश्वर अपनी इच्छाशक्ति द्वारा इस निखिल जड चेतनमय जगत् की रचना करते हैं । समर्थवान् शिव की यह अद्वितीय शक्ति दो रूपों में कार्य करती है-

1· मूल प्रकृति
2· दैवी प्रकृति

गीता में इस मूल प्रकृति को अपरा- प्रकृति कहते हैं । इस अपरा प्रकृति से पन्चमहाभूत और अन्त:करण आदि दृश्य पदार्थों की उत्पत्ति होती है । परा- प्रकृति चैतन्य शक्ति है जो इस अपरा प्रकृति को " अविद्या " और परा को " विद्या " कहते हैं । इन दोनों ही प्राकृतियों के नायक और प्रेरक श्री शिव महेश्वर ही हैं ।

" क्षरन्त्यविद्या ह्यमृतं विद्येति परिगीयते ।
ते उभे ईशते यस्तु सोऽन्य: खलु महेश्वर: ।।
माया प्रकृतिरुछिष्टा पुरुषो माययावृत: ।
सम्बन्धो मलकर्मभ्यां शिव: प्रेरक ईश्वर: ।।"

पुराणों में शिव को त्रिदेव से पृथक् माना गया है । सगुण अर्थात् माया संवलित ब्रह्म जिनकी पुरुष संज्ञा है, शिव की इच्छा के अनुसार गुणों के क्षोभ

1· शिव०पु०वा०सं०अ०-33

से रजोगुण से ब्रह्मा, सत्वगुण से विष्णु और तम से रुद्ररूप हुये । ये तीनों ही ब्रह्माण्ड के त्रिदेव हैं और शिव अनेक कोटि ब्रह्माण्डों के नायक हैं । शिव पुराण के अनुसार " सर्वप्रथम ईश्वर की आज्ञा से पुरूषाधिष्ठित अव्यक्त से क्रमशः बुद्धि से लेकर विशेषपर्यन्त विकार उत्पन्न हुये । उनमें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र- ये तीन देव जगत् के कारण रूप उत्पन्न हुये । यहाँ यह तथ्य द्रष्टव्य है कि- महाविष्णु श्री शिव के सदृश त्रिदेवान्तर्गत विष्णु से उच्च हैं और वही वैष्णवों के इष्ट है । उन्हीं के अवतार श्री राम और कृष्ण हुये । ये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र क्रमशः सृष्टि, स्थिति और लय के कार्य में महेश्वर द्वारा नियुक्त हैं । तीनों एक हैं और इनका कार्य भी समवेत रूप से ही सम्पन्न होता है । तात्विक दृष्टि से इन त्रिदेवों में कोई भिन्नता नहीं अपितु अभिन्नता ही है[1] ।

पुरूषाधिष्ठितात्पूर्वमव्यक्तादीश्वराज्ञया ।
बुद्धयादयो विशेषान्ता विकाराश्चाभवन् क्रमात् ।।
ततस्तेभ्यो विकारेभ्यो रुद्रो विष्णुः पितामहः ।।
जगतः कारणत्वेन त्रयो देव विजज्ञिरे ।।
सृष्टिस्थितिलयाख्येषु कर्मसु त्रिषु हेतुताम् ।
प्रभुत्वेन सहैतेषां प्रसीदति महेश्वरः ।।

---

1. शिव० पु० वा० सं० अ० - 2

अत: स्पष्ट है कि ये त्रिदेव एक दूसरे को कार्य में सहायता देते हुये एकमत से कार्य करते हैं। जो इन तीनों में भेद समझता है, एक को श्रेष्ठ और दूसरे को कनिष्ठ कहता है, वह राक्षस अथवा पिशाच के समान है, इसमें सन्देह का कोई स्थान नहीं है।

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्द्धन्ते परस्परमनुव्रता: ।।
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णु: क्वचिद्रुद्र: प्रशस्यते।
नानेवतेषामाधिक्यमैश्वर्यन्चातिरिच्यते ।।
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिन: ।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशय: ।।

गुणत्रय से अतीत भगवान् शिव चार व्यूहों में विभक्त हैं-

1. ब्रह्मा
2. काल
3. रुद्र
4. विष्णु

---

1. शि०पु०कै०आ- 23

इनसभी के आधार शिव ही है और शक्ति के उत्पत्ति स्थान भी वही है । शिवपुराण में इस तथ्य का स्पष्ट रूपसे प्रतिपादन किया गया है ।[1]

पौराणिक वाङ्मय में त्रिदेवों में कोई भी बड़ा छोटा नहीं है । यही कारण है कि पुराणों में कहीं हर का उत्कर्ष है तो कहीं हरि का और कहीं ~~हर का उत्कर्ष है तो कहीं~~ महाशक्तियों के उत्कर्ष का वर्णन है तो कहीं शक्तिमानों के उत्कर्ष का प्रतिपादन किया गया है । तात्त्विक दृष्टि से इनमें अभेद ही है । वस्तुतः शिव शक्ति, गणेश, विष्णु और सूर्य परमात्मा के पन्च सगुण रूपों के नाम है । एक ही अन्तर है और वह यही है कि चारो के रूप चारों की मूर्ति का श्रृंगार उनके उनके ध्यान के अनुरूप है परन्तु भगवान शिव का ध्यान तो और ही है और इस ध्यान मूर्ति का रूप लिङ्ग है । शिव का यह लिङ्ग कोई सामान्य लिङ्ग नहीं है अपितु यह परात्पर परतम ब्रह्म का लिङ्ग है । स्वयं श्री विष्णु ही अपने श्रीमुख से कहते हैं[2] -

स्रष्टा त्वं सर्वजगतां रक्षिता सर्वदेहिनाम् ।
हर्ता च सर्वभूतानां त्वां विनैवास्ति कोऽपरः ।।
अणूनामप्यणीयस्त्वं महास्त्वं महतामपि ।
अन्तर्बहिस्त्वमेवैतज्जगदाक्रम्य वर्तसे ।। ।2 ।।

1· शि०व०वा०सं०उ०-79

2· स्कन्द पुराण ।·3·2·।4

निगमा स्तव नि:श्वासा विश्वं ते शिल्पवैभवम् ।

सत्वं त्वदीय एवासि ज्ञानमात्मा तव प्रभो ।। 13 ।।

अमरा दनवा दैत्या: सिद्धा विद्याधरा नगा: ।

प्राणिन: पक्षिण: शैला: शिखिनोऽपि त्वमेव हि ।। 14 ।।

स्वर्गस्त्वमपवर्गस्त्वं त्वमोङ्कारस्त्वमध्वर: ।

त्वं योगस्त्वं परा संवित्किं त्वं न भवमीश्वर: ।। 15

त्वमादिर्मध्यमन्तश्च तस्थुषां जग्मुषामपि

काल स्वस्मतां प्राप्य कलयस्यखिलं जगत् ।। 16 ।।

परेश: परत: शास्ता सर्वानुग्राहक: शिव: ।

ए एष मे कथकार्ये साक्षाद्भवति धूर्जटि: ।। 17 ।।

शिव पुराण के वायवीय संहिता के पूर्व खण्ड के छठें अध्याय में भगवान् वायु देव भी मुनियों से इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हैं ।

एक एक तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ।

संसृज्य विश्वभुवनं गोप्तान्ते सन्चुको च य: ।।

द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वर: ।

स एव सर्वदेवानां प्रभवोश्चोद्भवस्तथा ।।

शिव पुराण के अनुसार जो मनुष्य शिवलिङ्ग को विधिपूर्वक स्नान करा

---

1. शिव० पु० वा० सं० अ०-6

करउस स्नान के जल का तीन बार आचमन करता है, उसके शारीरिक मानसिक[1] और वाचिक तीनों प्रकार के पापों का शीघ्र शमन हो जाता है ।

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् ।

त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति ।।

स्कन्दपुराण[2] में भी श्री विश्वेश्वर के स्नान जल के विशेष महात्म्य का वर्णन मिलता है ।

पौराणिक धर्म-दर्शन के अनुसार इस निखिल जगत् की उत्पत्ति के मूल कारण भगवान् शिव ही है । पुराणों के अनुसार ब्रह्मा जी ने प्रथमतः मानसिक सृष्टि से ही कार्य लेने का प्रयास किया । इस कार्य हेतु उन्होंने अपने मानस पुत्र को भी उत्पन्न किया किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली । उनके मानसिक पुत्रों में प्रजा की वृद्धि की ओरप्रवृत्ति ही नहीं विकसित हो पाती थी । अतः असफल होकर ब्रह्मा ने विधिपूर्वक भगवान् शङ्कर के सहित उनकी परमाशक्ति का भी ध्यान किया और अत्यन्त घोर तपस्या प्रारम्भ कर दिया । उनकी इस घोर तपस्या से भगवान् शिव प्रसन्न हुए और अर्द्धनारीश्वर में वे ब्रह्मा के सामने प्रकट हुये । ब्रह्मा जी ने विनीत हो अर्धनारीश्वर भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया भगवान् । ने उन्हें वर दिया और साथ ही अपने शरीर से देवीदेव की

---

1. शिव०पु० विश्वेश्वर संहिता अ- 22

2. स्कन्द पु० काशी खण्ड- 41/180

रचना करने लगे ।[1]

" ससर्ज वपुषो भागाद्देवी देववरो हर: ।"
यामाहुर्ब्रह्म विद्वांसो देवी दिव्यगुणान्विताम् ।
परस्य परमां शक्तिं भवस्य परमात्मन: ।। 7 ।।
यस्यां न खलु विद्यन्ते जन्ममृत्युजरादय: ।
या भवानी भवास्याङ्गात्समाविरभवत्किल ।। 8 ।।
यस्या वाचो निवर्तन्ते मनसा चेन्द्रियै:सह ।
स भर्तुर्वपुषो भागाज्जातेव समदृश्यत ।। 9 ।।

पुराण वर्णित सृष्टि के इस स्वरूप का स्पष्ट प्रभाव महाभारत अनुशासन[2] पर्व के चौदहवे अध्याय में इन्द्र और उपमन्यु के संवाद के रूप में मिलता है ।

" सुरासुरगुरावक्त्रे कस्य रेत: पुरा हुतम् ।
कस्य वान्यस्य रेतस्तेन हेमो गिरि: कृत: ।। (2-6)

दिग्वासा: कीर्त्यते कोऽन्यो लोके कश्चोर्ध्वरेतस: ।
कस्य चार्धे स्थिताकान्ता जनङ्ग केन निर्जित: ।। 2-7 ।।

1· शिव० पु० रु० सं० पूर्व खण्ड अ- 15

2· महा अनु० पर्व अ० 14·2·6

महा० अनु० पूर्व० अ० 14·2·7

शिव इस सृष्टि के नियामक ही नहीं अपितु कण- कण में विद्यमान परब्रह्म परमात्मा है। पौराणिक वाङ्मय में शिव की सर्वव्यापकता का वर्णन अत्यन्त ही दार्शनिक ढंग से किया गया है। इन्द्र द्वारा यह कहने पर कि "देवों और असुरो के गुरु अग्नि के मुख में आदि काल में किसके वीर्य की आहुति दी गयी वह वीर्य क्या किसी अन्य का था ? जिससे स्वर्ण सुमेरु निर्मित हुआ ? इस जगत् में दिगम्बर और उर्ध्ववरेता कौन है ? किसने अपनी स्त्री को अर्धाङ्गिनी बनाया है और कामदेव के दर्प का शमन किसने किया?इन सभी प्रश्नों का जो उत्तर पौराणिक वाङ्मय विशेषत: शिव पुराण में प्राप्त होता है। न केवल परवर्ती भारतीय धर्म ग्रन्थों अपितु महाभारतादि इतिहास ग्रन्थों में भी उसका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। महाभारत के अनुशासन पर्व में इन्द्र के इन प्रश्नों का उत्तर देते हुये उपमन्यु कहते हैं कि हे इन्द्र! देवों के देव भगवान् रुद्र ही इस निखिल सृष्टि एवं संहार के कारण हैं। सम्भवत: इसीलिये यह जगत् लिङ्ग और योनि से चिह्नित है। यह सविकार निर्गुण गुणयुक्त तीनों लोक जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मादि के रेत से होती है, वह संयोग द्वारा लिङ्ग से ही उत्पन्न होता है। इसीलिये ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि और विष्णु सहित सभी देव गण दैत्य तथा राक्षस सभी स्वीकार करते हैं कि भगवान् शंकर से परे कुछ भी नहीं है। सम्पूर्ण प्रजा में दो ही चिह्न प्राप्त होते हैं या तो लिङ्ग चिह्न या योनि चिह्न। इसीलिये सम्पूर्ण प्रजा माहेश्वरी प्रजा है। अत: जो प्राणी शिव और शिवा को छोड़कर किसी अन्य को जगत् का कारण बताता है, वह पतित है।

* यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च।

त्वं चापि सह देवतै: ।

अर्चमिथा: सदा लिङ्गं

तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि स: ।।" 232

न पद्माङ्का न चक्राङ्का

न वज्राङ्का यत: प्रजा: ।

लिङ्गाङ्का: च भगाङ्का च

तस्मान्माहेश्वरी प्रजा ।। 233 ।।

देव्या: कारणभावजनिता:

सर्वा भगाङ्का: स्त्रियो ।

लिङ्गनापि हरस्य सर्वपुरुषा:

प्रत्यक्षचिह्न कृता: ।। 234 ।।

योऽन्यत्कारणमीश्वरात् प्रवदते देव्या च यन्नाङ्किवं

त्रैलोक्ये सचराचरे स तु पुमान् मूढो भवेद् दुर्मति: ।।

पुल्लिङ्ग सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्ग विद्धि चाप्युमाम् ।

द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत् ।

§ महाभारत अनुशासन पर्व अ० - 15 §

पौराणिक वाङ्मय में भगवान् शङ्कर के अनेक नाम हैं किन्तु उननामों में से पशुपति और लिङ्ग ये दो नाम अत्यन्त रहस्य से परिपूर्ण है । शिव पुराण के अनुसार-"जीव" "पशु" है और उसका "पति" "ईश" है, ब्रह्म है इसी लिये पशुपति महेश्वर का एक नाम है ।

पुराणों के मत में यह प्राणी अज्ञानी है, ईश नहीं है, सुखात्मक और दु:खात्मक है और ईश की प्रेरणा से स्वर्ग और नरक में जाता है। इसी लिए भगवान् शङ्कर इस जीव के पति अर्थात् स्वामी है और जीव पशु है।

स एष बध्यते पाशैः

सुखदु:खाशन: पशु: ।

लीलासाधनभूतो य

ईश्वरस्येति सूरय: ।। 62 ।।

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनस्सुखदु:खयो: ।

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ।। 63 ।।[1]

पौराणिक वाङ्मय के अनुसार[2] लिङ्ग शब्द का साधारण अर्थ चिह्न या लक्षण है। सांख्यदर्शन में प्रकृति को, प्रकृति से विकृतिको भी लिङ्ग कहते है। देव चिह्न के अर्थ में लिङ्ग शब्द शिव जी के ही लिये प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। स्कन्दपुराण[3] में लिङ्ग की परिभाषा देते हुये कहा गया है जिससे लय या प्रलय होता है उसे लिङ्ग कहते हैं।

" लयनाल्लिङ्गमुच्यते । "

---

1. शि०पु०वा०सं०पूर्व खण्ड अ०-5
2. लिङ्ग पुराण 13/26
3. स्कन्द पुराण 15/6

वस्तुत: स्कन्दपुराण में वर्णित लिङ्•ग का स्वरूप ही यथार्थप्रतीत होता है । भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार प्रलय की अग्नि में सभी कुछ भस्म होकर शिव लिङ्•ग में समा जाता है । वेद शास्त्रादि भी शिव लिङ्•ग में लीन हो जाते हैं । पुन: सृष्टि के आदि में लिङ्•ग से ही सभी प्रकट होते हैं । अत: "लय" से ही लिङ्•ग शब्द का उद्भव उचित प्रतीत होता है ।

पुराणों में सदाशिव से जो चैतन्य शक्ति उत्पन्न हुयी और उससे जो चिन्मय आदि पुरूष हुए, उसी को यथार्थत: शिवलिङ्•ग कहा गया है । ये लिङ्•ग इसलिये सर्वपूज्य हैं क्योंकि इसी से इस निखिल विश्व की रचना हुई वहीं सबका कारण है और उसी से सबका अवसान भी होता है । सम्भवत: इसीलिये शिवपुराण का कथन है कि समस्त लिङ्•ग पीठ (आधार) अर्थात् प्रकृति पार्वती और लिङ्•ग को चिन्मय पुरूष समझना चाहिये । इन दोनों के सहयोग से इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई[1] ।

"पीठमम्बामयं सर्व शिवलिङ्•गन्च चिन्मयम् "

स्वयं श्री शिव ही कहते हैं कि जो प्राणी लिङ्•ग को संसार का मूल कारण और इस कारण जगत् को लिङ्•मय समझकर इस आध्यात्मिक दृष्टि से संवलित होकर लिङ्•ग की अर्चना करता है वही मेरी यथार्थ पूजा करता है[2] ।

"योऽर्चयाऽर्चयते देवि पुरूषो मां गिरे: सुते ।
लोकं लिङ्•गात्मकं ज्ञात्वा लिङ्•गे योऽर्चयते हि माम् ।
न मे तस्मात्प्रियतर: प्रियो वा विद्यते तत: ।।"

1• शिवपु०विद्ये० सं० अ०-9

2• सनत्कुमार सं० अ० -30

पौराणिक वाङ्•मय में अनेक स्थलों पर इस तथ्य का कथा के माध्यम से प्रतिपादन किया गया है कि सृष्टि के आदि में ब्रह्मा और विष्णु को शिव-लिङ्•ग के दर्शन हुये, जिसका आदि- अन्त दोनों ने नहीं पाया । उसके पश्चात् उस लिङ्•ग में प्रणव के अक्षर प्रकट हुये । वस्तुत: पुराणों के मत में प्रणव के अक्षरों के प्रकट होने का तात्पर्य नाद अर्थात् शब्द ब्रह्म का प्रकट होना है जो सृष्टि के समस्त पदार्थों का आदि कारण है । यह लिङ्•ग ही महाचैतन्यमय आदिपुरुष है जिसके संकल्प अथवा इच्छाशक्ति में सम्पूर्ण विश्व निहित है और उसी से उस विश्व की उत्पत्ति हुई है[1]

पुराणों मे शिव की पन्च एवं अष्ट मूर्तियों का भी उल्लेख मिलता है । शिव की प्रथम मूर्ति क्रीडा करती है, द्वितीय तपस्या करती है, तृतीय लोक संहार करती है, चतुर्थ प्रजा की सृष्टि करती है और पन्चम् मूर्ति ज्ञानयुक्त होने के कारण सहस्त्रयुक्त सम्पूर्ण संसार को आच्छन्न कर रखती है । पौराणिक धर्म दर्शन के अनुसार " वह ईशान मूर्ति भगवान् शिव ही सबके प्रभु, सभी में वर्तमान, सृष्टि और प्रलयकर्ता तथा सबके रक्षक हैं । सम्भवत: इसी लिये उनका नाम ईशान भी है[2] ।

1• शिव पु0 वा0 सं0 अ0-27

लिङ्•ग पुराण - 33/52

2• शिव पुराण सनत्कुमार सं0 अ0-6

श्री शिव की यह परमोत्तम प्रथम मूर्ति साक्षात् प्रकृति- भोक्ता, क्षेत्रज्ञ पुरूष में अधिष्ठित रहती है । तत्पुरूष नामक दूसरी मूर्ति सत्त्वादि गुणाश्रय भोग्य प्रकृति में अधिष्ठित है । तृतीय घोराख्य मूर्ति धर्मादि अष्टाङ्ग संयुक्त बुद्धि में अवस्थित रहती है । चतुर्थमूर्ति जिसे वामदेव भी कहते हैं अहङ्कार की अधिष्ठातृ है तथा पाँचवी सद्योजात मूर्ति मन की अधिष्ठातृ है । संक्षेपतः श्री शिव की ये अष्टमूर्तियाँ शर्व, भव, रूद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्र में अधिष्ठित रहती है[1]।

पौराणिक धर्म दर्शन के अनुसार " श्री शिव का वृहद् परम कल्याणकारी कार्य इस विश्व में जगद्गुरू के रूप में नाना प्रकार की विद्या, योग, ज्ञान तथा भक्ति आदि का प्रचार करना है जो बिना उनकी कृपा के प्राप्त नहीं हो सकते हैं । ये महेश्वर केवल जगद्गुरू ही नहीं प्रत्युत् अपने कार्य- कलाप , आहार- विहार और संयम- नियम द्वारा जीवनमुक्त के लिये आदर्श स्वरूप है । लिङ्ग पुराण[2] और शिव पुराण[3] के वायवीय संहिता में शिव के योगाचार्य होने तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों का विशद वर्णन है ।

---

1. शिवपुराण सनत्कुमार संहिता अ0-6 श्लोक- 13-18
2. लिङ्ग पुराण अ0-7
3. शिव पुराण वा0 सं0 पूर्वखण्ड अ0-22

शिव पुराण में वर्णित है-

"युगावर्तेषु शिष्येषु योगाचार्य स्वरूपिणा ।
तत्र तत्रावतीर्णेन शिवेनैव प्रवर्त्तते ।।
संक्षिप्यास्य प्रवक्तारश्चत्वारः परमर्षयः ।
रूरुर्दधीचोऽगस्त्यश्च उपमन्युर्महायशाः ।।
ते च पाशुपता ज्ञेयाः संहितानां प्रवर्तकाः ।
तत्सन्ततीनां गुरवः शतशोऽथ सहस्रशः ।।"

प्रत्येक युग के प्रारम्भ में भी शिव योगाचार्य के रूप में अवतीर्ण होकर अपने शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते हैं । चार बड़े ऋषियों ने इस योगशास्त्र को संक्षेप में वर्णित किया है । उन ऋषियों के नाम है- रूरू, दधीचि, अगस्त्य और उपमन्यु ये ऋषि पशुपति के उपासक और पशुपत संहिताओं के प्रवर्तक भी कहे जाते हैं । शिव पुराण की वायवीय संहिता के उत्तर भाग के दसवें अध्याय में इन योगाचार्यों और उनके शिष्य- प्रशिष्यों का सविस्तार वर्णन है और उनके नाम भी वहाँ वर्णित हैं । इनमें सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, कुथुमि, मित्रक, आदि उल्लेखनीय है । इस पुराण के मत में जो इन्हें अपना सद्गुरू मानकर शिव की उपासना -ध्यान करता है, वह अनायास ही शिव का साक्षात्कार करता है, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं करना चाहिये ।

* स्वदेशिकानिमान् मत्वा

1. शिवपुराण वा० सं० उत्तरभाग- अ010 श्लोक सं0 28

नित्यं यः शिवमर्चयेत् ।
स याति शिव सायुज्यं
नात्र कार्या विचारणा ।।"

पुराणों में शिव की महत्ता का प्रतिपादन करने वाली अनेक कथाये मिलती है, लिङ्ग पुराण में भगवान् श्रीकृष्ण का पुत्रप्राप्ति हेतु वन में जाने का उल्लेख मिलता है । वहाँ पर महामुनि उपमन्यु उन्हें भस्मोद्धूलन कराते हैं तथा उन मुनिश्रेष्ठ से भगवान् श्रीकृष्ण शिवमन्त्रोपदेश ग्रहण कर तपश्चर्या करते हैं । उनकी कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर महेश्वर उन्हें वर प्रदान करते हैं ।[2]

इसी पुराण के उत्तरार्द्ध के पञ्चम अध्याय में भगवान् विष्णु जब अम्बरीष को वर प्रदान करते हैं तब अम्बरीष विष्णु भगवान् से कहते हैं कि- हे लोकनाथ परमानन्दस्वरूप। मेरी वृत्ति वाणी मन और शरीर के कर्मों सहित वासुदेव परायण है । जैसे आप देवाधिदेव परमात्मा शिव के भक्त है वैसे ही हे जनार्दन विष्णो ।। मैं आपका भक्त होऊँ, ऐसा अनुग्रह कीजिये ।" लिङ्ग पुराण के ये दोनों ही प्रसङ्ग भगवान् विष्णु के शिव भक्त होने का स्पष्ट समर्थन करते हैं ।

"लोकनाथ परमानन्द नित्यं मे वर्तते मतिः ।

---

1. शिव पुराणवा० सं० उत्तरभाग अ०-10 श्लोकसं०-28
2. लिङ्ग पुराण पूर्वार्द्ध अ०-108

वासुदेवपरा देव वाङ्मनः कायकर्मभिः ।।

यथा त्वं देव देवस्य भवस्य परमात्मनः ।

तथा भवाम्यहं विष्णो तव देव जनार्दनः ।।"

श्रीमद्भागवत् महापुराण के मत में नारायणावतार श्रीकृष्ण जैसे पति का योग होने में रुक्मिणी को भी शिवाराधन ही निमित्त हुआ । स्वयं श्री रुक्मिणी जी कहती है कि- "वापी, कूप, तडाग आदि निर्माणरूप पूर्त्त, यज्ञ देवार्चनादि इष्ट, अहिंसादि नियम, शिवरात्रि आदि व्रत और देव ब्राह्मण, गुरु, प्रभृति का पूजन- सत्कार इन सबका सत्कर्मानुष्ठान द्वारा यदि मैंने भगवान् परेश महादेव का कुछ भी आराधन किया हो तो गदाग्रज श्री कृष्ण आकर मेरा पाणिग्रहण करें, शिशुपालादि अन्य कोई न करें ।

"पूर्तेष्टदत्त नियमव्रतदेवविप्र-

गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान परेशः ।

आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं

गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ।।"[1]

श्रीरुक्मिणी जी आगे भी कहती हैं कि मैं दुर्भगा हूँ । न तो धाता और न महेश्वर ही मेरे अनुकूल होकर मुझ पर कृपा करते हैं और रुद्राणी, गिरिजा सती भी मुझसे विमुख है । इसप्रकार जब रुक्मिणी जी उद्विग्न हो जाती हैं तब विधि का रखने वाली वृद्ध ब्राह्मण स्त्रियाँ उस बाला (रुक्मिणी) से शिव

---

1. श्रीमद्भागवत् महापुराण उत्तरार्द्ध 40-52

युक्त भवानी का वन्दन कराती है ।

" दुर्भगाया न मे धाता
नानुकूलो महेश्वर: ।
देवी वा विमुखा गौरी
रुद्राणी गिरिजा सती ।।
" तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषित: ।
भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवपत्नी भवान्विताम् ।।"

स्वयं रुक्मिणी शिवयुक्त भवानी की वन्दना करते हुये कहती है कि "हे अम्बिके । तुम्हारी सन्तान गणपति, कार्तिकेयादि युक्त तुमको नमस्कार करती हूँ । मुझे श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो । मेरी इस अभिलाषा को आप पूर्ण करें । "[2]

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं
स्वसन्तानयुतां शिवाम् ।
भूयात्पतिर्मे भगवान्
कृष्णस्तदनुमोदताम् ।। "

इन विभिन्नपुराणों में प्राप्त वर्णनों से यह सिद्ध होता है कि शिव जी न केवल मनुष्यो अपितु ब्रह्मा , विष्णु आदि देवों के भी आराध्य हैं ।

1• श्रीमद्भागवत् महापुराण उत्तरार्द्ध अ० - 53-श्लोक- 25,45

2• श्रीमद्भागवत् महापुराण उ०अ०-53

भगवान् श्री कृष्ण परम शिवभक्त और शिवमहिमा के जानने वाले हैं। कूर्म पुराण के अनुसार "कृष्णद्वैपायन{ व्यासमुनि} साक्षात् विष्णुरूप ही है, इसमें संशय नहीं व्यासमुनि को छोड़कर परमेश्वर रुद्र को और कौन तत्त्व उसे जान सकता है? सत्यवती पुत्र व्यास और देवकी नन्दन श्रीकृष्ण- इन दोनों के अतिरिक्त अर्जुन के समान कोई शिवभक्त भूतकाल में हुआ नहीं और भविष्य में होगा भी नहीं।

कृष्णद्वैपायन: साक्षाद्विष्णुरेव न संशय: ।
को ह्यन्यस्तत्त्वतो रुद्रं वेत्ति तं परमेश्वरम् ।।
नार्जुनेन सम: शम्भोर्भक्तो भूतो भविष्यति ।
मुक्त्वा सत्यवतीसूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम् ।।

महाभारत के खिलपर्व हरिवंश में भविष्यान्तर्गत् कैलासयात्रा के अध्याय 73 में रुक्मिणी की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण कहते हैं-

एष गच्छामि पुत्रार्थं कैलास पर्वतोत्तमम् ।। 35 ।।
तत्रोपास्य महादेवं शङ्करं नीललोहितम् ।
ततो लब्धास्मि पुत्रं ते भवाद् भूतहिते रतात् ।। 36 ।।
तपसा ब्रह्मचर्येण भवं शङ्करमव्ययम् ।
तोषयित्वा विरूपाक्षमादिदेवमजं विभुम् ।। 37 ।।

---

1. कूर्म पुराण- 30-32

गमिष्याम्यहमद्यैव द्रष्टुं शङ्करमव्ययम् ।

स च मे दास्यते पुत्रं तोषितः स तपसा मया ।। 38 ।।

§ महाभारत-अ0-73-

श्रीकृष्ण की इस उत्कट भक्ति को देखकर स्वयं श्री शिव जी कहते हैं कि " अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्ण मेरा यथावत् आराधन करते हैं इसलिये कृष्ण से बढ़कर मुझे अन्य कोई प्रिय नहीं है ।

अहं यथावदाराध्यः

कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।

तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो

मम न विद्यते ।। " § महाभारत सौप्तिकपर्व"

पुराणों में विशेषतः महाशिवपुराण- ज्ञानसंहिता § अध्याय-6। से 7।§ में इस बात का उल्लेख प्राप्त होता है कि वटुकाचल§ सुदामापुरी के पास स्थित बरडा पर्वत§ पर सप्तमास तक श्री कृष्ण ने तप किया और वे महादेव को नित्य सहस्त्रनाम से बिल्व पत्र चढ़ाते थे । उनके तप से तुष्ट होकर भगवान् शिव ने उन्हें अनेक वर दिये जिनमें पुत्र प्राप्ति का वरदान मुख्य था ।

महाभारत के अनुशासनिक पर्व में श्रीकृष्ण स्वयं ही कहते हैं कि " धर्म में मेरी दृढ़ता रहे, युद्ध में शत्रुघात, जगत् में उत्तम यश, परम बल, योग प्रियता, शिव

---

1. शिवपुराण ज्ञान संहिता अ0-061-71

का सान्निध्य, दास और पुत्र ब्राह्मणों में कोपाभाव, पिता की प्रसन्नता सैकड़ों शुभ कार्य, उत्कृष्ट वैभव भोग, कुल में प्रीति, माता का अनुग्रह शम प्राप्ति शान्ति, लाभ, औददक्षता- इन गुणों से मैं युक्त हो जाऊँ। इस प्रकार ये पन्द्रह वर श्रीकृष्ण ने मांगे और महादेव ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रदान किया।[1]

स्कन्दपुराण के अनुसार- " शिव को छोड़कर अन्य कोई भी देव साक्षात् संसार मोचक नहीं है। इस पुराण में स्वयं भगवान् विष्णु ही सत्यसन्ध से कहते है कि मैं और ब्रह्मादि अन्य देव, त्रिशूलधारी महादेव के प्रसाद से अर्थात् शिवाज्ञा सम्पादन के द्वारा संसारमोचक हो सकते हैं, इसलिये हे निष्पाप! नाम से और अर्थ से महेश्वर ही महादेव है, अन्य सभी तो मात्र देव ही कहे जाते हैं। जो पुरुष महादेव को छोड़कर मेरा भजन श्रद्धा से करता है उसका कोटि जन्म होने पर भी संसार से मोक्ष कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि कैवल्य मुक्ति देने वाले केवल महादेव ही हैं।[2]

" नाहं संसारमग्नानां साक्षात् संसारमोचकः।
ब्रह्मादिदेवाश्चान्येऽपि नैव संसारमोचकाः ।। 39 ।।

1• महाभारत अनु०- पर्व

2• स्कन्दपुराण सूत संहिता यज्ञ वैभव खण्ड अ०- 25

अहं ब्रह्मादिदेवाश्च प्रसादात् तस्य शूलिनः ।

प्राप्ताश्चैव हि संसारमोक्षा नात्र संशयः ।। 44 ।।

नामतश्चार्थश्चापि महादेवो महेश्वरः ।

तदन्ये केवलं देवा महादेवा नेऽनघ ।। 51 ।।

महादेव विना यो मां

भजते श्रद्धया सह ।

नास्ति तस्य विनिर्मोक्षः ।

संसाराज्जन्मकोटिभिः ।। 52 ।।

लिङ्ग पुराण के मत में शिव अविनाशी , परब्रह्म, निर्दोष, सर्वसृष्टि के स्वामी, निर्गुण, अलख, ईश्वरों के ईश्वर, सर्वश्रेष्ठ, विश्वम्भर तथा इस चराचर जगत् के संहारकर्ता है । वे ही परब्रह्म, परमतत्त्व, परमात्मा और परमज्योति हैं । समस्त सृष्टि के आदिकारण सदा शिव ही हैं ।

भगवान् शिव अथवा रुद्र की सर्वज्ञता, व्यापकता, अथवा ईश्वरत्त्व को सिद्ध करने के लिये लिङ्ग पुराण में अनेकों मनोहर कथाएं प्राप्त होती है । शिव की सर्वोत्तमता तथा लिङ्गोत्त्पत्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस पुराण में प्राप्त होता है । एक बार विष्णु और ब्रह्मा में इस विषय पर कि परमेश्वर कौन है, विवाद खड़ा हो गया । दोनो ने ही स्व स्व को ईश्वर सिद्ध किया । इन दोनों में विवाद अभी हो ही रहा था कि एक अति प्रकाशमान ज्योतिलिङ्ग उत्पन्न हुआ । उस लिङ्ग के प्रादुर्भाव को देखकर दोनों ने उसे

अपनी कलह निवृत्ति का साधन समझकर यह निश्चय किया कि जो कोई इस लिङ्•ग के अन्तिम भाग को स्पर्श करेगा वही परमेश्वर होगा । वह लिङ्•ग नीचे और ऊपर दोनों ओर था । ब्रह्मा जी तो हंसरूप होकर उस लिङ्•ग के अग्रभाग की खोज में ऊपर उडे और विष्णु जी ने अति विशाल और सुदृढ वराह बनकर लिङ्•ग के नीचे की ओर प्रवेश किया । इस प्रकार दोनों हजारो वर्ष तक चलते रहे, परन्तु लिङ्•ग का अन्त नहीं पाया । अन्तत: दोनों ही व्याकुल होकर लौट आये और बार- बार उस परमेश्वर को प्रणाम कर उसकी माया से मोहित होकर विचार करने लगे कि यह क्या है कि जिसका न कहीं अन्त है और न आदि । विचार- करते - करते एक ओर प्लुत स्वर से" ओडम्, ओउम्" यह शब्द कर्णगोचर हुआ शब्द का अनुसन्धान करके जब उन्होंने लिङ्•ग की दक्षिण की ओर देखा तो ओंकार स्वरूप स्वयं श्री शिव ही दीख पडे । भगवान् विष्णु ने श्री शिव की स्तुति किया स्तुति को सुनकर श्री शिव प्रसन्न होकर कहने लगे, हम आप लोगों से प्रसन्न है, आप लोग भय को त्याग कर हमारा दर्शन करो । तुम दोनों की ही उत्पत्ति हमारे देह से हुई है । सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा हमारे दक्षिण अङ्•ग से और विष्णु वाम अङ्•ग से उत्पन्न हुये हैं, वर मांगो । विष्णु और ब्रह्मा ने उनके ऐसा कहने पर शिव चरणों में दृढ भक्ति मांगी[1] ।

1• लिङ्•ग पुराण 30-35

जिस समय नगाधिराज ने स्वसुता पार्वती का स्वयंवर किया था उस समय उनके निमन्त्रण पर वहाँ अनेकों देव, नाग, किन्नर आदि एकत्रित हुये शिव भी एक बालक के रूप में वहाँ आये और पार्वती के उत्सङ्ग में जाकर बैठ गये। बालक के इस उद्धत व्यवहार को देखकरदेवगण क्रुद्ध हुये और एक एक करके उस बालक पर प्रहार करने को अग्रसर हुये। परन्तु वह कोई सामान्य बालक तो था नहीं जो उनके उस प्रहार से डर जाता। वह तो स्वयं सदाशिव ही थे। उन्होंने अपने ओज, द्वारा देवों के अङ्गों को स्तम्भित एवं अस्त्रों को कुण्ठित कर दिया देवताओं के इस पराभव को देखकर ब्रह्मा ने ध्यान पूर्वक विचार किया तो ज्ञात हुआ कि यह बालक तो स्वयं श्री शिव ही है। यह ज्ञात होते ही वे महादेव के चरणों में लोट गये और उनकी स्तुति करने लगे[1]।

स्रष्टा त्वं सर्वलोकानां प्रकृतेश्च प्रवर्तक: ।
बुद्धिस्त्वं सर्वलोकानामहङ्कारस्त्वमीश्वर: ।। 1 ।।
भूतानामिन्द्रियाणाञ्च त्वमेवेश प्रवर्तक: ।
तवाहं दक्षिणादस्तात्सृष्ट: पूर्वं पुरातन: ।। 2 ।।
वामहस्तान्महाबाहो देवो नारायण: प्रभु: ।
इयं च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारण: ।। 3 ।।
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता ।
नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमो नम: ।। 4 ।।

---

1. लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अ0-102

प्रजापत्तिव देवेश नियोगाच्च मया प्रजा: ।

देवा दानवा: इमा सृष्टा मूढास्त्वद्योगमोहिता: ।। 5 ।।

शिव विवाह के समय विष्णु के प्रति ब्रह्मा जी के निम्नलिखित वाक्य शिव जी के महानता एवं सर्वव्यापकता का प्रतिपादन करते हैं ।

हे विष्णु ! आप और भगवती पार्वती शिव जी के वाम अङ्ग से उत्पन्न हुये हैं । शिव जी की माया से ही भगवती हिमालय की दुहिता हुई । यह भगवती आपकी और हमारी जननी है और शिव जी पिता है । शिव की मूर्तियों से ही जगत उत्पन्न हुआ है । भूमि, जल, अग्नि , आकाश, पवन, सूर्य, चन्द्र ये सभी शिव जी की मूर्तियाँ है । यह पार्वती शुक्ल, कृष्ण, लोहित वर्णों से युक्त अजा अर्थात् माया है और स्वयं श्री शिव भी प्रकृतिरूप हैं ।

पौराणिक वाङ्मय के अनुसार श्री भगवान् के अनेक नामरूपों में से उपासना के निमित्त किसी एक का ही ग्रहण हो सकता है, क्यों कि जब एक से अधिक दो में भी मन की स्थिरता असम्भव है तो फिर जहाँ अपरिमित नामरूपों का विस्तार है वहाँ का तो कहना ही क्या है । वरन् यह तो उपासना के निमित्त सर्वथा असम्भव दशा है । अत: जो भगवद् तत्त्व को अर्थात् शिव तत्त्व को एक समझकर उसके अनेक नामरूपों में से एक को उपास्य मानकर उसकी उपासना करता है उसके हृदय में तो अन्य नामरूपों के लिये विपरीत भाव आ ही नहीं, सकता । किन्तु यह अभिन्न भावमय उपासना सत्वगुण के भी परे समझनी चाहिये और इसका अधिकारी वहीं हो सकता है जो त्रिगुणातीत हो । गीता में भी

1. कूर्म पु0 6/12-13

इसी तथ्य का प्रतिपादन किया गया है।

" मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्म भूयाय कल्पते ।।
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।।[1]

शिवपुराण[2] के मत में शिव तत्त्व के साथ आत्मा का ऐक्य स्थापित कर इन्द्रियों का निग्रह करना ही भस्म धारण करना है, क्योंकि श्री शिव जी ने ज्ञान चक्षु के द्वारा ही काम को भस्म किया था। इस पुराण के अनुसार शिवकी आराधना हृदय में करनी चाहिये। हृदयस्थ शिव को छोड़कर जो वाह्य रूप में ही शिव की पूजा करते हैं वे मानो हस्तगत फल को त्यागकर अपनी कोहनी को चाटते है। ज्ञान से ध्यान एवं ध्यान से ज्ञान तथा दोनों के मिलन से ही मुक्ति होती है।[3] इसलिये ध्यान यज्ञ का कभी परित्याग करना चाहिये।

" पुरुषं शाश्वतं सूक्ष्मं द्रष्टव्यं ध्यान चक्षुषा ।
यतते ध्यानयोगेन यदि पश्यते पश्यति ।।
परमात्मा हृदिस्थो हि स च सर्व प्रकाशते ।
नाभिनाभीभिरत्यर्थं क्रीडामोह विसर्जनम् ।।

---

1. गीता अ0-14
2. शिवपुराण सनत्कुमार संहिता अ0 56-58
3. तथैव - 38

स नाडीतोऽथ मन्तव्यो येन विश्वं हृदि व्रजेत ।
पूर्वास्ते हृदि तिष्ठन्ति तन्मनस्तत्परायणाः ।।
स्वदेहायतनस्यान्तर्विचिन्त्य शिवम्बया ।
हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयज्ञेन पूजयेत् ।।"

भगवान् शिव प्रणव स्वरूप हैं क्योंकिप्रकृति से उत्पन्न हुये संसार सागर के लिये यह प्रणव नौकारूप है, इसी कारण विज्ञ जन से "प्रणव" कहते हैं। भगवान् शिव स्वयं ही ब्रह्मा विष्णु से कहते हैं कि उस उस मन्त्र से वह वह सिद्धि प्राप्त होती है, किन्तु प्रणव मंत्र से परिपूर्ण सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त हो जाती है।[2]

" अनेन मन्त्रकन्देन भोगोमोक्षस्य सिद्धयति ।
सकला मन्त्रराजानः साक्षाद् भोगप्रदाः शुभाः ।।"

वेद के आदि में तथा दोनों काल के सान्ध्या वन्दनमेंभी ओङ्कार का प्रयोग करना चाहिये। नौ करोड जप करने से पुरुष शुद्ध हो जाता है। पुनः नौ करोड से पृथिवी तत्त्व का जपहोता है। इसीप्रकार नौ- नौ करोड से क्रमशः जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्त्व का जप होता है। पश्चात्

---

1. शिव पु० विद्ये० सं० अ० - 17 श्लोक सं० 4
2. शिव ० पु० विद्ये० सं० अ०- 10 श्लोक सं० 23

नौ- नौ करोड से क्रमश: पञ्चतन्मात्राओं तथा अहङ्कार तत्त्व का जप होता है। नित्य सहस्त्र मंत्र जपने से पुरूष शुद्ध रहता है। फिर इससे अधिक जप आत्मज्ञान के निमित्त होता है। इस प्रकार 108 करोड जप करने से पुरूष प्रबुद्ध होकर शुद्ध योग को प्राप्त होता है। और शुद्ध योग से वह निश्चित रूपेण नि:सन्देह जीवनमुक्त हो जाता है। इस प्रणव रूपी शिव का सदा सर्वदा जप और ध्यान करने वाला महायोगी समाधि में स्थित हो कर शिव रूप हो जाता है।

वेदादौ च प्रयोज्यं स्याद्वन्दने सन्ध्ययोरपि।
नवकोटिजपाञ्जप्त्वा संशुद्ध: पुरूषो भवेत्॥
पुनश्च नवकोट्या तु पृथिवीजयमाप्नुयात्।
पुनश्च नवकोट्या तु ह्यपां जयमाप्नुयात्॥
पुनश्च नवकोट्या तु तेजसां जयमाप्नुयात्।
पुनश्च नवकोट्या तु वायोर्जयमाप्नुयात्॥
आकाशजयमाप्नोति नवकोटिजपेन वै।
गन्धादीनां क्रमेणैव नवकोटिजपेन वै॥
अहङ्कारस्य च पुनर्नवकोटिजपेन वै।
सहस्त्रमन्त्रजप्तेन नित्यं शुद्धो भवेत्पुमान्॥
तत: परं स्वसिद्ध्यर्थं जपो भवति हि द्विजा:।
एवमष्टोत्तरशतकोटिजप्तेन वै पुन:॥
प्रणवेन प्रबुद्धस्तु शुद्धयोगमवाप्नुयात्।

शुद्धयोगेन संयुक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः ।।
सदा जपन् सदा ध्यायञ्छिवं प्रणवरूपिणम् ।
समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः ।।

(विद्ये० सं०अ० 17 श्लोक 18-25)

शिव पुराण के अनुसार भूतभावन भगवान् श्री शिव प्राणियों के कल्याण के लिये तीर्थ- तीर्थ में लिङ्ग रूप से वास करते हैं । जिस - जिस पुण्य स्थान में भक्तजनों ने उनकी अर्चना किया उसी उसी स्थान में वे प्रकट हुये और ज्योतिर्लिङ्ग के रूप में सदा के लिये अवस्थित हो गये । यों तो ये शिवलिङ्ग असंख्य है फिर भी इनमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग सर्वप्रधान है ।

" सौराष्ट्रे सोमनाथञ्च श्रीशैलेमल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कार परमेश्वरम् ।
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
वाराणस्याञ्च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।।
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशञ्च शिवालये ।।
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ।।
यं यं काममपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः ।
तस्य तस्य फलप्राप्तिर्भविष्यति न संशयः ।।

एतेषां दर्शनादेव पातकं नैव तिष्ठति । कर्मक्षयो भवेत्तस्य यस्य तुष्टो महेश्वरः ।।

पौराणिक वाङ्मय में इन द्वादश ज्योतिलिङ्गों का अपना एक विशिष्ट आध्यात्मिक महत्व है । सोमनाथ के शिवलिङ्ग के सम्बन्ध मेंएक अत्यन्त रोचक कथा कावर्णन महाभारत, स्कन्दपुराण तथा श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों में मिलती है । दक्ष प्रजापति द्वारा क्षयी होने के शाप से त्राणपाने के लिये चन्द्रदेव ने छः महीने तक निरन्तर जप द्वारा भगवान् आशुतोष को प्रसन्न किया और अमरता का वरदान प्राप्त किया था ।

श्री शैल पर्वत पर स्थित श्री मल्लिकार्जुन शिवलिङ्ग भी श्री शिव का नित्य निवास धाम हैं । रुद्र संहिता के अनुसार एक बार शंकर सुवन श्री गणेश और स्वामी कार्तिकेय दोनों भाई विवाह के लिये झगड़ने लगे दोनों ही लोग एक दूसरे से पहले अपने विवाह का आग्रह करने लगे । उनके इस हठ भरे आग्रह को देखकर भवानी शङ्कर ने यह फैसला किया कि जो कोई सबसे पहले पृथिवी की परिक्रमा कर डालेगा, उसी का विवाह पहले होगा । यह बात सुनते ही स्वामी कार्तिकेय तो छोड पड़े, किन्तु श्री गणेश जी स्थूलकाय होने के कारण नहीं दौड़ पाये । लेकिन गणेश जी ने तुरन्त बुद्धि बल का आश्रय लिया और माता पार्वती और महेश्वर को आसन पर बैठाकर उन्हीं की सात बार परिक्रमा कर डाली और उनका पूजन किया और इसप्रकार पृथिवीप्रदक्षिणा के फल को पाने के अधिकारी बन गये ।

---

1. रु० सं० खण्ड- 4 अ० 19

" पितृेश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्ति च करोति यः ।

तस्य वै पृथिवीजन्यं फलं भवति निश्चितम् ।।

ज्योतिर्लिङ्गों में तृतीय लिङ्ग श्रीमहाकालेश्वर शिवलिङ्ग है । यह लिङ्ग मालव प्रदेशान्तर्गत क्षिप्रा नदी के तट पर उज्जयिनी नगरी में है । स्कन्दपुराण[1] के अवन्ति खण्ड में इसका वर्णन वर्णन है ।

शिव के प्रसिद्ध ज्योतिर्लिङ्गों में ओङ्कारेश्वर महादेव भी मालवा प्रान्त में नर्मदा के तट पर अवस्थित है ।

उत्तराखण्ड में बदरीनाथ और केदारनाथ दो प्रसिद्ध तीर्थ है, दोनों के दर्शनों का विशेष महत्त्व है । केदारनाथ के विषय में लिखा है कि जो व्यक्ति केदारेश्वर के दर्शन किये बिना बदरीनाथ की यात्रा करता है उसकी यात्रा सफलीभूत नहीं होती[2] ।

अकृत्वा दर्शनं वैश्य केदारस्याघनाशिनः ।

योगच्छेद् बदरीं तस्य यात्रा निष्फलां व्रजेत् ।। ﴾ केदारखण्ड﴿

केदारेश्वर सहित नर- नारायण मूर्ति के दर्शन का फल समस्त पापों का नाशक एवं मुक्ति को प्रदान करने वाला है ।

1· स्कन्दपुराण अ0 ख0-45

2· केदारखण्ड श्लोक- 13-15

" तस्यैव रूपं दृष्ट्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
जीवन्मुक्तो भवेत् सोऽपि यो गतो बदरी वने ।।
दृष्ट्वा रूपं नरस्यैव तथा नारायणस्य च ।
केदारेश्वरनाम्नश्च मुक्तिभागी न संशयः।।

श्री शिव का भीमशङ्कर नामक शिवलिङ्ग महाराष्ट्र प्रान्त में पूना से करीब 43 मील दूर भीमा नदी के तट पर स्थित है । आस्तिक परम्परा के मत में जिस समय भगवान् शङ्कर ने त्रिपुरासुर का वध करके इसी स्थान पर विश्राम किया उस समय यहाँ अवध का भीमक " नामक एक सूर्यवंशी राजा तपस्या में रत था । भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उसे वरप्रदान किया तभी से यह ज्योतिलिङ्ग भीमशङ्कर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । एक अन्य कथा के अनुसार- कामरूपदेश में " कामरूपेश्वर " नामक राजा अनवरत श्री शिव के पार्थिव पूजन में तल्लीन रहता था । " भीम " नामक राक्षस राजा की पूजा में विघ्न उपस्थित करता था । भगवान् शिव ने क्रुद्ध होकर इसी स्थान पर उस राक्षसाधम का संहार किया था । तभी से इस ज्योतिलिङ्ग का नाम भीमशङ्कर पड़ गया[1] ।

" इत्येवं प्रार्थितश्शम्भुर्लोकानां हितकारकः ।
तत्रैव स्थितवान् प्रीत्या स्वतन्त्रो भक्तवत्सलः ।।"

---

1. शिवपुराण अ0-21 श्लोक सं0 54

इसी प्रकार श्री शिव का विश्वेश्वर ज्योतिलिङ्ग काशी में विराजमान है । इसी स्थान पर भगवान् विष्णु ने सृष्टि उत्पन्न करने की कामना से तपस्या करके भगवान् आशुतोष को प्रसन्न किया था । श्री विष्णु के शयन करने पर उनके नाभिकमल से ब्रह्मा जी पैदा हुये जिन्होंने सारे विश्व की रचना की । अगस्त्य मुनि ने भी विश्वेश्वर की बड़ी आराधना की थी और इन्हीं की अर्चना से श्रीवशिष्ठ जी तीनों लोकों में पूजित हुये तथा राजर्षि विश्वामित्र ब्रह्मर्षि कहलाये । काशी में अनेक तीर्थ है, जिनमें से प्रधान ये हैं ज्योतिलिङ्ग विश्वेश्वर, बिन्दुमाधव, ढुण्ढिराज, गणेश, दण्डपाणि, कालभैरव, अन्नपूर्णा तथा मणिकर्णिका ।

" विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं
दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशी गुहां गङ्गां
भवानी मणिकर्णिकाम् ।। "

मत्स्यपुराण का मत है-

" जपध्यानविहीनानां ज्ञानवर्जितचेतसाम् ।
ततो दुःखहतानाञ्च गतिर्वाराणसी नृणाम् ।।
तीर्थानां पञ्चकं सारं विश्वेशानन्दकानने ।
दशाश्वमेधं लोलार्क केशवो बिन्दुमाधवः ।।
पञ्चमी तु महाश्रेष्ठा प्रोच्यते मणिकर्णिका

एभिस्तु तीर्थवर्यैश्च वर्ण्यते अविमुक्तकम् ।।

(मत्स्यपुराण 4·12· -13)

इसके अतिरिक्त त्र्यम्बकेश्वर, वैद्यनाथ, नागेश्वर और सेतुबन्ध रामेश्वर और घुश्मेश्वर नामक शिवलिङ्ग भी अपनी विशिष्टता के लिये प्रसिद्ध है। इन शिवलिङ्गों के विषय में पौराणिक वाङ्मय में जो वर्णन मिलते है। द्रष्टव्य है-

श्री नागेश्वर-

एतद् यः शृणुयान्नित्यं

नागेशोद्भवमादरात् ।।

सर्वान् कामानियाद् धीमान् ।

महापातकनाशनान् ।।

(शिव०पु०श०को०सं०अ०4)

सेतुबन्ध रामेश्वर में दो शिव लिङ्ग है। रामेश्वर जो कि श्री राम द्वारा स्थापित है और हनुमदीश्वर जो कि श्री हनुमान जी द्वारा स्थापित है। स्वयं श्री राम ही स्वमुख से कहते है।

1· स्क०पु०ब्र०ख०सं०मा० अ० - 45

स्वयं हरेण दत्तं तु हनुमन्नामकं शिवम् ।
सम्पश्यन् रामनाथं च कृतकृत्यो भवेन्नरः ।।
योजनानां सहस्रेऽपि स्मृत्वा लिङ्ग हनुमतः ।
रामनाथेश्वरं चापि स्मृत्वा सायुज्यमाप्नुयात् ।।
तेनेष्टं सर्वयज्ञैश्च तपश्चाकारि कृत्स्नशः ।
येन दृष्टौ महादेवौ हनुमद्राघवेश्वरौ ।।" {स्कन्दपुराण}

पुराणों में घुश्मेश्वर भगवान् की भी विशेष महिमा है । शिव पुराण के मत में[1] घुश्मेश्वर महादेव के दर्शन से सब पाप दूर हो जाते हैं और सुख की वृद्धि उसी प्रकार होती है जिस प्रकार शुक्लपक्ष का चन्द्रमा वृद्धि को प्राप्त होता है ।

ईदृशं चैव लिङ्ग च
दृष्ट्वा पापैःप्रमुच्यते ।
सुखं संवर्धते पुंसां
शुक्लपक्षे यथा शशी ।।

श्री शङ्कराचार्य जी ने भी "घुश्मेश्वर" महादेव की निम्नलिखित शब्दों में स्तुति की है-

इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन्
समुल्लसन्तश्च जगद्वरेण्यम् ।

---

1. शिव०पु० ज्ञा०सं० 52 अ० 82

बन्दे महोदारतर स्वभावं

धुश्मेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये ।।

अत: स्पष्ट है कि शिव ही परब्रह्म है । यह जगत् ब्रह्मा रूपी पुष्प की सुगन्ध है, ब्रह्मरूपी लता का फल है । ब्रह्म की सत्ता ही जगत की सत्ता है और जगत् ही ब्रह्मा का रूप है । इसलिये जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ शिवशक्ति के कोश में वर्तमान है, सभी सत्य है और परमतत्त्व शिव ही उनकी आत्मा है । योगवाशिष्ठकार भी इसी मत का प्रतिपादन करते हैं ।

तस्माच्चिच्छक्तिकोशस्था: ।

सर्वा: सर्गपरम्परा: ।

सर्वा: सत्या: परं तत्त्वं

सर्वात्मा कथमन्यथा ।।

सप्तमोऽध्याय:

1· योगवशिष्ठ 4/5

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x
x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

अष्टमोऽध्याय:

" वेदोक्त रुद्र तत्त्व का परवर्ती संस्कृत साहित्य पर प्रभाव "

x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x
x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x-x

" वेदोक्त रुद्र तत्त्व का परवर्ती संस्कृत साहित्य पर प्रभाव "

वैदिक धर्म- दर्शन के अनुसार ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त स्वरूप है । " सत्य " का अर्थ है " अविनाशी " । देश काल और वस्तु के परिच्छेद के नाश होने पर भी जिसका नाश नहीं होता उसको अविनाशी कहते हैं । उत्पत्ति के विनाश से रहित जो अखण्ड चैतन्य है उसको ज्ञान कहते हैं । मिट्टी के विकार में मिट्टी के समान, स्वर्ण के विकार में स्वर्ण के समान तथा तन्तु के विकार में तन्तु के समान अव्यक्तादि सृष्टि के प्रपन्चों में पूर्णतया व्याप्त होकर भी जो चैतन्य है उसको अनन्त कहते है । परिणाम रहित सुख का नाम " आनन्द " है । जो इन चतुर्थ लक्षणों से युक्त है, जो देशकाल और निमित्त में अव्यभिचारी अर्थात् निश्चल रहते हैं- वही परमात्मा शिव है इन्हीं को महादेव भी कहते हैं ।

व्हिटनी तथा जॉन डाउसन प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों में " शिव " का कहीं नाम नहीं माना है, वरन्उनके अनुसार शिव के पर्याय-वाची शब्द " रुद्र " का जो शिव के सदृश ही प्रचलित है एक वचन और बहुवचन दोनों में प्रयोग मिलता है । अत: महादेव शिव और उनकी रुद्र नामक विभूतियों का विकास इसी शब्द से हुआ है । लेकिन वेदों[1] में शिव अथवा रुद्र के वास्तविक

---

1. ऋग्वेद 2·1·6

स्वरूप का जो वर्णन मिलता है उस पर सूक्ष्म दृष्टिकोण से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि रुद्र ही महादेव हैं और अग्नि ही रुद्र है[1]। अथर्ववेद[2] तैत्तिरीय संहिता[3] एवं शतपथ ब्राह्मण[4] में भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। इसी प्रकार ऋग्वेद[5] से भी यही सिद्ध होता है कि रुद्र का एक स्वरूप अग्नि भी है।

यजुर्वेद का समस्त रुद्राध्याय ही अग्निपरक है। महाभारत[6] वनपर्व में भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया गया है।

" रुद्रमग्निं द्विजा प्राहु रुद्रसुनुस्ततस्तु सः ।।

शतपथ ब्राह्मण[7] में रुद्र को सर्वाग्नि कहा गया है और प्रखर अग्नि को गिरिश, गिरिशन्त, गिरिष्ठ एवं गिरित्र कहा गया है। निरुक्त में यास्काचार्य

---

1. ऋग्वेद 2.1.6
2. अथर्ववेद 7.87.1
3. तै० सं० 5.1.3.4 तथा 5.7.3
4. शतपथ ब्रा० 6.1.3.10
5. ऋग्वेद 1.7.2-8 तथा 3.2.5 एवं 4.3.1
6. महाभारत - 227
7. शतपथ ब्रा० 9.1.1

कहते हैं- " अग्निरपि रुद्र उच्यते, अर्थात् अग्नि को भी रुद्र कहते हैं । ऋग्वेद के द्वितीय मण्डले का गृत्समाऋषि दृष्ट तैतीसवाँ सूक्त रुद्रपरक है क्योंकि उसके प्रथम मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि " हे मरूत्पिता हमें सूर्यदर्शन से वंचित न करो ।" इससे स्पष्ट होता है कि रुद्रदेव सर्वशक्तिमान् और अपने उपासकों का कल्याण करने वाले हैं ।

वेदों में वर्णित रुद्र देव के इस स्वरूप का परवर्ती संस्कृत साहित्य एवं धर्म- दर्शन पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । भारतीय संस्कृति में शिव भारतीय योगविद्या के परमगुरू परमयोगीश्वर या आदि प्रवर्तक है । शिव और योग एक ही तत्त्व की व्याप्ति है । योग समाधि का फल ही आत्मदर्शन है । संस्कृत साहित्य के महान् कवि कालिदास ने कुमारसंभव में शिव के इस तात्त्विक स्वरूप का वर्णन करते हुये लिखा है कि " जिस समय देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये शिव की समाधि को भंग करने के निमित्त कामदेव कैलाश पर पहुँचा उस समय भगवान् शिव नवइन्द्रियों के द्वारों से संचार करने वाली मानसी वृत्तियों को समाधि के द्वारा वशीभूत करके उस अक्षर आत्मतत्त्व को अपने क्षेत्र या शरीर में देख रहे थे, जिसको क्षेत्रज्ञ योगी जन स्वशरीर के भीतर खोजा करते हैं ।

" मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति-
हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम् ।
यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्त

मात्मानमात्मन्यवलोकयन्तम् ।।"[1]

§ कुमार सम्भव §

भगवान् शिव विराट् अस्तित्व के प्रतीक है । ब्रह्माण्ड के कण- कण में शिव का अप्रत्यक्ष नर्तन चल रहा है । सभी जीव उनके इस नर्तन से सम्मोहित है उसी पाश में बद्ध हे । इस बन्धन से मुक्ति के लिये शिव का ज्ञान परम आवश्यक है । श्रुति इस तथ्य का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करती है[2] ।

संस्कृत साहित्य एवं पौराणिक वाङ्मय में शिव के विराट् अस्तित्व का प्रतिपादन अनेक कथाओं के माध्यम से किया गया है । इन रुद्रदेव की प्राप्ति न तो रूप से होती है न भोग से अपितु इनकी प्राप्ति तप से ही सम्भव है । पार्वती को प्रथमतः अपने रूप का अभिमान था, सोचती थी कि अपने रूप लावण्य से ही मै शिव को अपने तरफ आकृष्ट कर लूंगी । परन्तु ऐसा नहीं हुआ क्यों कि शिव की प्राप्ति तप से होती है भोग से नहीं। सम्भवतः माता पार्वती ने रूप को अमोघ करने के लिये तप के द्वारा आत्मसमाधि लगाना निश्चित किया क्यों कि समाधि की पूर्णता ही शिव तत्त्व की प्राप्ति है[3] ।

1• कुमारसम्भव 3/50

2• श्वेताश्वतरो० 4/14

3• कुमारसम्भवम् 3/58

" इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां
तपोभिरास्थाय समाधिमात्मन: ।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृश: ।। "

भगवान् शिव को वृषभध्वज, वृषा-चन और वृषकेतु भी कहते हैं । इनकी सबसे बड़ी विजय वृष को अपने वश में करके उस पर सवारी करना है । यह वृष ही काम है । यह वृष या काम ही मानव को अधोरेत करके अपने आसन से च्युत कर देता है । भगवान् शिव ने मदन- दहन करके काम को परास्त कर लिया है, इसी लिये वे अस्पहार्य योगीश्वर है, अत: वृष उनका वाहन बन गया है । वस्तुत: योगी और भोगी में भेद भी तो यही है, क्यों कि एक का वाहन काम है और एक स्वयं काम का वाहन है । इस वाहन पर चढ़ने के लिये भगवान् शिव को कुम्भोदर सिंह पर पैररखना पड़ता है । महाकवि कालिदास ने इस तथ्य का अत्यन्त सुन्दर वर्णन रघुवंश में किया है[1] ।

" कैलासगौरं वृषमारुरुक्षो:
पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् ।
अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्ते:
कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम् ।। "

{रघुवंशम्}

1· रघुवंशम् 2/35

गीता[1] में भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है और यह कहा गया है कि काम अत्यन्त भोगी और महापाप के गर्त में फँसाने वाला है। इस पापी पर विजय पाने के लिये कुम्भोदर पर संयम प्राप्त करना परमावश्यक है। अतएव स्पष्ट है कि वृष पर आरूढ़क्षित योगी के लिये कुम्भोदर पर पैर रखना आवश्यक है।

"काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव:।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।"

(गीता)

रुद्रदेव अखिल भुवनपति तथा समता और शान्ति के प्रतीक हैं। वही निखिल भुवन में अव्यक्त रूप से व्याप्त है। जिसप्रकार अग्नि से उसका दाहकत्व दूर नहीं हो सकता उसी प्रकार इस महेश्वर से कोई भी वस्तु दूर नहीं है। वह सब में व्याप्त है। श्री शिवगीता[2] में स्वयं श्री राम स्वमुख से कहते हैं। - हे शम्भो। वृक्ष लता गुल्मादि उद्भिज पदार्थ जिस प्रकार पृथिवी से उत्पन्न होकर उसी में स्थित रहते हुये अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं उसी प्रकार यह निखिल विश्व भी शिव से ही उत्पन्न होता है। उसी में स्थित रहता है और अन्त में उसी में लीन हो जाता है। वेदसार शिवस्तव में श्रीशङ्कराचार्य जी भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं[3]।

1· गीता 7/12

2· शिवगीता- 7/23 तथा ऋग्वेद 1·27·10, 3·2·5 तथा 4·3·1

3· वेदसार शिवस्तव - श्लोक ‌‌- 11

भारतीय धर्म-दर्शन के अनुसार- प्रणव रूप भगवान् रुद्र ही विश्व की उत्पत्ति के समय "ब्रह्मा" पोषण के समय विष्णु नाम धारण करते हैं और तदनुरूप आकारभी ग्रहण कर लेते हैं तथापि उनके वास्तविक स्वरूप में कोई भेद नहीं उत्पन्न होता है। महाभारत में इसकी पुष्टि करते हुये कहा गया है कि "ये रुद्र ही ब्रह्मा विष्णु इत्यादि देवताओं का शरीर धारणा करते हैं।[1]

"ब्रह्मा विष्णु सुरेन्द्राणां

रुद्रादित्याश्विनामपि ।

विश्वेषामपि देवानां

वपुर्धारयते भवः ।।" {महाभारत}

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही भगवान् शिव का शरीर है। इस शरीर में अग्नि मस्तक, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र, दिशाएं श्रोत्र, वेद वाणी है। विश्व-व्यापी वायु प्राणरूप से हृदय में विराजमान है और पृथिवी उनके पादरूप में है तथा वही सम्पूर्ण भूतों की अन्तरात्मा है[2]।

भगवान् शिव समता और शान्ति के मूर्तिमान् स्वरूप हैं। उनके परि-वार में सिंह औरवृष विगत वैर होकर निवास करते हैं। शिवपुराण[3] तथा

---

1. महाभारत अनु० पर्व अ०- 14
2. मुण्डकोपनिषद् 2·1·4
3. शिव पु० वे० सं० अ० 3/14

कुमारसम्भव में कुमार अथवा स्कन्द के जन्म- प्रसंग में भगवान् शिव के उस अद्भुत स्वरूप का दिग्दर्शन होता है जिसके फलस्वरूप आसुरी शक्तियों का पराभव हुआ और देवगण को विजय की प्राप्ति हुई। इस तथ्य का अत्यन्त मनोहारी वर्णन मेघदूत में महाकवि कालिदास ने किया है।[1]

" तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघी कृतात्मा ।
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना
मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धितेजः ।। "

(मेघदूत)

अर्थात् हे मेघ। देवगिरि पर सदा निवासकरने वाले स्कन्द को आकाश गंगा के जल से सींचे हुये पुष्पों से तुम स्नान करना। इन्द्र की रक्षा के निमित्त, अग्नि के मुख में शिव के द्वारा क्रमशः सम्भृत हुआ जो तेज है वही स्कन्द है। पराजित देवसेना की रक्षा के निमित्त और उसको सेना पति देने के लिये शिव ने ही स्कन्दरूप में जन्म लिया था। शिव का वह तेज अग्नि के मुख में एकत्र किया गया था।

---

1. मेघदूत 1/43

वेदोक्त रुद्र किंवा शिव के क्रोध एवं कारुणिकता का भी परवर्ती भारतीय साहित्य में स्थान- स्थान पर वर्णन मिलता है । इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त रोचक आख्यान मत्स्य पुराण में मिलता है जो अन्धकासुर आख्यान के नाम से जाना जाता है । दिति का एक महाबलशाली पुत्र अन्धक था । नेत्र-वान् होते हुये भी वह मदान्ध होने के कारण अन्धों की तरह चलता था । इसी से उसका नाम अन्धक पड़ गया । उसके आडि और बक नामक दो पुत्र थे । तपस्या के बल से अन्धक देवताओं के लिये अजेय हो गया था । एक बार जब अवन्ती के कालवन में महादेव पार्वती के साथ क्रीडा कर रहे थे, तब अन्धकासुर उन्मत्त होकरवहां पहुँचा और माता पार्वती के हरण का प्रयास करने लगा । उसके इस कृत्य से कुपित हुये रुद्र तथा अन्धक में भीषण युद्ध हुआ और शिव के पाशुपतास्त्र से घायल होने पर उस दैत्य के रक्त से अनेक अन्धक पैदा हो गये । रुद्र ने उन अन्धकों को बाणों से आहत कर दिया, किन्तु उन अन्धकों के रक्त से सहस्रों अन्धक पैदा हो गये । उत्पन्न होते ही उन अन्धकों ने सम्पूर्ण जगत को व्याप्त कर लिया । तब उन मायावी अन्धकों के नाश के लिये रुद्र ने 197 मातृकाएं उत्पन्न की, जिनमें माहेश्वरी, कौमारी, सौपर्णी, वायव्या आदि प्रमुख थी । मातृकाओं ने उन अन्धकों का रुधिर पान करना प्रारम्भ किया । किन्तु वे पुनः बढ़ने लगे । तब खिन्न होकर शिव विष्णु की शरण में गये । तब उन्होंने शुष्क रेवती " नामक एक मातृका को उत्पन्न किया " शुष्क रेवती " ने क्षण भर में ही उन अन्धकों का रक्तपान कर लिया और वे विनाश को प्राप्त हो गये । अन्धकों के इस प्रकार नष्ट होने पर अन्धक

निराश हो गया । तब भगवान् शङ्करने शूलास्त्र से उस पर प्रहार किया, किन्तु अन्धक ने शिव को प्रसन्न कर लिया और शिवगणों का स्वामित्व भीप्राप्त कर लिया ।[1]

भगवान् शिव परम तेजस्वी है उनके तीनों नेत्र क्रमश: सोम, अग्नि और सूर्य के स्वरूप माने गये हैं ।प्रसिद्ध शिवभक्त और संस्कृत साहित्य के विद्वान् " जगद्धर भट्ट" ने " स्तुतिकुसुमाञ्जलि " में भगवान् शिव के इस तेजोमय स्वरूप का वर्णन अत्यन्त मार्मिक शब्दों में किया है ।[2]

" दुग्धाब्धिदोऽपि पयस: पृषतं वृणोषि,
दीर्घत्रिधामनयनोऽप्युररी करोषि ।
वाचां प्रसूतिरपि मुग्धवच: श्रणोषि
किं किं करोषि न विनीतजनानुरोधात् ।। "

परवर्ती संस्कृत साहित्य में विभिन्न भावों में शिव के गुणों से सम्बद्ध वर्णन मिलते हैं । एक भक्त की उनके प्रति उक्ति द्रष्टव्य है । वह कहता है कि आप तो परम दयालु कहे जाते हैं फिर भी अभी तक मेरे ऊपर अपने कृपा क्यों नहीं की । आपने माता पार्वती से यह प्रतिज्ञा की है कि मैं एक मात्र तुम्हीं से प्यार करूँगा और किसी को नहीं । कहीं आप अपनी इस प्रतिज्ञाका स्मरण करके मेरी वाणी के विषय में उदासीन तो नहीं हो रहे हैं । यदि

1· मत्स्य पु० 55/16, 155/11-12, 178/2-37 तथा 251/5/19
2· स्तुतिकुसुमाञ्जलि 11/14

यह बात हो तो बताइये, आकाश गंगा और चन्द्रकला से इतना प्रेम क्यों ? उनको आपने शिर पर क्यों स्थान दिया है ? और अपनी अत्यन्त प्यारी दया को हृदय में क्यों स्थान दिया है ? इन तीनों के सम्बन्ध में अपने अपनी प्रतिज्ञा क्यों तोड़ी है ? फिर मैंने ही ऐसा कौन सा गुरुतर अपराध किया है जो मेरी स्तुतिमय वाणी का आप इतना अनादर कर रहे हैं ?[1]

" एका त्वमेव भक्तासि मम प्रियेति ।
दत्तं वरं स्मरसि चेद् गिरिराजपुत्र्या: ।
प्रेम्णा बिभर्षि कथमम्बरसिन्धुमिन्दु-
लेखां च मूर्ध्नि हृदये दयितां दयां च ।। "

संस्कृत साहित्य में शिव के प्रति भक्त की भावना मात्र इतने से ही शान्ति नहीं होती वह अपने आत्मनिवेदन को भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँचा कर भी शान्त नहीं होता वह कहता है कि " मैं पापकर्मा हूँ क्या यह समझकर ही आप मेरा परित्याग कर रहे हैं? नहीं, नहीं । ऐसा करना तो आपके लिये उचित नहीं है । क्योंकि भयरहित, प्राज्ञ और सुकृतकारी की रक्षा से क्या प्रयोजन रक्षा तो पापियों भयार्तों और खलों की ही की जाती है । रक्षा तो अरक्षितों की की जाती है । मुझ पापी, महाअधम और महाअसाधु की रक्षा आप न करेंगे तो फिर करेंगे किसकी ? मैं ही तो आपकी दया आपके द्वारा की गयी रक्षा का सबसे बड़ा अधिकारी हूँ ।[2]

1· स्तुति कुसुमाञ्जलि ।।/17

2· तदैव ।।/31

पाप: खलोऽहमिति नार्हसिमां विहातुं
किं त्वया कृतमतेरकुतोभयस्य ।
यस्मादसाधुरधमोऽहमपुण्यकर्मा
तस्मात्तवास्मि कृपामनुकम्पनीय: ।। *

सर्वज्ञ, शिव, शङ्कर, मृत्युन्जय, मृड आदि आपके नाम अत्यन्त सुन्दर हैं । वे सभी शुभ सूचक हैं । किसी का अर्थ है कल्याणकर्ता, किसी का सुख दाता, किसी का विश्वनाथ, किसी का सर्वज्ञ और किसी का मृत्यु विजयी । परन्तु ये सभी नाम किसके लिये हैं ? औरों के लिये , मेरे लिये नहीं ? जो सौभाग्यशाली हैं उन्हीं को आप अपने इन नामों के अनुसार फल देते हैं- किसी को सुखदेते हैं, किसी का कल्याण करते हैं, किसी की मृत्यु टाल देते हैं । रहा मैं, सो मुझ अभागे के विषय में आपका एक और नाम सार्थक है, वह है- स्थाणु । यह सब मेरे ही दुर्भाग्य का विजृम्भण है[1] ।

सर्वज्ञशम्भुशिवशङ्करविश्वनाथ-
मृत्युञ्जयेश्वरमृडप्रभृतीनि देव ।
नामानि तेऽन्यविषये फलवन्ति किन्तु
त्वं स्थाणुरेव भगवन् । मयि मन्दभाग्ये ।। *

1॰ स्तुतिकुसुमाञ्जलि - 11॰ 83

महाराज! बहुत हो चुका अब आप प्रसन्न हो जाइये । मुझे इससे अधिक प्रार्थना करना नहीं आता । यदि मैं मीठी मीठी बातें बना सकता, यदि मैं आप की मनोहारिणी स्तुति करने की योग्यता रखता, यदि मुझे चाटुकारिता करना आता तो सम्भव है, आप प्रसन्न होकर मुझ पर कृपा करते पर मैं कहूँ तो क्या करूँ । मुझमें वैसी शक्ति ही नहीं है । मैं तो ठहरा मन्दबुद्धि, अज्ञ, महामूर्ख । अतएव आप मुझसे वैसी हृदय हारिणी उक्तियों की आशा न रखिये । आप तो केवल मेरी दीनता को देखिये-मैं आर्त्त हूँ । निःशरण हूँ, दुःखी हूँ, आपकी दया का भिखारी हूँ । मेरा यह विलापात्मक रुदन सुनकर आप प्रसन्न हो जाइये और मुझ पापी को अपनी शरण दीजिये।[1]

" अस्तावदहं न मन्दधिषणः कर्तुं मनोहारिणी-
श्चाटूक्तीः प्रभवामि यामि भवतो याभिः कृपापात्रताम् ।
आर्त्तेनाशरणेन किन्तु कृपणेनाक्रन्दितं कर्णयोः
कृत्वा सत्वरमेहि देहि चरणं मूर्धन्य धन्यस्य मे ।। "

{ स्तुतिकुसुमाञ्जलि }

परवर्ती भारतीय साहित्य में शिव परम योगीश्वर है । उनका वाहन वृष है । उन्होंने काम को भस्म कर लिया है । पार्वती उनकी शक्ति है, जिससे सम्भूत होकर उनका तेज स्कन्द या स्वामि कार्तिकेय के रूप में

1. स्तुति कुसुमाञ्जलि 9/82

प्रकट हुआ है। शिव के मस्तक पर चन्द्रमा और गंगा है। उनके कण्ठ में विष का निवास है। शरीर पर भस्म है। अङ्ग में कुण्डली सर्पों का वेष्टन है। उन्होंने त्रिपुरासुर को जीत लिया है। अतः "उमा देवी सहित परमेश्वर, सबके प्रभु, तीन नेत्र वाली अत्यन्त शान्त स्वरूप नीलकण्ठ महादेव का ध्यान करके अधिकारी पुरुष अद्वितीय ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं। वे महादेव सम्पूर्ण भूतों की योनि हैं, समस्त जगत् के साक्षी है और "तम्" से अत्यन्त परे हैं।[1] महाभारत में[2] कहा गया है कि रुद्र और नारायण दोनों एक ही शुद्ध सत्व के दो रूप हैं।

"रुद्रो नारायणश्चैवेत्येकं सत्वं द्विधा कृतम्।
लोके चरति कौन्तेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु।।"

श्रुति के मतानुसार "सृष्टि के आदि में जब केवल अन्धकार ही अन्धकार था, न दिन था न रात्रि थी, न सत् था न असत् था केवल एक निर्विकार शिव ही विद्यमान थे। वही अक्षर है, वही सबके जनक परमेश्वर का प्रार्थनीय स्वरूप है, उन्हीं से शास्त्रविद्या प्रवृत्त हुई है।[3]

---

1. श्वेता 5/26
2. महाभारत शान्ति० अ० 347/27
3. श्वेता 4/18

उपनिषदों और पौराणिक वाङ्मय में वर्णित रुद्रदेव की महिमा और त्रिदेवों में अभिन्नता का परवर्ती भारतीय साहित्य पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। पुराणों में महेशपद वाच्य शिव जी को ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र का जनक और शासक कहा गया है।[1]

त्रयस्ते कारणात्मानो जाताः साक्षात् महेश्वरात् ।
चराचरस्य विश्वस्य सर्गस्थित्यन्तहेतवः ।
पित्रा नियमिताः पूर्वं त्रयोऽपि त्रिषु कर्मसु ।
ब्रह्मा सर्गे हरिस्त्राणे रुद्रः संहरणे पुनः ।।

महाभारत भीष्मपर्व में इसी तथ्य का प्रकारान्तर से समर्थन किया प्रतीत होता है।

यत्र भूपतिः सृष्ट्वा सर्वलोकान् सनातनः ।
उपास्यते तिग्मतेजा वृतो भूतैः सहस्रशः ।। *

इत्यादि मैनाक के वर्णन प्रकरण में भूतपति शिवजी को सम्पूर्ण लोकों का रचयिता, सम्पूर्ण प्राणियों का उपास्य देव तथा पुराण पुरुष कहा गया है।

महाभारत के शान्ति पर्व में ईश्वर शिव को सर्वकारण एवं सर्वदेवमय कहा गया है और यह बतलाया गया है कि सृष्टि के पूर्व केवल उन्हीं की स्थिति थी।

---

1. शिवपु० कैलाश खण्ड 41-45

" ईश्वरश्चेतनः कर्ता पुरुषः कारणं शिवः
विष्णुर्ब्रह्मा शशी सूर्यः शक्रो देवश्च सान्वयाः ।
सृज्यते ग्रस्यते चैव तमोभूतमिदं जगत् ।
अप्रज्ञातं जगत्सर्वं तदा ह्येको महेश्वरः ।। "

महाभारत के अनुशासन पर्व में शिव की महिमा से सम्बद्ध एक अत्यन्त रोचक कथा का निर्देश मिलता है । जाम्बवती के अत्यन्त अनुनय- विनय करने पर भगवान् कृष्ण उसकी पुत्र प्राप्ति के लिये शिव की आराधना के निमित्त कैलाश पर्वत पर गये । ऋषि प्रवर उपमन्यु के मुखारविन्द से उनकी अतुल महिमा को सुनकर भगवान् कृष्ण अत्यन्त हर्षित हुये और ऋषि के उपदेशानुसार विधि-पूर्वक भगवान् शिव की आराधना में तत्पर हो गये । एक मास तक फल खाकर, दूसरे मास में पानी पीकर और तीन मास केवल वायु का भक्षण करके, ऊपर को हस्त उठाये एक पैर से खड़े रहे । उनकी इस उग्र तपस्या से भगवान् शिव प्रसन्न हुये । जगदम्बा पार्वती सहित उनको दर्शन देकर मनोवाञ्छित आठ वरदान दिये[1] । उस समय उनके चतुर्दिक सभी देवगण वेदमन्त्रों से उनकी स्तुति कर रहे थे । श्रीकृष्ण भगवान् ने-

---

1. महाभारत अनु० 45/396-98, 407

त्वं वे ब्रह्मा रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भव: ।
धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभु: सर्वतोमुख: ।।
त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
सर्वत: पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुख: ।
सर्वत: श्रुतिमांल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ।।

इत्यादि वाक्यों से उनकी स्तुति की और उनके साक्षात्कार से अपने को कृतकृत्य माना द्रोण पर्व में अभिमन्यु के शोक से कातर अर्जुन की प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने तथा पाशुपतास्त्र की प्राप्ति के लिये अर्जुन को लेकर भगवान् कृष्ण कैलाश पर देवाधिदेव महादेव के समीप गये और अनेक प्रकार की स्तुति से उन्हें प्रसन्न कर कृतकृत्य हुये ।

* नमो विश्वस्यपतये महतां पतये नम: ।
नम: सहस्त्रशिरसे सहस्त्रभुजमृत्यवे ।।
सहस्त्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिद्ध्यतां नौवर: प्रभो ।।
{ महाभारत द्रोण पर्व }

1• महाभारत द्रोण पर्व 80/63-64

वेदों में वर्णित रुद्रदेव का परवर्ती पौराणिक एवं संस्कृत साहित्य में जो वर्णन मिलता है। वह अपने अन्दर एक विलक्षण सारस्वत दार्शनिक तत्त्व को आत्मसात किये हुये है। जहाँ वेदोक्त शिव एवं रुद्र भयङ्करता के प्रतीक हैं, वेदों के शिरोमणि है, नीलग्रीव है, योनियों के आचार्य हैं वहीं पौराणिक वाङ्[1]मय में रुद्रदेव परमकारुणिक एवं कल्याणमय स्वरूप वाले हैं। श्रीमद्भागवत् महापुराण के अनुसार जब वृत्रासुर ने शिव की प्रीति के लिये अपने शरीर के अवयवों को काट-काटकर अग्नि को समर्पित करने लगा तब प्रसन्न शिव ने उससे यही कहा कि तुमने व्यर्थ में ही अपने शरीर को कष्ट क्यों दिया मैं तो मात्र जल चढ़ाने से ही प्रसन्न हो जाता हूँ।

पौराणिक वाङ्मय में वर्णित आख्यानों के अनुसार " जब देव और असुरों के संयुक्त मन्थन से क्षीर सागर से सर्वप्रथम हलाहल विष निकला तब उस समय भयभीत होकर देवगणों ने रुद्रगणों की ही शरण ग्रहण किया। आर्त स्वर में उन्होंने कारुणिक शिव की ही आराधना की[2]। देवों के अर्चन से द्रवीभूत होकर श्री शिव ने उस विष को हथेली पर रखकर पान कर लिया। विषपान करते समय भी उन्होंने करुणा और दया का परित्याग नहीं किया। जहाँ उन्होंने विषपान द्वारा देवगणों की रक्षा किया वहीं हृदयस्थित ईश्वर को कहीं वह विष स्पर्श न कर जाय, एतदर्थ उन्होंने विष को कण्ठ में ही रोककर मानो ईश्वर पर भी दया किया। वह महोल्बण हलाहल विष शिव जी के कण्ठ में नीलवर्ण धारण कर उनका कण्ठहार बन गया।

---

1. श्रीमद्भागवत् 10.88.20
2. श्रीमद्भागवत 8.7.21-22

" तप्यन्ते लोकतापेन साधव: प्रायशो जना: ।

परमाराधनं तद्धि पुरूषस्याखिलात्मन: ।। "

शिवपुराण के अनुसार[1] जिसके कण्ठ में शिवनाम रूप मणि सदा सर्वदा विराजमान रहती है वह साक्षात् शिवलोक को जाता है । शिव शब्द का उच्चारण किये बिना ब्राह्मण भी मुक्त नहीं हो सकता और इसका उच्चारण कर एक चाण्डाल भी मुक्ति का भागीदार बन जाता है । यों तो शिव के सभी नाम मोक्ष दायक हैं, किन्तु उन सब में शिव नाम सर्वश्रेष्ठ है, उसका माहात्म्य गायत्री के समान है[2] ।

सौर पुराण के अनुसार[3] जो प्राणी बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर तीन रात्रि तक उपोषित रहकर पवित्रता पूर्वक शिव नाम का उच्चारण करता है तथा उसका एक लक्ष जप करता है, वह भ्रूण हत्या के पाप से छूट जाता है।

कूर्म पुराण के अनुसार[4] "कलियुग में शिव नामोच्चारण सभी नामों से बढ़कर है ।

---

1. शिवपु0 7·22
2. शिव पु0 7·23
3. सौर 0 पु0अ0 654
4. कूर्म पु0 अ0 18

ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः ।

द्वापरे देवो विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः ।।"

शिव पुराण के मत में जिस प्रकार वृक्ष के मूल सेवन से उसकी शाखा आदि की पुष्टि होती है, उसी प्रकार शिव की आराधना से संसार रूपी शरीर की पुष्टि होती है । धर्मशास्त्र भी इसी मत को पुष्टि करते प्रतीत होते हैं-

" शिवः सर्वोत्तमो यत्र सिद्धान्तो वीरशैलक: "

{ पारमेश्वररागम- 4-6 }

भारतीय आर्य परम्परा के अनुसार एक ही परमतत्व है जो सर्वत्र अनुस्यूत है तथा सम्पूर्ण कारणों का कारण है । सबका अधिपति सब का रचयिता, पालयिता एवं संहर्त्ता है । जिसके भय से सूर्य प्रतिदिन यथासमय उदित होता है और यथासमय अस्त । वायु अविरत बहता रहता है, चन्द्र प्रतिपक्ष घटता बढ़ता है, ऋतुयें यथावसर आविर्भूत होती है, अपने वैभव से प्रकृति की छवि को नयनाभिराम बनाती है । कभी अवनितल तरू, निकुन्ज और लताएं पल्लवों और पुष्पों से आच्छन्नहोकर मनोज्ञता की मुर्ति बन जाती है, तो कभी उनमें एक पीला पत्ता भी नहीं दिखायी देता । कभी नानापक्षियों के कलरवसे कोने कोने में चहल- पहल मच जाती है, तो कभी कहीं एक शब्द भी नहीं सुनायी देता । कभी काले- काले बादलों की घटाएं विद्युल्लताओं का परिनर्तन, मेघ का तर्जन गर्जन अपना दृश्य उपस्थित करते हैं, तो कभी प्रचण्ड

लू की लपटें, हेमन्त का शीतजन्य हाहाकार और शिशिर का सीत्कार आदि अपना अभिनय दिखाते हैं । यह सब उसी सुचतुर शिल्पी की कुशलता ही तो है, उसी मायावी की माया का विकास ही तो है । वसन्त के पश्चात् सदा ग्रीष्म का ही आविर्भाव होता है । उसके पश्चात् वर्षा इसी क्रम से अन्यान्य ऋतुयें आती है, और जाती है । इनमें तनिक भी परिवर्तन या विपर्यय नहीं होता । ये सभी बातें बिना संचालक के सम्भव नहीं है ।

जो दिग्वसन होते हुये भी भक्तों को अतुल ऐश्वर्य देने वाले हैं, श्मशानवासी होते हुये भी त्रैलोक्याधिपति हैं, योगाधिराज होते हुये भी अर्द्धनारीश्वर है । सदा कान्ता से आलिङ्गित रहते हुये भी मदनजित् हैं, अज होते हुये भी अनेक रूपों से आविर्भूत हैं, गुण हीन होते हुये भी गुणाढ्य है, अव्यक्त होते हुये भी व्यक्त हैं, सबके कारण होते हुये भी अकारण है, अनन्त रत्नराशियों का अधिपति होते हुये भी भस्म विभूषण है । वही इस निखिल विश्व का संचालक है, वही परात्पर शिव है ।

विपत्ति के समय अमरणधर्मा देवगण उन्हीं महाकारुणिक प्रभु की शरण ग्रहण किया करते हैं । ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी घोर तपस्या द्वारा उनके कृपा भाजन हुये । शिव ने ही संसार के प्राणियों को कष्ट देने वाले शुक्र, दुन्दुभि, महिष, त्रिपुर, रावण, निवातकवच आदि राक्षसों को अतुल ऐश्वर्य देकर उनका संहार किया है । उन्होंने ही भयभीत देवताओं की प्रार्थना पर हलाहल विष को अमृत के समान पान कर लिया । चन्द्र,

सूर्य और अग्नि उनके नेत्र हैं, स्वर्ग शिर है, आकाश नाभि है, दिशाये कान है, जिनके मुख से ब्राह्मण और ब्रह्मा पैदा हुये, इन्द्र, विष्णु और क्षत्रिय जिनके हाथों से उत्पन्न हुये जिनके उरुदेश से वैश्य एवं पैर से शूद्र पैदा हुये । अनेक देव, सिद्ध , गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, राक्षसादि जिनकी कृपा से अनन्त ऐश्वर्य के अधिपति हुये, जो ज्ञान, तप ऐश्वर्य लीला के द्वारा जगत् के कल्याण में रत हैं, जिनके समान न कोई दाता है, न तपस्वी, न ज्ञानी, न त्यागी, न वक्ता है, न उपदेष्टा है, न ऐश्वर्यशाली है । जो सदा सम्पूर्ण वस्तुओं से परिपूर्ण है, जो श्रुतियों में महादेव देवाधिदेव महेश्वर, मेशान, आशुतोष आदि अनेक नामों से पुकारे गये हैं वही परात्पर परमकारण शिव हैं ।

तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार[1] " जिससे हिरण्यगर्भ से लेकर कीट-पर्यन्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न होकर प्राण धारण करते है, अन्त में जिसमें विलीन हो जाते हैं, उसी परात्पर ब्रह्म (शिव) को जानने की इच्छा करो ।

" यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि
जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्म ।। "

श्रुतिपरम्परा के अनुसार "द्यौ और पृथिवी की सृष्टि स्थिति और लय करने वाला स्वयं प्रकाश एक है[2] ।

1. तै० आ० 8/2
2. श्वेता 3/3

" द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ।"

अथर्वशिरोपनिषद् में कहा है कि एक बार देवगण कैलाश पर गये और रुद्र से पूछा कि आप कौन हैं? रुद्र भगवान् बोले मैं एक हूँ। मैं सृष्टि के पूर्व में भी था, इस समय हूँ और भविष्य में भी रहूँगा। मैं तीनों कालों से अपरिछिन्न हूँ मुझ सर्वेश्वर से अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है[1]।

" देवा ह वै स्वर्ग लोकमगमंस्ते देवा रुद्रमपृच्छन् को भवानीति । सो5ब्रवीदहमेकः प्रथममासं वर्तामि भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति ।।"

परवर्ती भारतीय वाङ्मय में शिवतत्त्व का जो रूप मिलता है उसके अनुसार-" एक निर्विकार, नित्य विज्ञानानन्द परब्रह्म परमात्मा ही शिव है। उन्हीं के किसी अंश में प्रकृति है। उस शक्ति को ही लोग माया, शक्ति आदि नामों से पुकारते हैं वह माया बड़ी विचित्र है। उसे ही कोई अनादि अनन्त कहता है तो कोई अनादि शान्त मानता है। कोई उस ब्रह्म की शक्ति को ब्रह्म से अभिन्न मानता है तो कोई उसे भिन्न कहता है, उसे ही कोई सत् कहता है तो कोई उसे असत् प्रतिपादित करता है। वस्तुतः माया के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे भी विलक्षण है। क्योंकि न तो उसे असत् कहा जा सकता है न तो सत् ही। असत् उसे इसलिये भी नहीं कह सकते हैं कि उसी का विकृत रूप यह निखिल विश्व है जो हमें

1• अथर्व उ0- 2

प्रत्यक्ष प्रतीत होता है । उस परात्पर ब्रह्म की शक्तिरूपिणी माया को सत भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि जड दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील होने से उसकी नित्य समस्थिति नहीं देखी जाती एवं ज्ञान होने के उत्तरकाल में उसका या उसके सम्बन्ध का अत्यन्त अभाव भी बताया गया है और ज्ञानी का भाव ही वास्तविक भाव है । इसलिये उसको अनिर्वचनीय समझना चाहिये ।

विज्ञानानन्दघन परमात्मा के वेदों में दो स्वरूप माने गये हैं । प्रकृति रहित ब्रह्म को निर्गुण ब्रह्म कहागया है और जिस अंश में प्रकृति या त्रिगुणमयी माया है उस प्रकृति सहित ~~के अंश~~ ब्रह्म के अंश को सगुण कहते हैं । सगुण ब्रह्म के भी दो भेद हैं - एक निराकार और दूसरा साकार । उस निराकार सगुण ब्रह्म को ही महेश्वर परमेश्वर आदि नामों से पुकारा जाता है । वही सर्व-व्यापी, निराकार सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर स्वयं ही ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों रूपों में प्रकट होकर सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करते रहते हैं । इस प्रकार पन्च रूपों में विभक्त से हुये परात्पर परब्रह्म परमात्मा को ही शिवोपासक सदाशिव, विष्णु के उपासक महाविष्णु एवं शक्ति के उपासक महाशक्ति के नामों से पुकारते हैं । शिवोपासक नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुण ब्रह्म को सदाशिव, सर्वव्यापी, निराकार, सगुण ब्रह्म को महेश्वर सृष्टिको उत्पन्न करने वाले को ब्रह्मा, पालन कर्त्ता को विष्णु और संहारकर्त्ता को रुद्र कहते हैं और इन पाँचों को ही शिव का रूप बतलाते हैं । स्वयं श्री शिव ही स्वमुख से विष्णु के प्रति कहते हैं।[1]

1. शिवपु0 ज्ञान 4/41-44, 48-51

मूलभूतं सदाप्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ।।

{ शिवपुराण }

वस्तुत: महेश्वर के ही इन वचनों से उनका " सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" नित्यविज्ञानन्दघन निर्गुणरूप, सर्वव्यापी, सगुण निराकाररूप और ब्रह्मा-विष्णु रुद्र रूप ये पाँचों सिद्ध हो जाते हैं । यही सदाशिव पन्चवक्त्र है ।

इसी प्रकार विष्णु के उपासक निर्गुण परात्पर ब्र परब्रह्म को महाविष्णु, सर्वव्यापी, निराकार, सगुण ब्रह्म को वासुदेव तथा सृष्टि, पालन और संहार करने वाले रूपों को क्रमश: ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं । महर्षि पराशर भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुये स्वयं कहते हैं-

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।

सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ।।

नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च ।

वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ।।

एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नम: ।

अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्ति हेतवे ।।

सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मय: ।।

मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ।। { वि०पु० }

1. वि०पु० 1.2.1-5

केवल्योपनिषद्कार भी-

" स ब्रह्मा स शिव: सेन्द्र: सोऽक्षर: परम: स्वराट् ।

स एव विष्णु: स प्राण: स कालोऽग्नि: स चन्द्रमा ।। "

इस प्रकार कहकर शिव विष्णु आदि का अभेद ही सिद्ध किया है । माण्डूक्योपनिषद् में निर्गुण तुरीय ब्रह्म का प्रतिपादक शिव पद दो बार आया है-एक बार- " नान्त: प्रज्ञ: " इस मन्त्र में और फिर " आमत्रश्चतुर्थ: " इस मन्त्र में । इससे यह सिद्ध होता है कि शिव पद प्राय: अद्वितीय निर्गुण ब्रह्म का ही बोधक है । प्राय: उपनिषदे भी इसी मत की पुष्टि करती है । उदाहरणार्थ-

---

1· केo उo 4·7·2

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यशोक एकत्वमनुपश्यत: ।। ईश 2·8

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विदमो न विजानीमो अविदितादधि ।। " केनोपनिषद् 3·6

3· मनसैवेदमाप्तव्यं य इह नानेव पश्यति ।। कठोपनिषद्

4· यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षु: श्रोत्रम् ।। मुण्डकोपनिषद्

5· यतो वाचो निवर्तन्ते न बिभेति कुतश्चनेति ।। "

(तैत्तिरीय आo)

6· मनसैवानुद्रष्टव्यं नानेव पश्यति ।। वृo आo

7· स एष नेति नेतीत्यात्मा ।।

वैदिक धर्म दर्शन में वर्णित शिव के इस विलक्षण स्वरूप का परवर्ती भारतीय धर्म दर्शन एवं संस्कृति पर स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

श्रीमद्भागवत् महापुराण में भी इसी अद्वैत शिव तत्व का प्रतिपादन किया गया[1] है ।

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।।
तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ।
अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो
र्ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ।।

भारतीय ऋषि परम्परा के अनुसार-" परम- पुरुषार्थ की कामना रखने वाले जनों को परमशिव की उपासना निश्चित रूप से अवश्य ही करनी चाहिये[2] ।

---

1. श्रीमद्भागवत- 11/2/37-38
बहूनां जन्मनामन्ते - - - - - - ।
- - - -महात्मा सुदुर्लभः ।। [गीता]
आत्मैव देवता - - -शरीरिणाम् ।। [मनु0 स्मृति]
ब्रह्म — - - - ।
- - - - - ग्रन्थविस्तराः ।। [दक्षस्मृति]

2. महाभारत अनु0 46/11

परात्पर सच्चिदानन्द परमेश्वर शिव एक हैं, वे विश्वातीत और विश्वमय भी है और गुणातीत एवं गुणमय भी है। वस्तुत: ये एक ही है। लेकिन अनेकरूप बने हुये हैं। वे जब अपने विस्तार सहित अद्वितीय स्वरूप में स्थित रहते हैं तब मानो यह विविध विलासमयी असंख्यरूपों वाली प्रकृति देवी उनमें विलीन रहती है। पुन: जब वही परमात्मा शिव अपनी शक्ति को व्यक्त और क्रियान्वित करते हैं, तब वही क्रीडामयी शक्ति- प्रकृति शिव को ही विविध रूपों में प्रकट कर उनके क्रीडा की वस्तु को उत्पन्न करती है। एक ही देव विविधरूप धारण कर अपने आप ही आप से खेलते हैं। यही इस निखिल जगत का विकास है। यह सम्पूर्ण जगत् शिव से ही उत्पन्न है, उन्हीं में स्थित रहता है और उन्हीं में विलीन हो जाता है। यह अव्यय सदाशिव ही सृष्टि रचना के निमित्त द्विधा हो जाते हैं। क्यों कि यह सृष्टि बिना द्वैत अर्थात् आधार - आधेय के बिना हो नहीं सकती। आधेय अर्थात् चैतन्य पुरुष बिना आधार अर्थात् प्रकृति उपाधि के व्यक्त नहीं हो सकता। इसी कारण इस निखिल सृष्टि में जितने भी पदार्थ हैं उनमें अभ्यन्तर चेतन और बाह्य प्राकृतिक आधार अर्थात् उपाधि§ शरीर§ देखे जाते हैं। दृश्य अदृश्य सभी लोकों में इन दोनों कीप्राप्ति होती है। सम्भवत: इसी कारण इस अनादि चैतन्य परम पुरुष परमात्मा की शिव संज्ञा सृष्टि की ओर प्रवृत्त या उन्मुख होने पर अनादि लिङ्ग है और उस परम आधेय को आधार देने वाली अनादि प्रकृति का नाम योनि है, क्यों कि ये दोनों ही वस्तुत: इस निखिल

चराचर जगत् के परम कारण हैं[1]।

वैदिक धर्म दर्शन के अनुसार "कर्म फल देने के लिये ही सृष्टि होती है। उसमें जीव नाना प्रकार के क्लेशों को सहन करते हैं और दुःख भोगते हैं। इन क्लेशों से मुक्ति प्रलय काल में ही मिलती है। इस प्रलय काल का स्वामी शिव ही है। वह माता- पिता के समान स्नेह से सबको सुला देता है। यह परमात्मा की विशेष कृपा है। संभवतः भारतीय आस्तिक परम्परा उसे शिव- सुलाने वाला इसी अभिप्राय से कहती प्रतीत होती है। इस प्रलय काल में रम्यमाणभी किसी को कष्ट नहीं होता। वह सभी के दुःखों का हरण कर लेता है इसीलिये वह हर है। वह पापकर्मा व्यक्तियों को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शूल-पीड़ा देता है इसी से वह त्रिशूल-धारी है।

"शूलत्रयं संवितरन् दुरात्मने
त्रिशूलधारिन् नियमेन शोभसे ।।"
§ शैवसिद्धान्तसार 2/7§

वैदिक धर्म दर्शन में वर्णित शिव तत्त्व का परवर्ती भारतीय धर्म दर्शन एवं संस्कृति में स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। संस्कृत साहित्य में भगवान् शिव एवं उनके विलक्षण परिवार से सम्बद्ध अनेक स्फुट श्लोक मिलते हैं। भारतीय आचार्य परम्परा के अनुसार काव्य की आत्मा "रस" है। वह रस विना किसी अर्थगत चमत्कार से नहीं हो सकता। इसलिये चमत्कार कारक

1. गीता 9/8

नवीनता लाने के लिये कवि लोग अनेक कल्पनाएं किया करते हैं । यदि वे औचित्य की सीमा को न लांघे तो कल्पना में कवि को पूर्ण स्वातन्त्र्य है । सामाजिक अनुरञ्जनार्थ " यथा देहे तथा देवे " के अनुसार कवि देव चरित्रों का भी मानुष चरित्रों की भांति चित्रण किया करते हैं । इसी आधार सूत्र को पकड़ कर शिव वर्णन पर भी कवियों की नाना कल्पनायें चलती हैं ।

श्री पार्वती जी के प्रसव का समय है । सम्पूर्ण शिव परिवार " सोहर " के बाहर ही उपस्थित है । किसी का किसी कार्य में मन नहीं लगता । सभी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि देखे पुत्र होता है या पुत्री । बधाई की आशा करने वाले लोग पुत्रोत्सव की उमंग में वहीं आ जुटे हैं । ऐसे उत्सुक प्रतीक्षा काल में अचानक दरवाजे का पट खुलता है और हर्षाधिक्य के कारण घबराये हुये से गण प्रधान बाहर आकर हाथ उँचा उठाकर कहते हैं कि " देवी के पुत्रजन्म हुआ है। हर्षसे परिपूर्ण लोग आपस में एक दूसरे का आलिंगन करते हैं ।

" देवी पुत्रमसूत नृत्यत गणाः किं तिष्ठतेत्युद्भुजे ।
हर्षाद्भृङ्गिरिटावुदाहृतगिरा चामुण्डयालिङ्गिते ।
पायाद्वो जितदेवदुन्दुभिघनध्वानप्रवृत्तिस्तयो -
रन्योन्याङ्कनिपातजर्जरस्थूलास्थिजन्मा रवः ।।"

1· कल्याण शिवाङ्क पृ0 254

श्री शिव स्वयं अकिन्चन् होते हुये भी परमकारुणिक हैं। उन्होंने अपने पुत्र जन्म का सुसमाचार सुनकर बधाई देने वाले ब्रह्मा जी को समुचित पुरस्कार देना चाहा। चतुर्दिक दृष्टि फैलाकर देखा। अपरिग्रह भगवान् के यहाँ हो ही क्या सकता था। किन्तु बधाई में दुशाला, कडे, मङ्गल के लिये कुङ्कुम विलेपनादि का होना तो आवश्यक ही था। बस श्री शिव ने अपने नीचे बिछे हुये सिंह चर्म को दुशाला बना डाला, अपने हाथ के कडे (सर्प) उनके हाथ में डाल दिये। साथ ही सम्मानार्थ समीप में रखा हुआ भस्म उनके सर्वाङ्ग में विलेपन कर दिया। अपने घर की बधाई की इस उदारता को सुनकर गिरि राजनन्दिनी एकदम हँस पड़ी। वही गिरजा का हास्य हमें पवित्र करें।

" श्रुत्वा षडाननजनुर्मुदितान्तरेण
पञ्चाननेन सहसा चतुराननाय।
शार्दूलचर्म भुजगाभरणं स भस्म
दत्तं निशम्य गिरिजा हसितं पुनातु ॥"

त्रिलोकवन्दनीय भगवान् शिव अकिन्चन हैं, किन्तु लोकातिशायिनी सम्पत्तिया" उनके पैरों में लोटती हैं। जिस समय वह बैलपर सवार होकर बाहर निकलते हैं उस समय जो इन्द्र "इदि परमैश्वर्ये" अर्थात् पराकाष्ठा के ऐश्वर्य का स्वामी है, वही मद झरते हुये ऐरावत पर बैठा हुआ भी बड़े

1• कल्याण शिवाङ्क पृष्ठ 210-11

सम्भ्रम के साथ उसे छोड़कर भगवान् शिव के चरणों पर अपना मस्तक टेकता है और अपने मुकुट के पारिजात पुष्पों के पराग से उनकी चरणाङ्गुलियों को रञ्जित करता है-

असम्मदस्तस्य वृषेण गच्छतः ।
प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा ।
करोति पादावुपगम्य मौलिना
विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाङ्गुली ।।

संस्कृत साहित्य के कवि शिव की इस अकिन्चनता पर भी कई कल्पनाएं जमाते हैं । किसी कवि का कथन है कि पार्वती जी शिव जी के घर में आ तो गईं परन्तु गृह स्थिति देखकर वे घबड़ा गईं । उन्होंने देखा कि " घर में हजार मुख वाला एक साँप है जिसके एक- एक मुख के लिये छटाँक छटाँक भर भर भी दूध देना पड़े तो भी ढेढ़ पौने दो मन होता है । स्वामी भी ईश्वर की कृपा से पञ्चमुख है । पुत्र भी दो हैं एक छः मुँह वाला है, दूसरा हाथी के मुख वाला । घर में आमदनी का यह हाल है कि प्रतिदिन भिक्षावृत्ति से काम चलता है । घर की इस विषम परिस्थिति को देखकर माता पार्वती जिस समय दीर्घ निःश्वास लेती है उससमय भगवान शिव मन ही मन हँसते हैं, यद्यपि वह हास्य उनके मुख पर झलक बिना नहीं रहता, वही शिव हमारी रक्षा करें ।[1]

---

1. कल्याण शिवाङ्क पृ० 211

" सहस्रास्यो नागः प्रभुरपि मतः पञ्चवदनः ।
षडास्यो हस्त्यैकस्तनय इतरो वारणमुखः ।।
गृहे भैक्ष्यं शश्वत्प्रभवतु कथं वर्तनमिति ।
श्वसत्यां पार्वत्यामथ जयति शम्भुः स्मितमुखः ।। "

शिव के घर में अहर्निश कलह की कलह दीखता है । गणपति के वाहन को क्षुधातुर भुजङ्ग खाना चाहता है और जैसे ही वह मूषक पर टूटता है वैसे ही स्वामी कार्तिकेय का मयूर सर्प पर झपटता है । इधर पार्वती का सिंह गजानन पर दृष्टि बाँधे रहता है ।वहीं दूसरी तरफ गौरी और गङ्गा का सौतिया डाह चला ही करता है । और तो क्या, कपालवाला मस्तक समीप के चन्द्रमा पर ही दाँत पीसता है । इस प्रकार रातदिन के कुटुम्ब कलह से तंग आकर भगवान् शिव ने भी जहर पी लिया ।[1]

" अत्तु वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी
तं च क्रौञ्चपतेः शिखि च गिरजा सिंहोऽपि नागाननम्
गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालाननो
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हालाहलम् ।। "

---

1. कल्याण शिवाङ्क पृ० 212-13

विषपान कर भी वह क्या बच जाते , परन्तु पार्वती पर्वत में उत्पन्न हुई, " अपर्णा " जिसमें पत्ते तक नहीं उसे हम एक अद्भुत औषधि समझते हैं, जिसके प्रभाव से जन्म से " शूली " शूलरोगी, शिव हलाहल पीकर भी मृत्युन्जय हो गये[1]।

पार्वतीमोषधीमेकामपर्णां मृगयामहे ।

शूली हालाहलं पीत्वा मृत्युन्जयोऽभवत् ।। "

" अपर्णा " बिना ही पत्ते की इस अदभुत लता का समझदारों को सदा सेवन करना चाहिये । जिसके " वरण " करते ही पुराना " स्थाणु शिव ठुंठा ठूंठ भी अमृतफल पैदा करता है[2] ।

" अपर्णैव लता सेव्या विद्वद्भिरिति मे मतिः ।

यया वृत्तः पुराणोऽपि स्थाणुः सूतेऽमृत फलम् ।।

बालक कार्तिकेय और गजानन दोनों ही भूख के कारण भोजन की खोज में इतस्ततः देख रहे हैं । उसी समय उन्हें पिता जी के जटाजूट के अन्दर

1· कल्याण शिवाङ्क पृ0 212- 13

2· कल्याण शिवाङ्क पृ0 212- 13

गंगा के तैरता हुआ चन्द्रमा दृष्टिगोचर होता है । स्वामी कार्तिकेय तो मट्ठे के अन्दर फुदकती हुई मछली समझकर लालच भरे चन्चल नेत्र डाल रहे हैं और गणेश जी जल में से निकला हुआ श्वेत कमल समझकर सूंड बढाना चाहते हैं । वही शिव का केशबन्ध आपके कल्मष को दूर करे ।

उत्क्लेशं केशबन्धः कुसुमशरिपोः कल्मषं वः स समुष्या

त्रेन्दुं वीक्ष्य गङ्गाजलभरलुलितं बालभावादभूताम् ।

क्रोन्चाराति च पञ्चस्फुरितशफरिकामोह लोलेक्षणश्री: ।

सद्यः प्रोद्यन्मृणाली ग्रहणरभसत्पुष्पकरश्च द्विपास्यः ।

भारतीय आस्तिक परम्परा के मत में " पिनाक " धनुष, फणी, बालचन्द्रमा, भस्म और मन्दाकिनी गङ्गा इनसे युक्त अतएव क्रम से " प फ ब भ म " इस पवर्ग से संगठित श्री शिव की मूर्ति मनुष्यों के लिये अपवर्ग अर्थात् मोक्ष दायिनी है[1] ।

" पिनाकफणिबालेन्दुभस्ममन्दाकिनीयुता ।

पवर्गरचिता मूर्तिरपवर्गप्रदास्तु नः ।। "

श्री शिव विद्या के आचार्य भी हैं इसलिये विद्या प्राप्ति की कामना

---

1. कल्याण शिवाङ्क पृ0 212-13

वाले जनो को भी शिव की उपासना करनी चाहिये आइउण आदि चतुर्दश सूत्र जो पाणिनीय व्याकरण के मूल हैं वे भी श्री शिव जी के डमरू से प्रकट हुये हैं । संगीतरत्नाकर में लिखा है-

" सदा शिव: शिवो ब्रह्मा भरत: कश्यपो मुनि: ।।

xx xx xx

रुद्राभिनवगुप्तश्च श्रीमत्कीर्तिधरोऽपर: ।

अन्ये च बहव: पूर्वे ये सङ्गीतविशारदा: ।।

उपर्युक्त श्लोकों में सङ्गीताचार्यों में सर्वप्रथम सदाशिव की गणना की गई है । इसी प्रकार समस्त विद्या और कलाओं के भण्डार तन्त्रशास्त्र के आचार्य भी सदाशिव ही है । श्री " रुद्रयामल तन्त्र" में लिखा है ।[1]

" आगमं निगमश्चैव तन्त्रशास्त्रं द्विधा मतम् ।

महेश्वरेण यत्प्रोक्तमागमं तन्निगद्यते ।। "

श्रुति भी इसी मत की पुष्टि करती है।[2]

ईशान: सर्वविद्यानाम ईश्वर: सर्वभूतानाम् ।

ब्रह्माधिपति ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु शिवोम् ।। "

अत: स्पष्ट ही है कि श्री सदाशिव को सम्पूर्ण विद्याओं का ईशान (स्वामी) बताया गया है । इससे यही सिद्ध होता है कि श्री शिव जी ही सभी विद्याओं के आचार्य हैं ।

1. श्री रुद्रयामलतन्त्र 3/6

2. श्वेताश्वतरो 4/7

भारतीय धर्म- दर्शन एवं संस्कृति के मत में श्री शिव जी ही सभी सम्प्रदायों के आचार्य हैं । वैष्णवों में प्रधान सम्प्रदाय चार हैं । उनके प्रचारक श्री विष्णु स्वामी, श्री निम्बार्क, श्री रामानुज और श्रीमध्व माने जाते हैं । इन्हीं चार आचार्यों के नाम से चारो वैष्णव सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं, परन्तु इन सम्प्रदायों के प्रवर्तक यही आचार्यगण है यह बात नहीं है । इन्होंने तो प्राचीन सम्प्रदायों को जो काल महिमा से लुप्त हो रहे थे, कलियुग में पुनः प्रचलित किया है । इन सम्प्रदायों के प्राचीन आचार्य तो क्रमशः श्री शिव, श्री सनक, श्री लक्ष्मी और श्री ब्रह्मा हैं । जैसा कि पद्म् पुराण में लिखा है[1] ।

"श्री रुद्रब्रह्मसनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः ।।"

तथा एक अन्यत्र स्थल पर इसे पूर्णतया स्पष्ट कर दिया गया है-

रामानुजानां लक्ष्मी रमातो
गौरीपतेर्विष्णुमतानुगानाम्
निम्बार्कगानां सनकादितश्च
मध्वादिगानां परमेष्ठितः स ।।"

(पद्मपुराण)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री विष्णु स्वामी का सम्प्रदाय श्री शिव जी के द्वारा ही प्रवर्तित हुआ है । "भक्तमाल" में स्पष्ट लिखा है --

रमापद्धतो भाति रामानुजाख्यः ।

1. पद्मपुराण 7/13

शिवे विष्णुपूर्वः पुनः स्वामिनामा ।

स निम्बार्कनामा सनानां चतुष्के

स मध्वार्यनामा चतुर्वक्त्रमार्गे ।। भक्तमाल 7/8

वेद भी इसी मत का अनुमोदन करता है-

" त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।। " (यजु0 अ0-40)

इस मन्त्र में शिव जी को " पुष्टिवर्द्धन " कहा है । इसका अर्थ है- " पोषणं पुष्टिः, पोषणं तदनुग्रहः अर्थात् पुष्टि का अर्थ है पोषण और पोषण भगवान् के अनुग्रह को कहते हैं । जिस मार्ग में भगवान् के अनुग्रह का ही अवलम्ब है उसे पुष्टि मार्ग कहते हैं, उस पुष्टि को वृद्धि प्रदान करने वाले श्री शिव जी ही है ।

शाण्डिल्य संहिता में श्री शिव जी के भगवान् से दीक्षित होने से लेकर श्री विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य पर्यन्त गुरुपरम्परा को लिखते समय अन्त में लिखा है कि -

इत्येवं हि समाख्यातः सम्प्रदायः पुरा प्रियः ।"

सम्भवतः इसी कारण परमवैष्णवतन्त्र " गौतम तन्त्र " में प्रातः काल गुरुभावना से श्री शिव जी का ध्यान करने की आज्ञा है ।

" शिवेनैक्यं समुन्नीय ध्यायेत्परगुरुं धिया ।

मानसैरुपचारैश्च समभ्यर्च्य मनसा सुधीः ।"

षोडश ग्रन्थों में क्रमशः " तत्त्वग्रन्थ " में वल्लभाचार्य कहते हैं-

वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्र प्रवर्तके ।

प्रत्येक कार्ये भगवान् सर्वात्मकतया स्थितौ ।।

निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयो कृता ।

भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि ।।

भोग शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चय: ।

अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि ।। §तत्वग्रान्थ 4-10§

ब्रह्मा विष्णु और शिव ये त्रिदेव निर्गुण हैं, क्यों कि निर्गुण श्री पुरुषोत्तम परब्रह्म की प्रकृति के तीन गुणों को नियम में रखने की इच्छा से ग्रहण कर ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप हो गये हैं । अर्थवशिखोपनिषद, श्वेताश्वतरोपनिषद् एवं कैवल्योपनिषदों में शिव का तथा महानारायणादि उपनिषदों में विष्णु का परब्रह्म रूप से वर्णन भी है । इसलिये शिवशास्त्रों में शिव को और विष्णुशास्त्रों में श्री विष्णु को निर्दोष और पूर्ण कल्याणगुण कहा गया है । श्री शिव और विष्णु दोनों भोग और मोक्ष देने वाले हैं तथापि दोनों ने दो कार्य पृथक् पृथक ले रखे है । इसलिये दोनों ही दोनों पुरुषार्थों का दान नियतरूप से नहीं करते । श्री शिव सर्वदा मोक्ष का भोग करते हैं । श्रीमद् भागवत् महापुराण में इस तथ्य का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है[1] ।

ह्यस्मिन् यस्याचरितं हि दुर्गमा: ।

स्वात्मारतस्या विदुष: समी हितम् ।

---

1. श्री मद्भागवत् 4/3

येर्वव॰ माल्याभरणानुलेपनै:

॰वभाजनै स्वात्मतयोपलालितम् ।। "

आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य जीवलोकस्य राधसे ।

शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान भव: ।।

जगत् में यह बात स्वयं सिद्ध है कि स्वयं जिस पदार्थ का उपभोग करता है उसे अन्य किसी को नहीं देता । शिव जी मय एवं बाण सदृश अतिप्रिय पुरुषों को मोक्ष देते भी है और निश्चित रूप से नहीं देते । विष्णु निर्गुण ब्रह्म रहते हुये भी सात्विक जगत् के नियामक हैं । इसी प्रकार श्री शिव जी निर्गुण ब्रह्म होते हुये भी तामस जगत् के नियामक है । इसी तथ्य का प्रतिपादन श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने सिद्धान्तमुक्तावलि ग्रन्थ में किया है ।

" जगत् त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्तत: ।। " (सिद्धान्तमुक्तावलि)

ये शिव ही उमापति है वही सब शरीरो में जीव रूप से प्रविष्ट है, उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो । एक अद्वितीय रुद्र ही प्रसिद्ध पुरुष है, वह ब्रह्मलोक में ब्रह्मा रूप से प्रजापति लोक में प्रजापति रूप से, सूर्यमण्डल में वैराटरूप से तथा देह में जीव रूप से सिद्ध हुआ है- उस महान् सच्चिदानन्द स्वरूप रुद्र को बार- बार नमस्कार हो । यह समस्त चराचरात्मक जो जगत् विद्यमान है, हो गया है तथा होगा वह सम्पूर्ण प्रपञ्च रुद्रदेव की सत्ता से भिन्न नहीं हो सकता । यह सब कुछ रुद्र ही है, इस रुद्र के प्रति प्रणाम हो ।

1• तै० आ० 10/16

प्रतिपादक नियमों को नहीं मानते और जिनमें भूतदया बिल्कुल नहीं होती ऐसे ही लोग भस्मासुर होते हैं । जो नरदेह आत्मज्ञान द्वारा तारने वाला है उसे पाकर वे लोग पतनोन्मुख होते हैं सत्कर्मों के लिये प्राप्त हुये वर का असत्कर्मों में उपयोग करने के कारण जैसे भस्मासुर स्वयं अपने नाश का हेतु बना वैसे ही अनेक सुकृतो के फलस्वरूप संसार से तरने के लिये मिले हुये इस मानव शरीर को दुष्ट कृत्यों में लगाने वाले पुरुष अज्ञान रूप माया से आवृत्त होते हैं और उनका अमूल्य नरदेह उन्हें सूकर, श्वान, अजा आदि निकृष्ट योनियों में डाल देने का कारण बनता है ।

श्री शिव द्वारा विभिन्न असुरों के संहार से सम्बन्धित जो कथायें विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों में मिलती है , वे सभी अपने अन्दर एक एक गूढ़ आध्यात्मिक तत्व को समाहित की हुई है ।

इस सम्बन्ध में हरिवंशपुराण के भविष्य पर्व में जनमेजय द्वारा वैशम्पायन से त्रिपुरासुनबन्ध के रहस्य की जिज्ञासा और वैशम्पायन द्वारा आलङ्कारिक भाषा में उसका उत्तर द्रष्टव्य है[1] ।

स्थूल , सूक्ष्म और कारणशरीर ही त्रिपुरासुर के तीन पुर हैं । " शङ्कर " का अर्थ है बोध । श्रवण, मनन, निदिध्यासन यह त्रिशूल है । काम, क्रोध, लोभादि असुर है औरशमादि देवगण है । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं के अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञ पुरत्रय के भोक्ता त्रिपुरासुर हैं । त्रिपुर आकाश में दीखने लगे इसका अर्थ यह है कि वे अवस्थाएं कारण देहमें

1• हरिवंश पुराण अ0- 133

प्रकट हुई । अन्नमय कोश उनका सुवर्ण प्राकार है । यज्ञादि सुकृत कर्मों के बल पर असुरों ने इस पुरत्रय को प्राप्त किया था । इसनगरी में एक चन्दन वनिताओं के कटाक्ष शस्त्र हैं, इसमें रहने वाले सूर्यनाथ और चन्द्रनाथ चक्षु और मन है । मद- मत्सरादि अन्य अनेक असुर भी वहाँ हैं । ये असुर ही श्रुति कथित सदाचरण का मार्ग रोककर शम दमादि देवताओं को पीडा देते हैं । पीडित देवतागण महादेव बोध की शरण लेकर उनकी आज्ञा से तत्त्व चिन्तन रूप उग्र तप करने लगे । उनके तप के प्रभाव से असुर क्षीण- बल हो गये और भयभीत होकर हृदयाकाश में छिप गये, वहाँ पर वासनारूप से स्थित होकर वासना परिपाक के समय की प्रतीक्षा करने लगे । परन्तु पीछे कुभोग की क्षीण हुई वासनाएं परिपाक के समय पुनः विजयी होने लगी, जिससे देवगण भयभीत होकर देवाधिदेव महादेव की शरण में गये । उनकी आर्त्त प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्री शिव ने युद्ध की तैयारी किया और प्रणव धनुष पर चित्त बाण चढाकर युद्ध प्रारम्भ किया । ध्यानद्वारा प्रथम स्थूलाभ्यास को उडा दिया, साथ ही वृष रूप विष्णु की सहायता से सूक्ष्माध्यास को भी निकाल दिया । उसके पश्चात् महत्तत्त्व नामक प्रदेश में असुर फिर कष्ट देने लगे । अतः पुनः रुद्र भगवान ने प्रणवरूपी धनुष के स्थान में महावाक्यरूपी अग्नि की स्थापना की और चरमवृत्ति रूप ब्रह्मास्त्र के साथ चिदाभास रूप दिव्यबाण छोडा और इस प्रकार मूल अज्ञानरूप त्रिपुर का संहार कर दिया ।

वस्तुतः शिवोपासना अखिल भुवनपति महेश्वर की उपासना है, जो निखिल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता है । ये

शिव सम्पूर्ण जगत् में अव्यक्तरूप से व्याप्त है तथा उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । भारतीय धर्म दर्शन में अखिल भुवनपति महेश्वर त्रिविध रूप धारण कर उत्पत्ति, संहार और पालन करते हैं । वही परमात्मा विभाग रहित रहित होकर एक रूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण हुआ भी चराचर सम्पूर्ण भूतों में पृथक् पृथक् सा प्रतीत होता है और वह जानने योग्य परमात्मा विष्णु रूप से धारण पोषण करने वाला, रुद्र रूप से संहार करने वाला और ब्रह्मा रूप सेउत्पन्न करने वाला है । "

" अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ।। "

-.13/16

श्रुति भी इसी मत का अनुमोदन करती है ।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत । "§ केनोप० अनु०1०§

अर्थात् यह सब ब्रह्म है क्यों कि उससे उत्पन्न हुआ है, उसी से लीन होता है और उसी में स्थित है, अतएव शान्त होकर इसी के ध्यान में स्थित होना चाहिए ।

यहाँ भी एक ही परमात्मा को भिन्न - भिन्न कार्यों का कर्त्ता बतलाया गया है । जगत्पति परमात्मा तीन नहीं है । एक ही है, एक ही के कार्य- भेद से नाम- रूपों का भेद पाया जाता है । जो लोग शिव को केवल संहार कर्त्ता मानकर उपासना करते हैं वे लोग शिव के एक ही अङ्ग की उपासना करते हैं । उनकी उपासनापूर्ण उपासना नहीं समझी जा सकती ।

भगवान् शिव विरक्त और त्यागी हैं, श्मशान उनका निवास स्थान है, भस्म उनका अङ्गराग है, पिशाच उनके सहचर है, वह मुण्डमाल को धारण करने वाले हैं।

"श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचा: सहचरा -

श्चिताभस्मालेप: स्रगपिनृकरोटीपरिकर: ।।"

शिवमहिम्नस्त्रोत

वस्तुत: परब्रह्म परमात्मा शिव का ही है। उस एक परमात्मा के ही कार्य भेद से नाम रूपों का भेद पाया जाता है। जो लोग शिव को मात्र संहारकर्ता मानकर उपासना करते हैं वे लोग शिव के एक ही अंग की उपासना करते हैं। उनके उपासना अपूर्ण ही है पूर्ण नहीं। शिव के सच्चे उपासक वहीं है जो उन्हें अपरिमित, अपरिछिन्न शक्ति सम्पन्न, सर्वकाल और सर्वव्यापी समझ कर उनकी शरण ग्रहण करते हैं।

"शिवस्यैकं परिवेष्टितारं

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशै: ।।"[1]

शिवगीता[2] में भगवान् महेश्वर स्वयं श्रीराम से कहते है कि- हे राम अधिक कहने सेक्या है ? यह सम्पूर्ण जगत् मुझसे ही उत्पन्न होता है, मैं ही इसका नित्य पालनकर्ता हूँ और इसका संहार भी मैं ही करता हूँ।

अथवा किं बहूक्तेन मयैवोत्पादितं जगत ।

मयैव पाल्यते नित्यं मया संहियतेऽपि च ।।"

1. श्वेता 3/6

2. शिवगीता 5/36

शिवस्वरोदय[1] में श्री शिव माता पार्वती जी से कहते हैं कि " माया रहित, आकारहीन, एक, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर से आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से वायु की उत्पत्ति हुई ।

" निरञ्जनो निराकार एको देवो महेश्वरः ।
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्वायुसम्भवः ।। "

वेदसार शिवस्तव[2] में आचार्य शङ्कर ने भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है । यद्यपि संसार में वैष्णव, शैव गाणपत्य और शाक्त आदि अनेक प्रकार के मत प्रचलित है और सभी अपने इष्टदेव को सर्वश्रेष्ठ और परिपूर्ण मानते हैं तथापि उससे तो परमात्मा का महत्व बढ़ता ही है घटता नहीं । सम्भवतः इसलिये तत्त्वज्ञ वैदिक ऋषियों ने मानव की रुचि- भिन्नता को देखकर उनके कल्याण के निमित्त विभिन्न पथों का निरूपण किया है । श्रुति कहती है-[3]

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।। "

भारतीय ऋषि- परम्परा में वह एक परमेश्वर ही भक्त मनोरञ्जनार्थ भिन्न- भिन्न उपास्यों की आकृति को धारण करता है । इसलिये भेद बुद्धि

---

1. शिवस्वरोदय- 5/6
2. वेदसार शिवस्तव श्लोक- ।।
3. मुण्डको0 2.2.11

का परित्याग कर अपने आराध्य देव की अर्चना तथा उपासना श्रद्धापूर्वक करणीय है। पञ्चदशीकार स्वामी विद्यारण्यमुनि ने इस तथ्य का अत्यन्त सुन्दर निरूपण किया है, उसका ध्यानपूर्वक चिन्तन परमात्मतत्त्व से सम्बद्ध समस्त विवादों को दूर कर देता है।

" अन्तर्यामिणमारभ्य स्थावरान्तेशवादिन: ।
सन्त्यश्वत्थार्कवंशादे: कुलदेवतदर्शनात् ।।
तत्त्वनिश्चयकामेन न्यायागमविचारिणाम् ।
एकैव प्रतिपत्ति: स्यात्साप्यत्र स्फुटमुच्यते ।।"

महाभारत[1] के अनुसार दोनों ही एक ही शुद्ध सत्त्व के दो रूप हैं।

" रुद्रो नारायणश्चैवेत्येके सत्त्वं द्विधा कृतम् ।
लोके चरति कौन्तेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु ।।"

वामनपुराण[2] के अनुसार भगवान् शिव का स्वरूप हरिहरात्मक है। एक बार समस्त देवताओं के गुरु भगवान् श्री शिव सहस्त्रवर्षपर्यन्त स्तब्धभाव से रहे। उनके इस प्रकार रहने से सम्पूर्ण विश्व चलायमान और देवगण भयभीत हो गये इस विषम स्थिति से भयभीत देवगण भगवान् विष्णु की शरण में गये और प्रणाम करके उनसे जगत् के विक्षोभ का कारण पूछने लगे। श्री विष्णु ने इस सम्बन्ध में अनभिज्ञता व्यक्त किया और सभी देवों को साथ लेकर मन्दराचल

---

1. महाभारत शान्ति आ0 347·27

2. वामनपुराण 6/10

पर्वत पर तपस्या में रत भगवान् शिव के समीप गये । वहाँ पहुँचकर देवों को देवाधिदेव महादेव के दर्शन नहीं हुए । तब सभी देवगण भगवान् विष्णु से पूछने लगे कि शङ्कर कहाँ है, हम तो उन्हें कभी नहीं देखते इस पर भी विष्णु ने कहा कि "शङ्कर आप लोगों के सामने ही तो बैठे हैं । आप लोगों ने स्वार्थवश देवी पार्वती के गर्भ को नष्ट किया है, इसी कारण श्री महादेव जी ने आपके ज्ञान को नष्ट कर दिया है । अब आप सभी देवगण पापनिवृत्ति के लिये "तप्तकृच्छ" नामक व्रत करें और विधिपूर्वक शङ्कर का पूजन करें, तब आप शङ्कर का दर्शन प्राप्त कर सकेंगे । श्री विष्णु के आदेशानुसार देवताओं ने शरीर शुद्धि के लिये "तप्तकृच्छ" व्रत किया और व्रत की समाप्ति पर पापमुक्त होकर उन्होंने भगवान् से कहा कि अब हमें कृपा पूर्वक भगवान् शङ्करका दर्शन कराइये जिससे हम उनका विधिवद् पूजन कर सकें ।" देवों द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्री विष्णु ने उन्हें अपने हृदय कमल पर शयन करने वाले शिवलिङ्ग का दर्शन कराया औरदेवताओं ने उस लिङ्ग का विधिवद् अर्चन किया । यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि सत्त्व और तमोगुण से आवृत्त हरिहर किस प्रकार एक हो गये । आध्यात्मिक दृष्टि से इसकी व्याख्या करते हुये इस पुराण में बताया गया है कि "देवताओं को चिन्तत देखकर सर्वव्यापीभगवान् विश्वमूर्ति हो गये । त्रिनेत्र शिव की अर्द्धमूर्ति का एक नेत्र इस प्रकार उस हरिहर मूर्ति के ढाई नेत्र थे, कानों में कनक और सर्प के कुण्डल विराजमान थे, मस्तक पर घुंघराले काले बाल और कपिशवर्ण की जटायें सुशोभित थी, गरूड और वृषभ का वाहन था, हार और भुजङ्ग से अङ्ग विभूषित था, कटि प्रदेश में पीतवस्त्र और गजचर्म बँधा था, कर कमलों में चक्र, कृपाण, हल, शाङ्ग, पिनाक

और आजगव नाम के धनुष, कपर्द, खटवाङ्ग कपालखण्टा और शङ्ख धारण किये हुये थे। इस प्रकार की हरिहरात्मक युगल मूर्ति को देखकर देवतालोग प्रसन्न हुये और प्रसन्नमन होकर उनकी स्तुति करने लगे।

भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार रुचि वैचित्र्य से उपासना कई प्रकार की होती है। यद्यपि तत्त्वत: उपास्य देव एक ही है तथापि रुचि के अनुसार उनके अनेक रूप है यथा, शिव विष्णु आदि जिस मनुष्य का जिस रूप में प्रेम होता है वह उसी रूप की अनन्य भाव से उपासना करके परमपद को प्राप्त होता है। इसी कारण संसार में अनेक मतों की सृष्टि हुई है परन्तु तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर सबका लक्ष्य एक ही दीख पड़ेगा।

श्रेष्ठ जन जैसा आचरण करते हैं, और लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं। इस ध्येय से दोनों एक दूसरे की उपासना करते हैं। इसी लिये विष्णु शिव जी की उपासना करने के कारण शैव और शिव जी विष्णु की उपासना करने के कारण वैष्णव ही नहीं महावैष्णव कहे जाते हैं।

"वैष्णवानां यथा शम्भु:"[1]

अर्थात् जैसे वैष्णवों में शम्भु हैं। इसी कारण जब भस्मासुर शिव जी से वर प्राप्त कर उन्हीं को भस्म करने चला तो भगवान् विष्णु ने मोहिनी रूप

---

1. श्रीमद्भा० स्कन्द- 12

धारण कर युक्ति से भस्मासुर को भस्म कर दिया और अपने परमभक्त शिव जी की रक्षा किया । इसलिये जो मनुष्य श्री विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ श्री शिव जी के सम्मुख करता है उससे प्रसन्न होकर शिव जी उसे मुक्ति प्रदान करते हैं । जैसे-

" शिवालये पठेन्नित्यं तुलसीवनसंस्थित: ।
नरो मुक्तिमवाप्नोति चक्रपाणेर्वचो यथा ।। "

श्री विष्णु सहस्त्रनामस्त्रोत

इसी प्रकार श्री रामकृष्णादि अवतारों में श्री विष्णु भगवान् ने श्री विष्णु जी की भक्ति- भागीरथी को प्रवाहित किया है । " श्रीरामतापनीयोपनिषद् " में अत्रि और याज्ञवल्क्य के संवाद में लिखा है कि श्री रामचन्द्र जी की तपस्या से ही श्री शिव जी को काशी में सभी जीवों को मोक्ष प्रदान करने का अधिकार मिला है ।[1]

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वज: ।
मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभि: ।।
तत: प्रसन्नो भगवान् श्रीरामप्राह शङ्करम् ।
वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर ।

अर्थात् " जप होम अर्चन के द्वारा श्री शिव जी ने सहस्त्रमन्वतर पर्यन्त श्रीराम के नाम का जप किया, तब प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा कि

---

1. श्रीरामतापनीयोप: 5/8

हे महेश्वर । मैं प्रसन्न हुआ जो चाहे वर मांगो । शिव जी बोले कि " मणिकर्णिका रूप क्षेत्र में या श्री गङ्गा के तट पर अथवा गङ्गा जी के भीतर जो मृत हो उसे मोक्ष हो, मुझे केवल इसी वर की अभिलाषा है ।

भगवान् शिव के इन वचनों को सुन कर श्री रामजी ने कहा कि हे शिवजी । आपके इस क्षेत्र में जहाँ कहीं भी जो कोई कृमि कीटपर्यन्त जीव मरेगा वह शीघ्र ही मुक्त हो जायेगा, इसमें रन्चमात्र भी सन्देह नहीं है । मरते समय जिस किसी के दाहिने कान में आप स्वयमेव उपदेश करेंगे वह शीघ्र मुक्त हो जायेगा ।

क्षेत्रेऽत्र तव देवेश। यत्र कुत्रापि वा मृता: ।
कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ता: सन्तु न चान्यथा ।।
मुमुषोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ।। "[1]

भारतीय आस्तिक परम्परा के मत में गायत्री मंत्र के अभिमानी देवता शिव ही है । कवि तार्किक चक्रवर्ती श्री हरदताचार्य जी ने शिव जी के उत्कर्ष का प्रतिपादन करने वाली स्वरचित पञ्चश्लोकी[2] मे ठीक ही कहा है कि "गायत्री से बोधित होने के कारण श्रीरामचन्द्र के द्वारा सेतुबन्ध में। लिङ्गस्य।

1• कल्याणशिवाङ्क पृ0 444

2• पञ्च श्लोकी श्लोक सं0 -1

स्थापित होने के कारण श्री कृष्ण को उनकी कैलाश यात्रा से सन्तुष्ट होकर उनकी इच्छानुसार सन्तान देने से तथा सहस्त्र कमल के द्वारा शिवलिङ्ग का पूजन करते समय एक कमल की कमी हो जाने के कारण, कमल के स्थान पर श्री विष्णु के अपना एक नेत्र निकाल कर रख देने पर उन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान करने से भगवान् महादेव की श्रेष्ठता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है[1]।

गायत्र्या बोधितत्त्वादपि नामकमुखे राघवस्थापितत्त्वा -
च्छौरे: कैलाशयात्राक्रममुदिततयाऽभीष्टसन्तानदानात् ।
नेत्रेन स्वेन साकं दशशतकमलैर्विष्णुना पूजितत्त्वा-
तस्मै चक्रप्रदानादपि च पशुपति: सर्वदेवप्रकृष्ट: ।। *

मद से परिपूर्ण कन्दर्प के मद को चूर करने से निखिल जगत् के कल्याणार्थ हलाहल विष का पान करने से, मार्कण्डेय औरश्वेत नामक महा-मुनियों को पीड़ा देने वाले यम-राज का मद चूर करने से भगवान् शिव की महत्ता स्वयमेव सिद्ध है[2]।

* तत: सदाशिव: स्वयं द्विजं निहन्तुमागतं
निहन्तुमन्तकं स्वयं स्मरारिरायर्यौ हर: ।

1· श्रीमद्भा0 12·43

2· श्वेताख्यान श्लोक सं0 -5

त्वरन् ...र्हिर्गत: पुर: शिव: स्वयं त्रिलोचन-

रिस्त्रयम्बकोऽम्बया सहाय नन्दिना गणेश्वरै: ।।"

§ श्वेताख्यान§

अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान करने से नृसिंहरूपधारी विष्णु को जीतने से तथा स्त्रीशरीरधारी विष्णु के गर्भ से शास्त्र नामक पुत्र उत्पन्न करने से देवाधिदेव महादेव सम्पूर्ण देवों में श्रेष्ठ हैं[1]।

"तदीय तपसा शम्भुर्ददौ तुष्ट: किरीटिने ।

दिव्यं पाशुपतं देव्या प्रार्थितो जगदीश्वर: ।।"

इस भूमण्डल में सभी से अर्चित एवं पूजित होने के कारण, श्री हरि के दशावतारों से पूजित होने के कारण, क्रमश: हंस और वराह का रूप धारण करने वाले ब्रह्मा और विष्णु द्वारा प्रयास के वाद भी महिमा का ज्ञान न हो सकने के कारण तथा जन्म मरणादि से रहित होने के कारण श्री शिव की "देवाधिदेव महादेव" की संज्ञा उपयुक्त ही है[2]।

भूमौलोकैरनेकै: सतत विरचिताराधनत्वादमीषा-

मष्टैश्वर्यप्रदानाद्दशविधवपुषा केशवेनार्चितत्वात् ।

हंसक्रोडाङ्गधारिद्रुहिणमुरहरादृष्ट शीर्षाङ्घ्रिकत्वा-

ज्जन्मध्वसाभावादपि च पशुपति: सर्वदेवप्रकृष्ट: ।। 3 ।।

---

1. महाभारत-

2. पञ्चश्लोकी श्लोक सं0-3

पन्चश्लोकीकार के मतानुसार- "काशी में शिव निन्दा करने वाले व्यास जी के दोनों भुजाओं का स्तम्भन करने के कारण शिव ही सम्पूर्ण देवों में सार्वभौम है।

वाराणस्यान्च पाराशरि नियमिभुजस्तम्भकत्वात् पुराणां ।
प्रध्वंसे केशवेन श्रितवृषवपुषा धारितक्ष्मारथत्वात् ।
अस्तोकब्रह्मशीर्षास्थ्युपकलितगलालङ्क्रियाभूषितत्त्वा-
ज्ज्ञातृत्वाज्ज्ञानमुक्त्योरपि च पशुपतिः सर्वदेवप्रकृष्टः ।। 4 ।।

कूर्मादि पुराणों में तथा महिम्नस्तोत्र में इसी तथ्य को प्रतिपादित किया गया है।

" तवैश्वर्यं यत्तद्यदुपरि विरिञ्चो हरिरधः ।
परिच्छेत्तुं यातावनलमनिलस्कन्धवपुषः ।।"

शिव महिमा का प्रतिपादन करने वाला शिव के गूढ रहस्य का बोध कराने वाला शिवरहस्य का यह श्लोक दृष्टव्य है।

" महादेवार्चने प्रीतिर्नृणामत्यन्तदुर्लभा ।
सुलभा यदि सा नृणां तदा मुक्ता हि ते नराः ।।
यदि देवोत्तमत्वेन ज्ञात्वा देवोत्तमं शिवम् ।
समर्चयति यत्नेन तदा मुक्तिर्न दुर्लभा ।।
एवमप्यभिचारेण नित्यमभ्यर्चितः शिवः ।
ददाति भुक्तिं मुक्तिं च सत्यं सत्यं न संशयः ।।

1. पन्चश्लोकी श्लोक सं0-4

इस प्रकार अन्यान्य प्रबल प्रमाणों से श्री शिव जी का सर्वदेवशिखामणित्व निर्विवाद सिद्ध है । भगवान् शिव की सार्वभौमिकता को न मानने वाले सहस्त्रों वर्षों तक दुःखको प्राप्त होते हैं कहा भी गया है-

" यः सर्वभूताधिपतिं विश्वेशं तु विनिन्दति ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या वक्तुं वर्षशतैरपि ।। "

वेदों में जिस शिव तत्त्व का वर्णन मिलता है । परवर्ती भारतीय धर्मशास्त्रों में उसी तत्त्व को ब्रह्म नाम से विभूषित किया गया है । योगवशिष्ठ महारामायण में, जो कि भारतीय अध्यात्मशास्त्रों में एक अत्यन्त उच्चकोटि का ग्रन्थ है, उस शिव तत्त्व को " ब्रह्म " और उनके विभिन्न रूपों में प्रकट होने को " ब्रह्म " नाम से विभूषित किया गया है । इस ग्रन्थ में कुछ स्थानों पर जगत् के इन दो स्वरूपों का नाम " शिव " और शक्ति भी दिया है । परमतत्त्व को " शिव " है और " नानारूपजगत् " उसकी क्रियाशक्ति का अनन्त रूपों में नृत्य करने का नाम है । ये शिव और शक्ति कभी एक दूसरे से पृथक नहीं हो सकते, दोनों एक ही है । शिव के बिना शक्ति नहीं और शक्ति के बिना शिव नहीं । इस शिवशक्तिवाद का महत्त्व योगवशिष्ठ के निम्नोद्धृत श्लोक से स्पष्ट है[1] ।

" भूत्वा भूत्वा प्रलीयन्ते समस्ताभूत जातयः ।
अनारतं प्रतिदिशं देशे- देशे जले स्थले ।। "

---

1. योगवशिष्ठ श्लोक सं०-35

"विषम- स्वरूप वस्तुओं में घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं हो सकता । सम्बन्ध का अर्थ एकता है । वह कभी असमान वस्तुओं में नहीं हो सकता ।

" सर्वा एत: समायान्ति ब्रह्मणो भूतजातय: ।

किञ्चित्प्रचलिताभोगात्पयोराशेरिवोर्मय: ।। "

ये सभी जड़, चेतन प्राणी इस शिव नामक ब्रह्म से उसी प्रकार जन्म अथवा उदय होते हैं जैसे हिलते हुये समुद्र से लहरें ।

सत्यं ब्रह्म जगच्चैकं स्थितमेकमनेकवत् ।

ब्रह्म सर्वं जगद्वस्तु पिण्डमेकमखण्डितम् ।। " ﴾योगवाशिष्ठ﴿

" एक अनिर्वचनीय सत्यात्मक ब्रह्म﴾ शिव﴿ ही नानारूप जगत् के रूप में विद्यमान है । यह निखिल जगत् एक अखण्डित पिण्ड रूप ब्रह्म है ।"

" जगच्चित्पुष्पसौगन्ध्यं चिल्लताग्रफलं जगत् ।

चित्सत्तैव जगत्सत्ता जगत्सत्तैव चिद्वपु: ।। "

" यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्मरूपी पुष्प की सुगन्ध है, ब्रह्मरूपी लता का फल है । ब्रह्म की सत्ता ही जगत् की सत्ता है और जगत् ही ब्रह्म का रूप है । वह ब्रह्म सर्ववस्तु मय और सर्वशक्ति सम्पन्न है । ब्रह्म सर्वरूप से सभी काल में, सभी स्थानों पर सबके भीतर और सबके साथ फैला हुआ है । "

" सर्वशक्तिधरं ब्रह्म सर्ववस्तुमयं ततम् ।

सर्वथा सर्वदा सर्व- सर्वै: सर्वत्र सर्वगम् ।। "

योगवाशिष्ठ के अनुसार- "यह सर्वशक्तियुत ब्रह्म ही सबका ईश्वर है। वह जिस शक्ति द्वारा प्रकट होना चाहता है, वही दृष्टिगोचर हो जाती है।

" चिन्मय: परमाकाशो य एव कथितो मया ।।

एषोऽसौ शिव इत्युक्तो भवत्येष सनातन: ।।"

वह परमाकाश (अनन्ततत्त्व जिसको) मैंने चेतन स्वरूप ब्रह्म बताया है, शिव ही कहा जाता है । वही सनातन परब्रह्म परमात्मा है । माता पार्वती उसकी मनोमयी स्पन्दन शक्ति अर्थात् क्रिया- शक्ति हैं जो उससे अभिन्न और अनन्य हैं । वही उस ब्रह्म की स्पन्दशक्ति रूपी इच्छाशक्ति हैं जो दृश्यमान पदार्थों का विस्तार करती है ।

सा राम प्रकृति: प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी ।

जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्ति कृत्रिमा ।।" (योगवशिष्ठ-

सम्भवत: इसीलिये इस दृश्यमान जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ शिवशक्ति के वेश में वर्तमान हैं, सभी सत्य है और परम तत्त्व (शिव) उनका आत्मा है ।

" तस्मान्न द्वैतमस्तीह न चैक्यं न च शून्यता ।

न चेतनाचेतनत्वं वै मौनमेव न तत्त्व वा ।।"

पौराणिक वाङ्मय में काशी को शिव का क्षेत्र कहा गया है । परवर्ती भारतीय वाङ्मय में इसकी अत्यन्त सुन्दर व्याख्याएं प्राप्त होती है । काशी ज्ञान की पुरी है । वह शिव के त्रिशूल पर बसी है । इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना के आगे काशी है । अर्थात् मस्तिष्क ही काशीपुरी है । काशा:

सन्त्यस्यामिति काशी" अर्थात् काश जहाँ हो वही काशी है । कुमार का जन्म इसी काश के वन में हुआ था, अतएव मस्तिष्क ही काशीपुरी या काशवन है । सहस्त्रदल पद्म ही काशीपुरी है । यहाँ देवाधिदेव महादेव साक्षात् निवास करते हैं । स्वर्ग की नदी गंगा के पवित्र तट पर काशी पुरी है । मस्तिष्क की नाड़ियों में बहने वाला अविच्छिन्न अमृत प्रवाह की मन्दाकिनी है जो अन्तरिक्ष में होती हुई पृथिवी लोक को भी पवित्र करती है । इस सहस्त्रदल पद्म को मणिपद्म भी कहते हैं । वहीं के एक भाग का नाम मणिपीठ, मणितट या मणिकर्णिका है । उस मणिपद्म की एक कर्णिका मणिकर्णिका है । जहाँ स्नान करने से पुनर्जन्म का खेद मिट जाता है । इस सहस्त्रकमल तक सिद्धिप्राप्त करके जो प्राण त्यागता है । उसे पितृयान की संसृति मेंपुनः नहीं आना पड़ता है । यही योगियों का विहति द्वार है । इसी मणिकर्णिका को बौद्ध मतावलम्बी मणिपद्म कहते हैं " ॐ मणिपद्मे हुं" इस मन्त्र का जाप करते हैं ।

मेघदूत में कालिदास ने इसे मणितट कहा है । यक्ष अपने सन्देश वाहक मेघ से कहता है कि " हे मेघ क्रीडाशैल पर शम्भु के साथ जहाँ गौरी विचरण करती हैं वहाँ उन्हें मणितट पर सहायता देने के लिये तुम अपने शरीर को सोपान बना देना[1] ।

" सोपानत्वं कुरु मणितटा-
रोहणायाग्रयायी ।। "

---

1. मेघदूत 1-60

आध्यात्मिक दृष्टि से काम ही मेघ है । उसके शरीर का इससे अच्छा और क्या उपयोग हो सकता है कि उस पर पैर रखकर शिव पार्वती मणितट पर आरोहण करें । सम्पूर्ण लोकों के कामभावों को लेकर मेघ ऐसे लोक में उन्हें समर्पित कर देना चाहता है जहाँ शिव का साक्षात् निवास जानकर कन्दर्प अपने धनुष को चढ़ाने से डरता है ।[1]

" मत्वा देवं धनपतिसखं
यत्रसाक्षाद्वसन्तम् ।
प्रायश्चापं न वहति
भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ।। "

आस्तिक भारतीय परम्परा के अनुसार मानव की समस्त वासनाओं का मूलकारण कामवासना ही है । उसकी पवित्रता के बिना नित्यतत्त्व की प्राप्ति दुर्लभ है । बुद्ध ने " सम्बोधि " प्राप्त करने के लिये पहले " मार " को विजित किया। प्रत्येक ज्ञानी और योगी को अध्यात्ममार्ग में इसी गहरी घाटी से पार होना पड़ता है । इन्द्र और वृत्र की वैदिक कथाओं में यही मूलतत्त्व है । वृत्रवध ही इन्द्र का " महाव्रत " है । जिससे इन्द्र को आत्म ज्ञान हुआ । शिव और काम में भी उसी तत्त्व की पुनरावृत्ति है ।

1· मेघदूत 2·10

वस्तुत: सनातन योग तत्त्वों का विवरण ही शिव का स्वरूप है । उसके यथार्थ स्वरूप को जानकर उस देवाधिदेव की इयत्ता का निर्वचन अतिशय कठिन कार्य है । कालिदास ने सत्य ही कहा है-

" न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपु: " ॥कुमारसम्भवम्॥

शतपथ ब्राह्मण[1] एवं जैमनीयोपनिषद्[2] में इसी तथ्य को प्रतिपादित किया गया है ।

1. को हि तद्वेद यावन्त इमेऽन्तरात्मन् प्राणा: " ॥ श0ब्रा0॥

2 बहुध ह्येवैषनिविष्ट: ।। " ॥जै0उ0॥

वैदिक धर्मदर्शन के अनुसार " त्रिकाल तथा त्रिकाल से बाहर जो होने वाले पदार्थ है वह सभी ब्रह्म है ।[3]

" भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव ।

तच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ।। "

माण्डुक्योपनिषद् के मत में संसाररूप ब्रह्म, जीव रूप ब्रह्म और माया रहित परमात्मा आदि ब्रह्म के अनेक रूप हो जाते हैं । परमात्मा भी अपनी विश्वमोहिनी माया का अवलम्बन कर अनेक रूप धारण करता है । उन सभी रूपों में विष्णु तथा शङ्कर जीवों के भवबन्धन तोडने का कार्य करते हैं ।

---

1. शत0ब्रा0 7.2.2.20
2. जै0उ0 3.2.13
3. माण्डु0 3/12

न तो विष्णु से शिव कम है और न तो शिव से विष्णु ही कम है तो भी शास्त्रों में शिव को आशुतोष कहा गया है । जितना शीघ्र भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं उतना शीघ्र परमात्मा का कोई अन्य रूप प्रसन्न नहीं होता । यजुर्वेद[1] तथा अथर्ववेद[2] में इसी तथ्य का प्रतिपादन किया गया है ।

" मुखाय ते पशुपते यानि चक्षुषि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ।। "
" नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ।।
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ।। "

अर्थात् हे पशुपते । तेरे मुख को प्रणाम है और तुम्हारे नेत्रों को भी प्रणाम है । तेरी त्वचा और देखने योग्य जो तुम्हारा रूप है, उसको भी प्रणाम है । पश्चिम दिशा के अधिपति को प्रणाम है । आते हुये तुझको प्रणाम और जाते हुये को भी प्रणाम है । हे रुद्र ! खड़े हुये को प्रणाम तथा बैठे हुये तुझको प्रणाम है । सायं काल प्रणाम, प्रातः काल प्रणाम, रात्रि को प्रणाम, दिन को प्रणाम, भवरूप तथा शर्वरूप जो तू है उसे मैं प्रणाम करता हूँ ।

भारतीय ऋषि परम्परानुसार मत में " यदि किसी को भक्ति का

---

1. यजुर्वेद काण्ड- 16
2. अथर्ववेद काण्ड- 11

उत्कर्ष देखना हो तो वह उत्कर्ष शङ्कर और विष्णु की भक्ति में ही मिल सकता है अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता । संसार को भक्ति मार्ग पर लाने, जीवों का संसार बन्धन तोड़ने एक दूसरे को परमात्मा सिद्ध करने के लिये शङ्कर विष्णु की और विष्णु शङ्कर की भक्ति करते हैं ।

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपं
जल्पन्जल्पन् प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिल: कोऽपि काशी निवासी ।।

भूतभावनभगवान् शिव[1] काशी की गलियों में कहते फिरते हैं कि तुम लोग अपने कानों द्वारा सब जगह अभिरमण करने वाले भगवान् राम के नाम का पान करो और अपने मन में सर्वदा निरन्तर तारक ब्रह्म राम नाम का ध्यान करो । जिस समय प्राणी का स्वास्थ्य खराब होकर विकृत हो जाता है और जब वह संसार को छोड़ने को तैयार हो जाता है तब भगवान् शङ्कर उस प्राणी के कर्णमूल में मोक्षदायक तारकमंत्र का उपदेश करते हैं । भगवान् शङ्कर किसी नियत स्थान में बैठकर ये काम नहीं करते, किन्तु वे काशी की गली-गली में घूमकर मनुष्यों को राम नाम का स्मरण कराते हुये मोक्ष मार्ग में भेजने का उद्योग निरन्तर करते रहते हैं । इसी प्रकार भगवान् श्री राम भी श्री शिव की आराधना करते हैं । उनके द्वारा रामेश्वर लिङ्ग की स्थापना

---

1. काशी महात्म्य केदार खण्ड श्लोक सं0-13

का समस्त रामायणों में उल्लेख मिलता है । वाल्मीकीय रामायण में भी लड्•का से लौटते समय प्रभु श्री रामचन्द्र जी जनक तनया सीता जी से कहते है कि "यह महात्मा सागर का तीर्थ है । हे जनकनन्दिनी लड्•का को जाते समय इसी स्थान पर भगवान् शिव ने मुझ पर अनुग्रह किया था ।[1]

" एतत्तु दृश्यते तीर्थ सागरस्य महात्मन: ।
अत्र पूर्व महादेव: प्रसादमकरो द्विभु: ।। "

भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार " सकल जगन्नियन्ता परशिव ने सृष्टि के आरम्भ में सृष्टि जीवो के पर एवं अपर अर्थात् भोग- मोक्षरूपी प्रयोजन की सिद्धि के लिये " ऊर्ध्व" प्रोद्गम" आदि पन्च प्रवाहों सेयुक्त शास्त्र रूपी ज्ञान को उत्पन्नकिया ।[2]

सृष्टि काले महेशान: पुरूषार्थप्रसिद्धये ।
विधत्ते विमलं ज्ञानं पन्चस्त्रोतोपलक्षितम् ।। "

§ मृगेन्द्रागम§

इस सम्बन्ध में शिवके प्रति विष्णु के अलौकिक प्रेम को प्रदर्शित करने वाला यह श्लोक दृष्टव्य है । जिस में विष्णु ने शिव के प्रति हनुमान की भक्ति और शिव का हनुमान के प्रति स्नेह देखकर यह कहा कि मुझे तो हुमान के प्रति कुछ ईर्ष्या सी होने लगी है ।[3]

1• वा0 रा0 4/1

2• मृगेन्द्रागमश्लोकसं0-11

3• पद्म पा0 6.9/247-248

"मया वर्षसहस्त्रं तु सहस्त्राब्दैस्तथान्वहम् ।
भक्त्या सम्पूजितोऽपीश पादौ नो दर्शितस्त्वया ।।
लोके वादो हि सुमहान् शम्भुर्नारायणप्रिय: ।
हरि: प्रियस्तथा शम्भोर्नैतादृग् भाग्यमस्ति मे ।।"

§ पद्मपु0§

भगवान् विष्णु के इन शब्दों को सुनकर भगवान् शिव कहने लगे कि आपसे बढ़कर मुझे और कोई प्रिय नहीं हो सकता है । यहाँ तक कि पार्वती भी मुझे आप जितनी प्रिय नहीं है ।

- नत्वया सदृशो मह्यं प्रियोऽस्ति भगवान् हरे ।
पार्वती वा त्वया तुल्या न चान्या विद्यतेमम ।।[1]

वस्तुत: भारतीय धर्म दर्शन के मत में श्री महादेव के गुणों का वर्णन सम्यक् रूप से करना किसी के लिये भी सम्भव नहीं है । पूर्ण का वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि भगवान् शिव तो स्वयं ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा है । वे इस निखिल विश्व के आदि है, इसलिये उनका और उनके वंश की कथा का परिज्ञान नहीं हो सकता । गन्धर्वराज श्रीपुष्पदन्ताचार्य जी ने अपने शिव-महिम्नस्तोत्र में इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है ।

महिम्न: पारं ते - - - - - - -
- - - - - - - निरपवाद: परिकर: ।।

धर्मरूपी वृष पर आरूढ़ रहने वाले, क्रोधादि दोषसमूह रूपी सर्प

---

1. पद्म पा0 69/249

को वशीभूत कर उन्हें धारण करने वाले तथा विविध कर्मकलाप रूपी जटा को धारण करने के कारण एवं वेदत्रयी रूपी तीन नेत्रों से सुशोभित होने के कारण श्री शिव ही देवों में वन्दनीय है । सम्भवत: श्रुति भी उनके इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण उन्हें " अप्रमेय " और " अनाद्य " कहती है।[1]

" अप्रेमेयमनाद्यन्च ज्ञात्वा च परमं शिवम् ।। " (ब्रह्मबिन्दु)

इन विशिष्टाओं से युक्त होने के कारण ही भगवान् शिव " स आदि: सर्वजगताम् " है और उनके पिता का भी कोई अता- पता नहीं है । श्रुति भी कहती है[2] ।

" सर्वकार्यधर्मविलक्षणे ब्रह्मणि " (तै०उ०शा०भा०)

भगवान् भूतभावन वंशी निनाद से अथवा डमरू ध्वनि से हमारे मन को भिक्षारूप में हरण करते हैं । हम उनको नहीं चाहते तथापि वह हमारे मन को चाहते हैं, क्योंकि वे अपना मन भक्तों को देकर स्वयं भिक्षुक बन गये हैं[3] ।

"स्त्यं वदति गोविन्दे विमला पद्मरातया ।
मनोरथवती नाम भिक्षापात्रे समर्पिता ।। "

भारतीय आस्तिक परम्परा के अनुसार "भगवान् शिव दिगम्बर" है और भस्म लगाते हैं । उनके इन दो गुणों का " बोधसार " नामक ग्रन्थों में बहुत ही सुन्दर व्याख्या की गई है । श्री शिवसमष्टि- व्यष्टि देह त्रयरूप प्रपन्च के विधि- निषेध से अतीत होने के कारण ही वे दिगम्बर है ।

---

1. ब्रह्मबिन्दु 14/5/2
2. तै०उ०शा०भा० 3/13
3. काशीमहात्म्य काशीखण्ड 30/102

है। अत: उनकी इस दिगम्बरता को नग्नता समझना उचित नहीं प्रतीत होता है ।

" निरावरणविज्ञानस्वरूपो हि स्वयं हर: ।

स्वैरं चरति संसारे तेन प्रोक्तो दिगम्बर: ।। "

श्री शिवद्वारा भस्मोद्धूलन " बोधसार " नामक ग्रन्थ के अनुसार अपने अन्दर एक विशिष्ट तात्विक रहस्य को आत्मसात् किये हुये है। देह सम्वलित चिदाभासमय "मै" बुद्धि के द्वारा जो कर्म होते हैं वे ही कर्म संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण रूप में बन्धन का कारण बनते हैं, वही सब कर्म निष्क्रिय ब्रह्म रूपता की प्राप्ति होने पर शरीरान्तर के उपादान में असमर्थ हो जाते हैं और इसलिये भस्म के सदृश अकिन्चित्कर हो जाते हैं - यही तथ्य गीता आदि शास्त्रों में भी कहीं गयी है । श्री शिव के असुर विदर्मन तथा विश्व संहारादि कर्म उसी प्रकार अकिन्चित्कर है । इसी कर्म के द्वारा आवृत्त होकर लोक दृष्टि में आविर्भूत होते हैं । इसी कारण वह मूढ़ जनो के निकट भस्मावृत्त तथा प्रतिपादित होते हैं[1] ।

" ज्ञानाग्नि: सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरूते किल ।

तेनैव भस्मना गात्रमुद्धूलयति धूर्जटि: ।। "

§ बोधसार §

परस्पर भिन्न वस्तुये भी भस्मीभूत हो जाने पर एक रूप ही भासती है, इसी कारण भस्म सब वस्तुओं की एकरूपता का प्रतिपादक है । तुल्यस्वभाव वाले भर्ग" अर्थात् जगद्बीज मर्जक शिव के निकट आनन्ददायक है ।

---

1. बोधसार पृ0 सं0 204

भास्ते भिन्नभावानामपि भेदो न भस्मनि ।

स्वस्वभावस्वभावेन भस्म भर्गस्य वल्लभम् ।।[1]

श्री शिव ही अर्थात् अपरोक्ष परमात्मा पन्चम्यादि भूमिकारूढ़ जीवनमुक्तों के विश्रामस्थान पुरातन वट वृक्षस्वरूप हैं । वेदान्त, सांख्य औरयोग- यह तीन उप वट वृक्षकी जटा के रूप में शिरो भूषण हैं ।

" विश्रामोऽयं मुनीन्द्राणां पुरातनवटो हर: ।

वेदान्तसांख्ययोगाख्यास्त्रिस्तज्जटय: स्मृता: ।।

श्री शिव ही चन्द्रमा के सदृश जगदानन्ददायक सूर्य की भांति अज्ञान-तमोनाशक तथा अग्नि केसदृश रागादि दोषों के दहनकर्त्ता हैं । इसी कारण चन्द्र सूर्याग्नि नयन अथवा त्रिनेत्र कहकर उनका वर्णन शास्त्रों में मिलता है ।[2]

" आप्यायनस्तमोहन्ता विद्यया दोषदाहकृत् ।

सोमसूर्याग्निनयनस्त्रिनेत्रस्तेन शङ्कर: ।। "

योगीजनसर्प के समान वायु भक्षण करप्राण धारण करते हैं तथा पर्वतीय गुहाओं में रहते हैं । " विविक्तसेवी " एवं " लब्धाशी " होने के कारण वे शिव को इतने प्रिय है कि इन योगीजनों को अपने अङ्ग का भूषण बनाये रहते हैं । इसी कारण श्री शिव " भुजङ्गाभरण " के रूप में प्रसिद्ध है ।

---

1. बोधसार पृ०सं० 205- 206

2. बोधसार पृ० सं० 211

" योगिनि: पवनाहारा स्तथा गिरिविलेशया : ।

तिजरूपे धृता स्तेन भुजङ्गाभरणो हर : ।। "

श्री शिव का त्रिशूल तीन रूपों अर्थात् शक्ति, वैराग्य और बोध का स्वरूप वाला है । ये तीनों उपाय अज्ञान और अज्ञान के कार्य को शीघ्र ही भेदन करने में समर्थ होने के कारण त्रिशूल के फलों के साथ सादृश्य को प्राप्त होते हैं । इसी त्रिशूल के द्वारा त्रिलोचन शिव सत्त्व, रज और तम इन गुणों का तथा उनके कार्य रूप स्थूल, सूक्ष्म और कारण नामक देहत्रय का विनाश करते है तथा मिथ्यात्त्व का निश्चय कराकर ब्रह्मप्रतीति उत्पादन करते हैं ।

" शान्तिवैराग्यबोधाख्यैस्त्रिभिरग्रैस्तरस्विभि: ।।

त्रिगुणत्रिपुरं हन्ति त्रिशूलेन त्रिलोचन: ।। "[1]

जिस धर्म मेघ नामक समाधि में ब्रह्मादि देवता स्थित नहीं रहते भगवान् शिव उससमाधि में आरूढ़ देखे जाते हैं । इसी कारण उन्हें " वृषवाहन" भी कहते हैं ।

" ब्रह्माद्या यत्र नारूढा स्तमारोहति शङ्कर: ।

समाधिं धर्ममेघाख्यं तेनायं वृषवाहन: ।। "

स्वत: सिद्ध प्रत्यगात्मस्वरूप, ज्ञानीजन- प्रत्यक्ष शङ्कर सम्पूर्ण जगत् के लय के अधिष्ठान है । इसी कारण वह सब के भय का कारण बन संसार में नित्य क्रीडा करते हैं । इस श्मशानवत् अमङ्गलरूप संसार में सर्वदा और सब पदार्थों में वह ज्ञानी जनों को दृष्टिगोचर होते हैं । उपासना के लिए श्मशान में संसार दृष्टि करनी चाहिये ।[2]

1. बोधसार पृ0 सं0 219

2. बोधसार पृ0 सं0 301

" नित्यं क्रीडति यत्रायं स्वयं संसारभैरव: ।

तत्र श्मशाने संसारे शिव: सर्वत्र दृश्यते ।। "

साकार का अवलम्बन करके ही निर्गुण निराकार ब्रह्म की भावना की जाती है । साकार के बिना निराकार में स्थिति लाभ नहीं होता । सब कुछ साकार ही दृष्टि गोचर होता है, परन्तु अभ्यास के द्वारा निराकार की उपलब्धि होती है तथा उसमें स्थिति प्राप्त की जाती है भगवान् चिन्मय अद्वितीय , कलारहित तथा रूप रहित होते हुये भी उपासक को कृतार्थ करने के लिये उसके ध्येयरूप में उपस्थित होते हैं । इस सम्बन्ध में अगस्त्य ऋषि का कथन दृष्टव्य है ।

" सर्वेश्वर: सर्वमय: सर्वभूतहिते रत: ।

सर्वेषामुपकाराय साकारोऽभून्निराकृति: ।। "

[अग० सं० तृ०]

जो सर्वेश्वर: सर्वमय, सब भूतों के हित में लगे रहने वाले हैं । वही सम्पूर्ण प्राणियों के कल्याणार्थ निराकार होते हुये भी साकार हुये हैं । अत: भगवान् शङ्कर की शरण का आलम्बन ही परम पुरूषार्थ है । इसका आलम्बन करके ही मानव शिव कृपा का आनन्द प्राप्त कर सकता है और मुक्ति का अधिकारी हो सकता है । मुण्डकोपनिषद् के शब्दों में

" भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशया: ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।

[मुण्डको०]

वैदिक ग्रंथा: - ग्रंथानुक्रमणिका

1. अथर्ववेद संहिता (शौनकीय) सायण भाष्य सहितम्, विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1962
2. अथर्ववेद संहिता (सुबोधभाष्यम्) दामोदर सातवलेकर, पारडी, सूरत
3. आर्षेय ब्राह्मणम्- सं० ए०सी०बर्नेल, लाहौर, 1921
4. उपनिषद् भाष्य (1-2) शा०भा० गीताप्रेस, गोरखपुर
5. उपनिषद समुच्चय - स्वामी रामतीर्थ विरचित दीपिका सहित, आनन्दाश्रम पूना
6. उपनिषदा भूमिका- डा० राधाकृष्णन, दिल्ली राजकमल प्रकाशन
7. उपनिषद दर्शनस्य रचनात्मक सर्वेक्षणम्, रामचन्द्र दत्तात्रेय रानाडे, जयपुर 1971
8. ऋगर्थ दीपिका - वेंकट माधव, मोतीलाल बनारसीदास
9. ऋग्वेद संहिता - सायण भाष्य संहिता, वैदिक संशोधन मण्डल पूना, 1933
10. ऋग्वेद संहिता- स्कन्द स्वामी (उद्गीथ- वेंकटमाधव- मुद्गलभाष्य संहिता) विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुरम् ।
11. ऋग्वेदसंहिता (दयानंद भाष्य सहिता) वैदिक यन्त्रालये अजमेर
12. ऐतरेय आरण्यकम्- सं० डा०कीथ, लन्दन 1909
13. ऐतरेय आरण्यकम्- सं० बाबा साहब फड़के, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावलि, पूना
14. ऐतरेयारण्यकम् (सा०भा०) राजेन्द्रलाल मित्र, कलकत्ता

15. ऐतरेयारण्यकम् (शा०भा०) आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि, पूना 1898

16. ऐतरेय ब्राह्मणम्- सायण भाष्य सहितम्, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावलि पूना

17. ऐतरेय ब्राह्मणम् (अनुवाद) गंगा प्रसाद उपाध्याय, इलाहाबाद

18. ऐतरेय ब्राह्मणम् (संपादक) मार्टिन हाग बम्बई 1863

19. ऐतरेयोपनिषद्- शा०भा०, गीताप्रेस गोरखपुर

20. ऐतरेयोपनिषद्- " कल्याण उपनिषदंक, वर्ष 23 अंक 1 गीताप्रेस गोरखपुर आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी, ऐशियाटिक सोसाइटी 1906

21. काठक संहिता- " संपादक) सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, बम्बई वि० सं० 1999

22. कौषितकोपनिषद् (शा० भा०) गीताप्रेस

23. छान्दोग्योपनिषद- शा०भा०) गीताप्रेस गोरखपुर

24. जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मणम् (सं० (पं० रामदेव शास्त्री) डी०ए०) लाहौर 1921

25. ताण्ड्य महाब्राह्मणम्- सायणभाष्य सहितम्, बनारस 1935

26. तैत्तिरीय आरण्यकम् सायण भाष्य सहितम् आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि, पूना 1938

27. तैत्तिरीयोपनिषद् (शा०भा०) गीताप्रेस गोरखपुर

28. तैत्तिरीय ब्राह्मणम्- सायण भाष्य सहितम् आनदाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि पूना 1938

29. तैत्तिरीय संहिता- सायणभाष्य सहितम् आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि पूना 1905

30• बृहदारण्यकोपनिषद् (शा०भा०आ०गिरि टीका संवलिता) संपादक स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि, ऋषिकेश

31• ब्रह्म सूत्रम् (शा०भा०) चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी

32 महाभारतम्- गीताप्रेस, गोरखपुर

33• मैत्रायणीयसंहिता- सं० सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, बम्बई वि० सं० 1968

34• मैत्रायणीयारण्यकम्- सातवलेकर, आनन्दाश्रम पूना

35• मैत्राण्युपनिषद्- निर्णय सागरप्रेस, बम्बई

36• यजुर्वेद संहिता (दयानन्द भाष्य संहिता) वैदिक यन्त्रालये अजमेर 1929

37• यजुर्वेद संहिता (मूल) स्वाध्यायमंडल पारडी सूरत)

38• वाजसनेयि संहिता- उव्वट महीधर भाष्य संहिता बनारस 1913

39• वेदत्रयी डा० सत्यव्रत सामश्रमी पूना

40• शतपथ ब्राह्मणम् (माध्यन्दिन) सायणभाष्य सहितम् बम्बई 1940

41• शतपथ ब्राह्मणम् (काण्डवीय) प्रो० डा० डब्ल्यू कैलेण्ड द्वितीयो भाग: लाहौर 1939

42• शांखायनारण्यकम्- आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि पूना 1922

43• शांखायनारण्यकाध्ययनम्- 1-2 भाग (सम्पादक) डा० फ्राइडल, बर्लिन 1900

44• शांखायन ब्राह्मणम् (सं०) गुलाबराय वजेशंकर आनन्दाश्रम, पूना

45• श्वेताश्वतर उपनिषद- आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि पूना।

अन्य ग्रंथा :-

46• अष्टाध्यायी आफ पाणिनि- गिरीषचन्द्र बसु, दिल्ली 1962

47• आनदि वेद- श्री अरविन्द, पाण्डुचेरी 1956

48• इंडिया आफ वैदिक कल्पसुत्रज- डा० रामगोपाल, दिल्ली

49• ईशादिविंशोत्तरशतोपनिषद् नारायण राम आचार्य: पंचम संस्करण निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1948

50• एन्शियन्ट इंडियन ऐजुकेशन- राधाकुमुद मुखर्जी, लन्दन 1947

51• एनसाईक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स- जेम्स- हेस्टिंग्स, न्यूयार्क

52• एनसाईक्लोपीडिया आफ रिलीजन कैनी, दिल्ली

53• ए हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर- विन्टरनित्ज, प्रथमोभाग: कलकत्ता, 1927

54• ए हिस्ट्री आफ एन्शियन्ट संस्कृत लिटरेचर- मैक्समूलर, इलाहाबाद 1926

55• ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर- मैक्डानल, लन्दन

56• ऐतरेयालोचनम्- आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी एशियाटिक सोसाइटी 1906

57• ऐतरेयब्राह्मण एक अध्ययन- डा० नाथूलाल पाठक जयपुर 1966

58• निरुक्त मीमांसा -पं० शिवनारायण शास्त्री दिल्ली वि० सं० 2026

59• निरुक्त सम्मर्श:(स०) स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक अजमेर 1966

60• भगवद्गीता- शा०भा० (आंग्लनुवाद) ए० महादेव शास्त्री, मद्रास 1947

61• भागवतमहापुराणम्- गीताप्रेस गोरखपुर

62• भागवत महापुराणम्- निर्णय सागर प्रेस बम्बई

63• भारतीय दर्शन - डा० राधाकृष्णन प्रथमोभाग:, लन्दन

64• भारतीय दर्शन सम्पादक डा० देवराज, लखनऊ

65• मनुस्मृति§ कुल्लूभट्ट टीका संवलिता§ चौखम्भा, वाराणसी

66• वेद दिग्दर्शनम्- पं० माधवाचार्य शास्त्री दिल्ली

67• वेद विद्या निदर्शन: - भगवद्दत्त, इतिहास प्रकाशन मण्डल, दिल्ली 1957

68• वेद रश्मिडा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पारडी सूरत 1964

69• वेदेषु भारतीय संस्कृति पं० आद्यादत्त ठाकुर लखनऊ

70• वेद रहस्य- श्री अरविन्द पाण्डुचेरी

71• वैदिक इंडेक्स आफ नेम्स एण्ड सब्जेक्टस- ए० ए० मैक्डानल ए०बी०कीथ, वाराणसी 1952

72• वैदिक देवता उद्भव और विकास- डा० गयाचरण त्रिपाठी भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी० 1982

73 वैदिक पदानुक्रमकोश:- विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम् होशियारपुरम् ।

74• वैदिक धर्म दर्शन- मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

75• वैदिक वाङ्मय का इतिहास§ 1•11 भाग§ पं० भगवद्दत्त सत्यश्रवा दिल्ली 1978

76• वैदिक सम्पदा- पं० वीरसेन वेदश्रमी, दिल्ली 1967

77• वैदिक संस्कृति के तत्त्व- डा० मंगलदेव शास्त्री वाराणसी 1961

78• वैदिक संस्कृति का विकास- लक्ष्मण शास्त्री जोशी, साहित्य अकादमी दिल्ली

79• वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- वाचस्पति गैरोला , इलाहाबाद 1969

80• वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- श्री बलदेव उपाध्याय, वाराणसी

जर्नल-

1• जनरल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता

2• जर्नल आफ दि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

3• जर्नल आफ दि बाम्बे, ब्रांच आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी बम्बई ।

4• विश्वेश्वरानन्द इंडालाजिकल जर्नल होशियारपुर ।

शब्द संक्षेप

1· अथर्व०	अथर्ववेद
2· अथर्व०उ०	अथर्वशिरोपनिषद्
3· आ०पु०	आदित्यपुराण
4· ई०उ०	ईशावास्योपनिषद्
5· उ०वि०त०	उणमाइ विलक्कमत मिलग्रन्थपद
6· ऋ०	ऋग्वेद
7· एनसाई०वा०	एनसाईक्लोपीडियावाल्यूम-5
8· ऐ०ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
9· ऐ०आ०	ऐतरेय आरण्यक
10· क०शि०	कल्याण शिवाङ्क
11· कठो०	कठोपनिषद्
12· का०म०	काशी महात्म्य
13· कु०स०	कुमारसम्भवम्
14· कू०पु०	कूर्मपुराण
15· कौ०ब्रा०	कौषीतकि ब्राह्मण
16· छा०उ०	छान्दोग्योपनिषद्
17· जै०उ०	जैमनीयोपनिषद्
18· त०आ०	तवलकार आरण्यक
19· तै०सं०	तैतरीय संहिता
20· तै० आ०	तैतरीय आरण्यक

21.	दुर्गा स0	दुर्गासप्तशती
22.	ना0उ0	नारायणोपनिषद्
23.	नि0	निरुक्त
24.	नृ0ता0उ0	नृसिंह तापनी उपनिषद्
25.	प0पु0	पद्मपुराण
26.	प0द0	पञ्चदशी
27.	पा0आ0	पारमेश्वरागम्
28.	प्र0उ0	प्रश्नोपनिषद्
29.	ब्र0वै0पु0	ब्रह्मवैवतपुराण
30.	ब्र0 वि0	ब्रह्मबिन्दु
31.	बो0सा0	बोधसार
32.	मनु0	मनुस्मृति
33.	म0पु0	मत्स्यपुराण
34.	म0भा0	महाभारत
35.	म0 वि0पु0	महा विष्णु पुराण
36.	माण्डु0उ0	माण्डुक्योपनिषद्
37.	मृ0 आ0	मृगेन्द्रागम्
38.	मेघ0	मेघदूत
39.	मै0उ0	मैत्री उपनिषद्
40.	यजु0	यजुर्वेद

41· यो०द० योगदर्शन
42· यो०वा० योगवाशिष्ठ
43· रघु० रघुवंशम्
44· लि० पु० लिङ्ग पुराण
45· वा०पु० वामनपुराण
46· वा०रा० वा० वाल्मीकी रामायण
47· वा०सं० वाजसनेयि संहिता
48 वि०गी० विश्वगीता
49· वि०पु० विष्णु पुराण
50· वृ०जा०उ० वृहज्जाबाल्योपनिषद्
51· वृ०दे०उ० वृहद् देवता अध्याय
52· वे०शि० वेदसार शिव स्तव
53· श्वे० उ० श्वेताश्वतरोपनिषद्
54· श०ब्रा० शतपथ ब्राह्मण
55· शा०सं० शाण्डिल्य संहिता
56· शि० पु० शिवपुराण
57· शि० स्व० शिव स्वरोदय
58· शि०पु०वा०सं० शिवपुराण वायवीय संहिता
59· शि०पु०कै०सं० शिवपुराण कैवल्य संहिता
60· शि०पु० वि०सं० शिवपुराण विद्येश्वर संहिता
61· शि०गी० शिवगीता

62. शु० यजु०   शुक्ल यजुर्वेद
63. शै० सि०   शैव सिद्धान्तसार
64. श्रीमद्० म०पु०   श्रीमद्भागवत्महापुराण
65. श्री रुद्र०त०   श्री रुद्रयामलतन्त्र
66. श्री राम०ता०उ०   श्रीरामतापनीयोपनिषद्
67. श्रीमद्०गी०   श्रीमद्भगवद्गीता
68. स्क० पु०   स्कन्दपुराण
69. स्तु० कु०   स्तुतिकुसुमाञ्जलि
70. सं० सं०   सनत्कुमार संहिता
71. साम० कौ० सं०   सामवेदीय कौथुमीय संहिता
72. सौ० पु०   सौरपुराण